महाकविकालिदासप्रणीतम्

मेघदूतम्

श्रीमल्लिनाथसूरिकृतया

सञ्जीविन्या

साहित्याचार्य-जनार्दनशास्त्रिपाण्डेय-एम०ए०

विरचितया

पदार्थ-भावार्थ-विशेषटिप्पणीरूपया

हिन्दीव्याख्यया च

समन्वितम्

प्राक्कथन-लेखकः

आचार्य-श्रीशिवपूजनसहायः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना

प्रकाशक

सुन्दरलाल जैन
मोतीलाल बनारसीदास
पो० ब० ७५, चौक,
वाराणसी ।

द्वितीय संस्करण १९६८

मूल्य—१ ५०

मुद्रक—
संस्कृत मुद्रणालय
रामापुरा नईबस्ती,
वाराणसी ।

प्राक्कथन

महाकवि कालिदासकृत 'मेघदूत' विश्वविख्यात काव्य-ग्रन्थ है, उसके सम्बन्धमें कुछ भी कहनेका अधिकारी मैं नहीं हूँ। मुझे उसके प्रस्तुत अनुवादपर ही कुछ निवेदन करना है। यद्यपि यह भी मेरे अधिकारसे बाहरकी बात है तथापि उदाराशय अनुवादक महोदयके अनुरोधका पालन कर रहा हूँ।

संसारकी अनेक भाषाओंमें इस काव्यग्रन्थके अनुवाद गद्य या पद्यमें हैं, इसकी टीकाएँ और समालोचनाएँ भी कम नहीं हैं। हिन्दीमें भी हैं। तब भी संस्कृतानुरागी हिन्दी पाठकोंके लिए एक ऐसी पुस्तककी आवश्यकता थी जिसमें टीका और अनुवाद साथ-साथ हो—जिसकी रचना केवल परीक्षार्थियोंके लिये पाठ्यपुस्तकके ही रूपमें न की गई हो, प्रत्युत हिन्दी जाननेवाले साहित्य-रसिकोंको ध्यानमें रखकर की गई हो।

काशीके श्रीजनार्दनशास्त्री पाण्डेय एम० ए०, साहित्याचार्यकी यह पुस्तक इस आवश्यकताकी पूर्त्ति करती-सी जान पड़ती है, इसमें कई विशेषताएँ हैं—प्रत्येक श्लोककी सुबोध व्याख्या संस्कृतमें मल्लिनाथकृत "सञ्जीवनी" दी गई है, जिसमें प्रामाणिक ढंगसे शब्दार्थ-विश्लेषण और व्याकरण-विषयक बातोंका पूर्ण विवेचन है। तदुपरान्त हिन्दीमें प्रत्येक श्लोकका पदार्थ और भावार्थ विशद रीतिसे दिया गया है। साथ ही प्रत्येक श्लोकमें आई हुई विशेष महत्त्व-पूर्ण बातपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। परम्परागत शंकाओं और मतभेदोंको दूर करनेके लिये बड़े संयत और विश्वसनीय ढङ्गसे तर्क-युक्ति-संगत विचार उपस्थित किये गये हैं। सारांश यह कि प्रत्येक श्लोकसे शब्दोंके प्रसंगानुकूल अर्थका स्पष्टीकरण हो जानेसे केवल हिन्दी ही जाननेवाले संस्कृतभक्त पाठकोंके लिये यह पुस्तक यथेष्ट सुगम हो गई है।

मेरी समझमें टीकाकार और अनुवादककी सबसे बड़ी सफलता यही है कि वह मूलके भाव तथा अर्थकी गहराईके तलतक पाठकको पहुँचा दे। यदि वह अपने पाठकको कविकी रचनाका मर्म हृदयङ्गम करा सका तो उसका परिश्रम सार्थक है। चूँकि मैं केवल हिन्दी जाननेवाला संस्कृतप्रेमी पाठक हूँ और केवल हिन्दीके माध्यमसे ही संस्कृतग्रन्थोंके रसास्वादनका अभ्यासी हूँ, इसलिये अपने-आपको ही कसौटी मानकर मैं कहना चाहता हूँ कि इस काव्यग्रन्थको सर्वजनसुलभ बनानेमें शास्त्रीजीको स्पृहणीय सफलता प्राप्त हुई है।

मेरी यह निजी धारणा है कि भारतवासियोंमें भारतीय सभ्यता औ संस्कृतिकी जड़ जमानेवाला एकमात्र संस्कृत साहित्य ही है। जबतक इ विशाल राष्ट्रकी जनताके लिये संस्कृतके लोकोपयोगी ग्रन्थ सुबोध तथा सुल न बनाये जायेंगे तबतक लोकमानसमें भारतीयता अथवा राष्ट्रीयता बद्धमू नहीं हो सकती। इस दृष्टिसे भी शास्त्रीजीका सत्प्रयास स्तुत्य है। उन्हों हिन्दीमात्र जाननेवाले पाठकोंकी कठिनाइयोंको भलीभाँति समझा है औ बहुलांशमें उन अनुभूत कठिनाइयोंको दूर करनेका भरपूर प्रयत्न किया है।

काशीके सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालयके दूरदर्शी संस्थापक पं० वासुदे द्विवेदीजीसे एकबार मैंने निवेदन किया था कि गोरखपुरके गीताप्रेससे जि प्रकार गीताकी हिन्दी टीका निकली है उसी प्रकारकी टीकाएँ संस्कृत काव्य ग्रन्थोंकी भी निकलनी चाहिये। बड़े हर्ष और सन्तोषका विषय है कि द्विवेदी जीके मित्र शास्त्रीजीने ऐसी टीकाएँ प्रस्तुत करनेका शुभ सङ्कल्प किया है परमात्मासे प्रार्थना है कि उनका सङ्कल्प सिद्ध हो।

भगवत्प्रेरणासे आजकल हिन्दी पाठकोंमें संस्कृत ग्रन्थोंके अध्ययन-मननकी प्रवृत्ति क्रमशः जाग्रत हो रही है। यदि संस्कृतज्ञ विद्वान् राष्ट्रभाषा हिन्दीमें संस्कृत ग्रन्थोंका मर्मोद्घाटन करनेके लिये तत्पर हों तो उन ग्रन्थोंके अनुशीलनसे हिन्दी पाठक अपनी प्राचीन साहित्यिक परम्पराके गौरवका यथार्थ अनुभव करनेमें समर्थ होंगे। यहाँतक कि हिन्दी साहित्यसेवी भी अपनी साहित्य रचना के निमित्त नई-नई प्रेरणाएँ और उद्भावनाएँ उपलब्ध कर सकेंगे।

संस्कृतके अजेय दुर्ग तथा विद्याधिष्ठाता विश्वनाथकी पुरी काशीसे यदि ऐसे सर्वजनोपयोगी सटीक संस्कृतग्रन्थ प्रकाशित होकर हिन्दी साहित्य-संसारमें प्रचलित हों तो हिन्दीके एक चिरकालानुभूत अभावकी पूर्ति तो होगी ही संस्कृतकी ओर दिन-दिन बढ़ता हुआ लोगोंका अनुराग भी सदा सरस बना रहेगा

आशा है कि शास्त्रीजी संस्कृतके अन्य ग्रन्थोंके भी इसी तरहके तत्त्वबोधक तथा तथ्योद्घाटक तिलक प्रस्तुत करके जिज्ञासु हिन्दी पाठकोंको उपकृत करेंगे

कवीन्द्र रवीन्द्र शताब्दी जयन्ती: शिवपूजन सहाय

७।५।६१ रविवार [illegible] रोड मीठापुर, पटना

महाकवि कालिदास

संस्कृत साहित्यसे थोड़ा भी परिचित व्यक्ति कालिदासको अवश्य जानेगा। वस्तुतः कालिदास वह विभूति हैं जिनके बिना यह साहित्य ही अपूर्ण-सा लगेगा। प्रत्येक भारतीयके हृदयमें तो उनके प्रति असीम श्रद्धा और आदरभाव है ही, आज सारा विश्व उनकी काव्यकलापर मुग्ध है। उनकी नैसर्गिक और सर्वतोमुखी प्रतिभा, विलक्षण कल्पनाशक्ति, उत्कृष्ट निर्माणकौशल जगत् में अपना सानी नहीं रखता। कालिदास प्रारम्भमें मूर्ख थे, या लङ्काकी किसी वेश्याने उन्हें मरवाडाला आदि किंवदन्तियाँ सत्य हों या न हों, यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्हें सरस्वती सिद्ध थीं। २००० वर्षोंके इस लम्वे कालमें ऐसा साहित्य न तो किसीसे बनसका और न कालिदासके साहित्यपर लोगोंकी श्रद्धामें कोई कमी आई। आश्चर्य होता है कि इतने महान् कृतिकारका जीवनवृत्त और स्थितिकाल आज भी वेदान्तियोंके ब्रह्मकी भाँति रहस्य ही बना हुआ है।

यों तो कालिदासकी स्थितिको ३०० वर्ष पहिले मानें अथवा ५०० वर्ष वाद, इससे उनकी महनीयतामें कोई अन्तर नहीं आता। किन्तु पाश्चात्त्य विद्वानों और उनके अनुगामी भारतीय लेखकोंने भी कालविषयक जो खींचतान की है वह सिवा दुराग्रहके और कुछ नहीं। यह निश्चित है कि जबतक ज्ञातकाल शिलालेखों और प्रचीन अलंकार ग्रन्थोंमें कहे हुए नियमोंके साथ मिलाकर कालिदासके प्रत्येक ग्रन्थकी भाषा-शैली और साहित्यिक परिभाषाओंका गम्भीर अनुसंधान न किया जाय तबतक कालके प्रश्नका निश्चित हल सम्भव नहीं है। रघुवंशमें अग्निवर्ण तक ही वर्णन देखकर उन्हें ई० पू० ३०० में मानना या ऐसी ही भ्रान्त धारणाओंके आधार पर ८०० ई० में मानना तो पूर्णतया उपेक्ष्य है। केवल ३ वाद अधिकतर प्रचलित हैं। १—ईसाकी छठी शताब्दी, २—ईसाकी पंचमशताब्दी और ४—ई० पूर्व प्रथमशताब्दी।

१—प्रथम मतका प्रवर्तक फर्गुसन था। उसकी कल्पना है कि ५४४ ई० में विक्रमादित्य नामके किसी राजाने हूणोंको परास्त किया और उसी विजयस्मृतिमें अपना संवत् चलाया। जिसे प्राचीनता देनेके लिये ६०० वर्ष

पूर्वसे मानलिया गया। यही कालिदासका विक्रम था। मैक्समूलरने इसकी पुष्टि की। उसका कहना था कि पाँचवीं शताब्दीमें संस्कृतका पुनर्जागरण हुआ और कालिदास उसके बाद हुए। डा० हार्नली कहता है छठी शताब्दी राजा यशोधर्मा के आश्रित कवि कालिदास थे और उसी की दिग्विजय आधार पर रघुकी दिग्विजयकी रचना हुई।

यह कल्पना पूर्णतया भ्रान्ति की नीवपर स्थित है। ५४४ ई० में यदि कोई विक्रमादित्य रहा भी हो तो वह हूणारि होगा 'शकारि' नहीं। संसारके इतिहासमें किसीभी संवत्को आज चलाकर ६०० वर्ष पूर्व प्राचीनताके लिये धकेलने का कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं। ४७३ ई० के मन्दसौर शिलालेखमें मेघदूत और ऋतुसंहार के पद्योंकी स्पष्ट छाप है। अतः उक्त कल्पना निराधार है।

२—दूसरे वादके समर्थक पाश्चात्य और कई आधुनिक भारतीय भी हैं। इनका कथन है कि गुप्तकाल भारतीय साहित्यका स्वर्णयुग था। सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीयने विक्रमादित्यकी उपाधि धारण की थी और शकोंको परास्त किया था। कालिदासका विक्रमोर्वशीय, कुमारसंभव, आदि नामकरण और अपनी रचनामें गुप् धातुका अधिक प्रयोग यह सिद्ध करता है कि वे गुप्तकालमें थे। रघुकी दिग्विजय समुद्रगुप्तकी दिग्विजयका स्मरण कराती है। बौद्धकवि अश्वघोष और ग्रीक ज्योतिषका प्रभाव भी कालिदास पर पड़ा है, अतः वे गुप्तकालमें थे।

स्पष्ट प्रमाणोंके अभावमें यह मत भी उपेक्ष्य ही है। एकतो इस मतके समर्थकोंमें ऐक्य नहीं। कोई कालिदासको स्कन्दगुप्तके समयमें मानता है, कोई कुमारगुप्तके और कोई चन्द्रगुप्त द्वितीयके। दूसरी बात जो सबसे महत्त्वकी है वह यह है कि चन्द्रगुप्त द्वितीयका "विक्रमादित्य" उपाधि धारण करना ही सिद्ध करता है कि इस नामका कोई प्रबल पराक्रमी राजा पहिले हो चुका है (सौभाग्यसे वह इतिहासज्ञोंके लिये अब अज्ञात नहीं)। तीसरी बात—चन्द्रगुप्तने कोई संवत् नहीं चलाया, यदि चलाया भी हो तो वह प्राचीन कैसे हो गया। अश्वघोषको कालिदाससे पूर्ववर्ती माननेवाले उसकी प्राकृतको तो देखते हैं संस्कृतकी ओर नहीं देखते। अश्वघोषकी संस्कृतमें अत्यन्त कृत्रिमता है। वा

ध्वनिके लिये अर्थका गला घोंट देता है, उसकी शैली और रचनामें प्रयास-साध्यता है, जबकि कालिदासकी कविता स्वाभाविक और कृत्रिमतासे पूर्णतया मुक्त है। अतः अश्वघोषको कालिदाससे पूर्ववर्ती मानना भाषाके विकासज्ञानसे शून्यता प्रकट करना है।

इसी प्रकार ग्रीक ज्यौतिषका प्रभाव भी कालिदासपर नहीं पड़ा था। वस्तुस्थिति यह है कि ज्यौतिषकी उत्पत्ति ही भारतमें हुई और ग्रीकवालोंने उसे यहाँ से सीखा।

३—परम्परागत शैलीसे भारतीय साहित्य और संस्कृतिका अध्ययन करनेवाले प्रायः सभी विद्वान् तीसरे मतके समर्थक हैं कि उज्जयिनी नरेश परमारवंशीय राजा महेन्द्रादित्यके पुत्र विक्रमादित्यकी सभाके नवरत्नोंमें कालिदास थे। ये ही विक्रमादित्य परम उदार, पराक्रमी और गुणग्राही राजा थे जिन्होंने शकोंको परास्त करके ई० पू० ५७ में विक्रम संवत् चलाया था (इसके लिये देखिये डा० राजवली पाण्डेयका "विक्रमादित्य"नामक ग्रन्थ)। कालिदास और विक्रमादित्यका सम्बन्ध चिरकालसे भारतीय जनश्रुतिका आधार बना हुआ है। अन्तःसाक्ष्योंसे भी यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि कालिदासका यही काल है। उदाहरणके लिये संक्षेपमें निम्न बातें ज्ञातव्य हैं—

(क) मालविकाग्निमित्रकी कथासे सिद्ध है कि कविको शुङ्गवंशके इतिहासका पूरा ज्ञान था (ख) शुङ्ग सीमाके अन्तर्गत प्राप्त हुए भीटाके एक मुद्राचित्रमें ठीक वही दृश्य अङ्कित है जिसका वर्णन अभिज्ञान शाकुन्तलके प्रारम्भमें किया गया है। (ग) कालिदासकी शैली कृत्रिमतासे मुक्त और महाभाष्यसे मिलती है। उन्होंने कुछ वैदिक शब्दोंका भी प्रयोग किया है, यह प्रवृत्ति ई० पू० ३०० से ई० सन् के प्रारम्भिक कालतक मिलती है। (घ) ई० प्रथम शताब्दीमें रचित हालकी गाथा सप्तशतीमें विक्रमादित्यका उद्धरण दिया गया है। (ङ) श्रेष्ठी धनदत्तकी मृत्यु होनेपर संपत्तिका उसकी स्त्रीको न मिलकर राज्यके अधीन होने और अंगूठीकी चोरीपर वधका दण्ड आदि शासन-व्यवस्थासे स्पष्ट है कि कालिदास बृहस्पति स्मृतिकी अनुसृत न्याय व्यवस्था (ई० प्रथम शताब्दी) से पूर्व हो चुके थे—आदि अन्य भी कई प्रमाण हैं। इस मतपर एक आक्षेप यह किया जाता है कि विक्रमके नवरत्नोंमें

जिनका नाम है वे अमरसिंह, वराहमिहिर आदि बहुत बादमें हुए हैं अतः अनु
जनश्रुति विश्वसनीय नहीं। इसपर हमारा नम्र निवेदन है कि बादमें जो प्रसि व्यि
हुए वे ही इस पद्यमें कहे गये हैं, यह कोई प्रमाण तो है नहीं। संभवतः औ
नवरत्नोंमें परिगणित व्यक्तियोंकी कोई कृतियाँ उपलब्ध न होनेसे तद्विषयक उत्
ज्ञान न हो। इससे उनके नामकी सत्ता तो मिटायी नहीं जा सकती। अत
हमारे विचारसे भी कविका यही काल मानना उचित है।

विचार और रचना-शैली

कालिदास हिन्दू संस्कृतिके प्रतिनिधि कवि हैं। चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,), वर्ण और आश्रम व्यवस्था, अवतारवाद, पुनर्जन्मकी मान्यता, जन्मसे मृत्युपर्यन्त सभी संस्कारोंका विस्तृत और साङ्गोपाङ्ग वर्णन हमें इनकी रचनामें मिलता है। 'त्यागाय संभृतार्थानां'से ये स्पष्ट कर देते हैं कि कमाई त्यागके लिये ही होनी चाहिये। 'इष्टप्राप्तिका एकमात्र साधन तपस्या है' इस सिद्धान्तको इन्होंने जिस सार्वभौम रूपमें निवाहा उतना और किसीने नहीं। उनका प्रत्येक पात्र तपस्याकी कसौटीपर कसा गया है। और तो और उन्होंने साक्षात् ईश्वरको भी तपस्या करनेको वाध्य किया है—"स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार" और तपस्याद्वारा भगवान्को भी खरीदा हुआ दास बनाडाला "अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिः"। प्रेमका भारतीय आदर्श क्या है ? इसे इनकी रचनामें देखें। (देखिये उत्तरमेघ ५१ वें श्लोकका विशेष वक्तव्य)।

कालिदास वैदर्भीरीतिके सर्वोत्तम आदर्श माने जाते हैं। इनकी रचनाएं ललित, परिष्कृत, प्रसादपूर्ण और क्लिष्टता या कृत्रिमतासे सर्वथा रहित हैं। साधारण और हेय घटनाओंको भी कविने अपने रचनानैपुण्यसे भव्य, मार्मिक और चमत्कारपूर्ण बना दिया है। अस्थिपंजर कंकालमें प्राण फूंककर दिव्य सौन्दर्य प्रदान करनेमें कालिदास विश्वसाहित्यनिर्माताओंमें अग्रणी हैं। व्यञ्जकता इनके काव्यकी प्रथमश्रेणीकी विशेषता है। कथानकके विकासका असाधारण कौशल, चरित्रचित्रणकी अद्भुत क्षमता, मानवभावोंको मूर्तरूपसे व्यक्त करनेकी विलक्षण प्रतिभा, जड़से भी चेतनवत् व्यवहार करासकनेकी

अनुपम नैपुण्य इस महाकाव्यमें है। इनके प्रत्येक पात्रका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है तथा उसके भाव और भाषा ठीक उसीके अनुरूप हैं। शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारोंमें सुन्दर संतुलन है। अर्थकी वलि देकर शब्दका चमत्कार उत्पन्न करनेकी कविने कहीं चेष्टा नहीं की है।

'उपमा कालिदासस्य'

यों तो कालिदास सभी अलंकारोंकी रचनामें निपुण हैं किन्तु उपमामें तो कोई उनकी समता नहीं कर सकता। "मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ" "संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा। विवर्णभावं स स भूमिपालः नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे॥" "प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः" आदि सैकड़ों उपमाएँ हैं जो सुतरां मौलिक और मर्मस्पर्शिनी हैं। जहाँ कहीं भी उपमा आई है वहाँ कविने उसका संकेतमात्र ही नहीं किया अपितु उसे पूर्णताको पहुँचाया है। इनकी उपमाएँ भिन्न भिन्न शास्त्रोंसे संगृहीत हैं। व्याकरण तकको उपमामें नहीं छोड़ा है।

प्रकृतिका सूक्ष्मनिरीक्षण

अन्तर्जगत्के सौन्दर्यको वहिर्जगत्में भी देखते हुए कालिदासने प्रकृतिके साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित किया है फलतः इनका प्रकृतिपर्यवेक्षण उन्नत कोटिका है। इनकी प्रकृति केवल जडप्रकृति नहीं, उसका कोई भी अंश पूर्णतः चेतन है और उसमें मानवकी ही भाँति सुख-दुःख, आशा-निराशा, हर्ष-शोक, ध्यान और चिन्ताकी अनुभूति होती है। मेघदूत इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है जिसमें "पटुकरणैःप्रापणीय" सन्देशार्थों को "धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपात" मेघ द्वारा भेजा जा रहा है। कालिदासकी रचनामें लताएँ आँसू गिराती हैं। वृक्ष वस्त्राभूषण आदि प्रदान करते हैं। नदियाँ विलासिनी नायिकाओंके हावभाव प्रदर्शित करती हैं। वायुके झोंकेसे फड़फड़ाते किसलय ताल देते हैं। भौंरे मधुर संगीतकी तान छेड़ते हैं। चन्द्रमा किरणरूप अंगुलियोंसे रजनी नायिकाके विखरे अन्धकाररूप केशोंको हटाकर प्रदोषरूप मुखको चूमता है। इतना सब होते हुए भी प्रकृतिके रमणीय, कोमल और मधुर पहलूका ही चित्रण कविने किया है भीषण या भद्दे पहलूका नाममात्र भी नहीं। कालिदासके

इस विशिष्टगुणका अतिक्रमण तो क्या समता भी कोई नहीं कर सकता। कालिदासका प्रकृतिमें मानवताका यह आरोप ही आधुनिक छायावादका बीज माना जाय तो अत्युक्ति न होगी।

रचनाएँ

कालिदासके नामसे पाई जानेवाली रचनाओंकी संख्या ४० से ऊपर है जिनमें मुख्य हैं—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञान शाकुन्तल, रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, कुन्तलेश्वरदौत्य, घटकर्पर काव्य, राक्षस काव्य, दुर्घट काव्य, नलोदय, श्रुतबोध, वृन्दावन काव्य, विद्वद्विनोद काव्य, पुष्पवाणविलास, नवरत्नमाला, ज्योतिर्विदाभरण, अम्बास्तव, कालीस्तोत्र, गङ्गाष्टक (दो); चण्डिकादण्डक, श्यामलादण्डक, मकरन्दस्तव, लक्ष्मीस्तव, लघुस्तव, कल्याणस्तव, शृङ्गारसार, शृङ्गारतिलक और सेतुबन्ध।

संस्कृत साहित्यमें कालिदासकी जो ख्याति हुई उससे अवान्तरकालीन कवियोंने भी अपने व्यक्तित्वको छिपाकर कालिदासके नामसे अपनी रचनाओंको विख्यात करानेकी चेष्टा की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। अन्तःसाक्ष्य एवं वहिःसाक्ष्यके आधारपर प्रारम्भके तीन नाटक और तीन काव्य तो निश्चय ही एक व्यक्तिकी कृति हैं, इसमें किसी प्रकारके विवादको स्थान नहीं। ऋतुसंहार, कुन्तलेश्वरदौत्य और श्रुतवोध भी परम्परासे कालिदासकी ही कृतियाँ मानी जाती हैं। शेष की स्वतन्त्र मीमांसा अपेक्षित है।

मेघदूत

यह एक खण्ड काव्य है। "खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि यत्"—साहित्यदर्पण। खण्डकाव्यमें जीवनके किसी एक खण्ड (पहलू) का ही चित्रण किया जाता है। इसीको गीतिकाव्य भी कहा जाता है। यों तो इस प्रकारके काव्योंके बीज हमें वेदोंमें (उषः सूक्त आदि) भी देखनेको मिलते हैं किन्तु लौकिक साहित्यमें मेघदूत सर्वप्रथम माना जाता है। कलाकी परिपक्वता, कल्पनाकी ऊँची उड़ान और विषयका धारावाहिक प्रवाह जैसा इसमें है ऐसा अन्यत्र कहीं नहीं। यही कारण है कि यह छोटासा ग्रन्थ इतना लोकप्रिय हुआ कि इसकी पचासों टीकाएँ हुईं, दुनियाँ की कई भाषाओंमें अनुवाद हुए और इसके अनुकरणपर हंसदूत पवनदूत आदि कितने ही दूतकाव्योंका निर्माण

हुआ। जैसाकि मल्लिनाथने कहा है सीताके प्रति हनूमान्को दूत बनाकर भेजनेकी घटनासे कविको प्रेरणा मिली। प्रेरणा कहींसे भी मिली हो किन्तु उस बीजके आधारपर उगाया हुआ यह सरसपादप कविकी अपनी मौलिक कृति है, इसमें सन्देह नहीं। मेघदूत मन्दाक्रान्ता छन्दमें एक विरही यक्षकी वेदनाभरी वह कहानी है जो मानवके हृदयको द्रवीभूत कर देती है।

अपने कर्तव्यसे च्युत कोई यक्ष उसके स्वामी कुबेर द्वारा एक वर्षके लिये निर्वासित होकर रामगिरि पर्वतपर रहता था। चौमासा लगते ही उसे अपनी विरहविधुरा पत्नीकी याद आती है। आकाशमें उमड़ते मेघको देख वह उसका स्वागत करता हुआ उसके द्वारा अपना कुशल-समाचार प्रियातक पहुंचाने तथा अपने सच्चे प्रेमका विश्वास दिलानेकी प्रार्थना करता है। अलकापुरी उत्तरमें कैलासके पास है और यक्ष दक्षिणमें रामगिरिपर रहता है अतः यक्ष उसे गन्तव्य मार्गका निर्देश करता है—

मेघका मार्ग

यक्ष कहता है—हे मेघ ! तुम मित्र रामगिरिसे आज्ञा लेकर बलाकाओं और राजहंसोंके साथ सरसनिचुलोंसे भरे इस प्रदेशसे चलकर माल नामक क्षेत्रमें पहुँचना। वहाँसे पश्चिम मुड़कर बरसकर हलके होलेना और उत्तरकी ओर घूम जाना, आगे तुम्हें आम्रकूट पर्वत अपने शिखरपर धारण करेगा। वहींसे तुम्हें दूरपर विंध्याचलके प्रान्तभागमें बहती नर्मदा दिखाई देगी। वहाँसे आगे बढ़ोगे तो दशार्ण देशमें पहुँचोगे, जहाँकी राजधानी विदिशा प्रसिद्ध है। वहाँसे वेत्रवतीसे जल लेकर तुम विन्ध्याचल (नीचैराख्यगिरि)पर विश्राम करोगे। वहाँसे उत्तरकी ओर जाते हुए तुम्हारा मार्ग कुछ टेढ़ा तो अवश्य पड़ेगा पर उज्जयिनी तुम्हें अवश्य देखनी चाहिये, अतः बीचमें निर्विन्ध्या और सिन्धु नदियोंसे जल लेकर महासंपत्तिशालिनी उज्जयिनीमें जब भी पहुँचो सायंकाल तक वहाँ अवश्य ठहरना और महाकाल की आरतीमें सम्मिलित होना। रात वहाँ किसी छतके मुड़ेरेपर बिताकर सिप्रा के प्रातःकालीन वायुसे प्रेरित हो सूर्योदय होते ही आगे बढ़ना, तब गम्भीरा नदीसे होते हुए देवगिरि पर पहुँचोगे। वहाँ नियतरूपसे रहनेवाले भगवान्स्कन्द पर फूलोंकी वर्षा करना। आगे जाकर चर्मण्वती को पार करके दशपुरकी युवतियोंके नेत्रकौतूहलका

विषय बनते हुए और ब्रह्मावर्तको अपनी छायासे ढकते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचोगे
जहाँ अर्जुनने क्षत्रियोंके सिर काटकर ढेर लगा दिया था। वहाँसे आगे जाकर
उस सरस्वती नदीका जल लेना जिसे बलदेवजी अपनी प्रिय सुराको छोड़कर
भी पीते हैं। वहाँसे कनखल होते हुए गंगापर पहुँचोगे। गंगाजल पीकर आगे
चलोगे तो हिमाचल तुम्हारा स्वागत करेगा। वहाँ की वनाग्नि शान्तकर और
ओले बरसानेसे शरभोंको विकीर्णकर तुम उस स्थानपर पहुँचोगे जहाँ
शिवजीके चरणचिह्न बने हैं और भक्तलोग शिवपदकी प्राप्तिके लिये उसकी
परिक्रमा करते हैं। वहाँसे आगे बढ़कर हिमालयके दर्शनीय स्थलोंका अवलोकन
करते हुए परशुरामजीकी कीर्ति बढ़ानेवाले क्रौंचके दर्रेसे तिरछे होकर कैलाश
पहुँचना। वह तुम्हारा स्वागत करेगा और तुम शिवजीके साथ घूमती पार्वतीके
लिये सीढ़ी जैसा बनकर, देवाङ्गनाओं के लिये यंत्रधारागृह बनकर, ऐरावतके
लिये मुखपट (रूमाल) जैसा बनकर वहाँ टिकजाना। वहींसे तुम्हें अलका
दीखपड़ेगी, जिसे तुम अवश्य पहिचान लोगे।

यहाँ पूर्वमेघ समाप्त होता है उत्तरमेघमें प्रारम्भके ११ श्लोकोंमें दिव्य
नगरी अलकाका वर्णन है। फिर ६ श्लोकोंमें कुबेरके घरसे उत्तर सुन्दर इन्द्र
धनुष जैसे फाटकसे, छोटे मन्दार वृक्षसे, मरकतकी सीढ़ियोंवाली बावड़ीसे
सुनहरे केलोंकी बाड़वाले क्रीड़ाशैलसे, सुनहरे पक्षियोंके अड्डेसे तथा द्वारपर लिखे
शंख-पद्मके चिह्नोंसे यक्षने अपने घरकी पहिचान बताई है और मेघको निर्देश
किया है कि हाथीके बच्चेसा छोटा आकार बनाकर क्रीड़ाशैलपर बैठ जाना और
हलकी-हलकी बिजलीकी टिमटिमाहटसे भीतर झाँकना वहाँ तुम्हें मेरी प्रिया
दीखेगी। फिर १८ श्लोकोंमें यक्षपत्नी और उसकी दशाओंका वर्णन है। इसके
बाद यक्षने मेघको वह सन्देश कहनेको कहा है जिसके लिये इस ग्रन्थकी
रचना हुई है।

मेघका सन्देश

हे मानिनि! मैं प्रियंगुलताओंमें तुम्हारे शरीरकी, चकितहरिणीप्रेक्षणमें
तुम्हारी चितवनोंकी, चन्द्रमामें मुखके सौन्दर्यकी, मोरपंखके गुच्छोंमें जूड़ेकी और
नदी की लहरों में तुम्हारे भ्रूविलासोंकी कल्पना करता हूँ किन्तु किसी एकही
वस्तुमें ये सब नहीं मिलते; जिसमें तुम्हारी कल्पना कर सकूं। गेरू आदिसे

शिलापर तुम्हारा चित्र बनाता हूँ कि तुम रूठी हुई हो और अपना चित्र बनाकर तुम्हें मनाना चाहता हूँ किन्तु आँखें भर आती हैं, क्रूर विधाता चित्रमें भी हमदोनोंका मिलन नहीं सह सकता। स्वप्नमें जब कभी तुम्हें देखता हूँ तो सहसा आलिंगनकी इच्छासे हाथ ऊपर उठते हैं, उन खाली हाथोंको देखकर वनदेवता भी आँसू बहाते हैं। हिमालयसे दक्षिणको बहती हवाओंका इसलिये आलिंगन करता हूँ कि ये तुम्हारे शरीरको छूकर आ रही होंगी। यह लम्बे प्रहरोंवाली रात कैसे छोटी हो और तीव्र सन्तापवाले दिन कैसे सन्तापहीन हों, इस प्रकारकी दुर्लभ कामनाओंसे तुम्हारी वियोगव्यथाजन्य गाढ़ ऊष्माओंने मुझे अशरण कर दिया है। हृदयमें कितनी ही आशाएँ लेकर मैं अकेला विरहकी घड़ियाँ गिन रहा हूँ, हे कल्याणि ! तुम भी निराश न होना क्योंकि संसारमें सदा सुखी या दुःखी कोई नहीं रहता, भाग्य की दशा तो रथके पहिये की भाँति ऊपर-नीचे होती रहती है।

अब शापकी समाप्तिके ४ महीने रह गये हैं इन्हें आँख मूँदकर सह लो। इसके बाद तो शरद्की उजली रातोंमें हम दोनों, वियोगके कारण कई गुना बढ़ी हुई उन-उन इच्छाओंको मनमाने रूपमें भोगेंगे। फिर विरहसे पूर्व एक-दिन तुम मेरे गलेसे लिपटकर सोई थी सहसा रोती हुई उठगई थी, बार-बार पूछनेपर तुमने कहा था कि "धूर्त ! मैंने स्वप्नमें तुम्हें किसी स्त्रीसे रमण करते देखा है।" इस अभिज्ञानसे समझलेना कि सन्देश देनेवाला मैं कुशली हूँ और किसी प्रकारके लोकवादसे अमंगलकी आशंका न करना। विरहमें बहुतकाल बीत जानेपर प्रेममें कमी नहीं आती प्रत्युत अभिलषित उपभोगोंकी पूर्ति न होनेसे वह प्रेमराशि संचित रहती है।"

इतना सन्देश देकर यक्ष मेघसे कहता है कि हे मेघ ! इस प्रकार प्रथम विरहसे अत्यधिक शोकाकुल हुई अपनी सखीको आश्वस्त करके वहाँसे लौटते हुए अभिज्ञान-सहित प्रियाका समाचार सुनाकर प्रातःकालीन कुन्दके फूल जैसे मेरे जीवनको भी बचा देना। यह मेरी प्रार्थना उचित हो या अनुचित तुम मित्रताके नाते या विधुर समझकर मुझपर दया करके मेरे इस काम को करके स्वेच्छासे जहाँ चाहो जाओ। भगवान् करे तुम्हारा विद्युद्रूपा पत्नीसे क्षण-भरके लिये भी मेरी भाँति वियोग न हो।

मेघदूतस्थ-सूक्तियाँ

सूक्ति

—:०:—

❀ श्रीः ❀

महाकविश्रीकालिदासप्रणीतं

मेघदूतम्

(पूर्वमेघः)

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

श्रीमल्लिनाथकृता सञ्जीवनी

मातापितृभ्यां जगतो नमो वामार्धजानये ।
सद्यो दक्षिणदृक्पातसंकुचद्वामदृष्टये ॥

अन्तरायतिमिरोपशान्तये शान्तपावनमचिन्त्यवैभवम् ।
तन्नरं वपुषि कुञ्जरं मुखे मन्महे किमपि तुन्दिलं महः ॥
शरणं करवाणि कामदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥

इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।
नामूलं लिख्यते किंचिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥

'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्" इति शास्त्रात् काव्यादौ वस्तुनिर्देशात्कथां प्रस्तौति—कश्चिदिति ॥ स्वाधिकारात् स्वनियोगात्

प्रमत्तोऽनवहितः । "प्रमादोऽनवधानता" इत्यमरः । "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" इत्यपादानत्वम् । तस्मात्पञ्चमी । अतएवापराधाद्धेतोः कान्ताविरहेण गुरुणा दुर्भरेण । दुस्तरेणेत्यर्थः । "गुरुस्तु गीष्पतौ श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे" इति शब्दार्णवे । वर्षभोग्येण संवत्सरभोग्येण । "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया । "अत्यन्तसंयोगे च" इति समासः । 'कुमति च" इति णत्वम् । भर्तुः स्वामिनः शापेन अस्तंगमितो महिमा सामर्थ्यं यस्य सोऽस्तङ्गमितमहिमा । अस्तमिति मकारान्तमव्ययम् । तस्य "द्वितीया" इति योगविभागात्समासः । कश्चित् निर्दिष्टनामा यक्षो देवयोनिविशेषः । "विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥" इत्यमरः । जनकतनयायाः सीतायाः स्नानैरवगाहनैः पुण्यानि पवित्राण्युदकानि येषु तेषु । पावनेष्वित्यर्थः । छायाप्रधानास्तरवश्छायातरवः । शाकपार्थिवादित्वात्समासः । स्निग्धाः सान्द्राश्छायातरवो नमेरुवृक्षा येषु तेषु । वसतियोग्येष्वित्यर्थः । "स्निग्धं तु मसृणे सान्द्र" इति । "छायावृक्षो नमेरुःस्यात्" इति च शब्दार्णवे । रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु वसतिम् । "वहिवस्यर्तिभ्यश्च" इत्यौणादिकोऽतिप्रत्ययः । चक्रे कृतवान् । अत्र रसो विप्रलम्भाख्यः शृङ्गारः । तत्राप्युन्मादावस्था । अतएवैकत्रानवस्थानं सूचितमाश्रमेष्विति बहुवचनेन । सीतां प्रति रामस्य हनुमत्सन्देशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कविः कृतवानित्याहुः । अत्र काव्ये सर्वत्र मन्दाक्रान्तावृत्तम् । तदुक्तम्—"मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेदिति" ॥ १ ॥

गिरं गणेशं गिरिजां गिरीशं गुरुं च मूर्ध्ना प्रणिपत्य शश्वत् ।
पदार्थ-भावार्थ-सुटिप्पणात्मिकां करोमि व्याख्यामिह राष्ट्रभाषया ॥

पदार्थ—स्वाधिकारात्प्रमत्तः=अपने कार्यसे असावधान ("यक्षः"से अन्वय है) । कान्ताविरहगुरुणा=(अपनी) प्रियाके विरहसे असहनीय । वर्षभोग्येण=एक वर्ष तक भोगेजानेवाले । भर्तुः=स्वामी (कुबेर)-के । शापेन=शापसे । अस्तङ्गमितमहिमा=जिसकी सामर्थ्य क्षीण कर दी है (ऐसा) । कश्चित्=कोई, यक्षः=यक्ष । जनकतनया...दकेषु=जानकीद्वारा स्ना

करलेनेसे पवित्र जलोंवाले। स्निग्धच्छायातरुषु = घनीछायावाले वृक्षोंसे युक्त। रामगिर्याश्रमेषु = रामगिरिके आश्रमोंमें। वसतिं = निवास। चक्रे = करता था।

भावार्थ—कुवेरका अनुचर कोई यक्ष, अपने कार्यमें असावधानी करनेके कारण "एक वर्षतक स्त्रीसे नहीं मिल पाओगे"—ऐसे, कुवेरके कठोर शापसे सामर्थ्यहीन-सा होकर प्रियाके दुःसह वियोगसे कातर हुआ "रामगिरि" पर्वतके उन आश्रमोंमें दिन बिता रहा था, जिनके जल वनवास-कालमें सीताजीद्वारा स्नान करलेनेसे तीर्थरूप हो गये हैं और घनी छायावाले वृक्षोंसे जो सदा घिरे रहते हैं।

टिप्पणी—साहित्यशास्त्रके आदि प्रणेता भरतमुनिके "खण्डकाव्यमुखं कुर्यात्कश्चिदित्यादिभिः पदैः। सर्गवन्धे त्ववश्यं हि नाम कार्यं सुशोभनम्॥" इस निर्देशके अनुसार महाकवि कालिदासने यक्षका नाम न लेकर 'कश्चित्' से काव्य प्रारम्भ किया है। कुछ टीकाकारोंका कहना है कि यक्षको शाप मिला था और अभिशप्तका नाम लेनेसे दुःख होता है "अभिशप्तस्य यन्नाम तन्न कुर्यात्कथंचन", इसीसे कविने नामनिर्देश नहीं किया। अधिकारमें प्रमादकी कई किंवदन्तियां प्रचलित हैं। प्रसिद्धि यही है कि यह यक्ष कुवेरके स्वर्णकमलोद्यानका अधिकारी था। वह अपनी प्रियापर इतना अनुरक्त था कि एक दिन उसके बाहुपाशमें बद्ध होनेसे उद्यानमें न जा सका और दूसरे दिन प्रातः उसके स्वामी कुवेरको पूजाके समय कमलपुष्प नहीं मिले। (सम्भवतः वह कार्तिकमें हरिबोधिनी एकादशीका दिन था और पारणाकी पूजा थी) इसीसे "एकादशीको भी तुम स्त्री-सहवास नहीं छोड़ सकते" यह कहकर कुवेरने एक वर्ष तक स्त्री-वियोगका शाप दे दिया।

रामगिरि—मल्लिनाथने चित्रकूटको रामगिरि कहा है जो उचित नहीं है, क्योंकि आगे १७ वें श्लोकमें मेघके मार्गका निर्देश करता हुआ यक्ष स्वयं कहता है "अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमांश्चित्रकूटस्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः।" अर्थात् रामगिरिसे चित्रकूट पहुँचने तक मेघ अध्वक्लान्त हो जायगा। इससे स्पष्ट है कि चित्रकूट दूर होगा। वस्तुतः रामगिरि "रामटेक" पर्वत है, मराठीमें टेक या टेकण पर्वतका वाचक है। यह

स्थान नागपुरसे उत्तरकी ओर लगभग २४ मील पर है। यहीं पर भगवान् रामचन्द्रने, तपस्या करते हुए शम्बूक नामक शूद्रका वध किया था। आधुनिक अनुसन्धान कर्त्ताओंने मध्यप्रदेशके रामगढ़को रामगिरि माना है ॥१॥

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

तस्मिन्निति। तस्मिन्नद्रौ चित्रकूटाद्रौ अवलाविप्रयुक्तः कान्ताविरही। कनकस्य वलयः कटकम् "कटकं वलयोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। तस्य भ्रंशेन पातेन रिक्तः शून्यः प्रकोष्ठः कूर्परादधःप्रदेशो यस्य स तथोक्तः। "कक्षान्तरे प्रकोष्ठः स्यात्प्रकोष्ठः कूर्परादधः" इति शाश्वतः। विरहदुःखात्कृश इत्यर्थः। कामी कामुकः स यक्षः। कतिचिन्मासान्। अष्टौ मासानित्यर्थः। "शेषान्मासान्गमय चतुरः" इति वक्ष्यमाणत्वात्। नीत्वा यापयित्वा। आषाढानक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्याषाढी। 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यण्। "टिड्ढाणञ्—" इत्यादिना ङीप्। साषाढ्यस्मिन्पौर्णमासीत्याषाढो मासः। "सास्मिन्पौर्णमासीति संज्ञायाम्" इत्यण्। तस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुमाक्रान्तकूटम्। वप्रक्रीडा उत्खातकेलयः। "उत्खातकेलिः क्रीडाद्यैर्वप्रक्रीडा निगद्यते" इति शब्दार्णवे। तासु परिणतस्तिर्यग्दन्तप्रहारः। "तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः" इति हलायुधः। स चासौ गजश्च तमिव प्रेक्षणीयं दर्शनीयं मेघ ददर्श। "प्रत्यासन्ने नभसि" इति वक्ष्यमाण नभोमासस्य गजप्रेक्षणीयमित्यत्रेवलोपाल्लुप्तोपमा। केचित् "आषाढस्य प्रथमदिवसे" इत्यत्र प्रत्यासत्त्यर्थं "प्रशमदिवसे" इति पाठं कल्पयन्ति। तदसङ्गतम्। प्रथमातिरेके कारणाभावान्नभोमासस्य प्रत्यासत्त्यर्थमित्युक्तमिति चेन्न। प्रत्यासत्तिमात्रस्य मासप्रत्यासत्त्यैव प्रथमदिवसस्याप्युपपत्तेः। अत्यन्तप्रत्यासत्तेरुपयोगाभावेनाविवक्षितत्वात्। विवक्षितत्वे वा स्वपक्षेऽपि प्रथमदिवसातिक्रमेण मेघदर्शनकल्पनायां प्रमाणाभावेन तदसम्भवात्। प्रत्युतास्मत्पक्ष एव

कुशलसन्देशस्य भाव्यनर्थप्रतीकारार्थस्य पुरत एवानुमानयुक्तं भवतीत्युपयोगसिद्धिः। ननून्मत्तस्य नायं विवेक इति चेन्न। उन्मत्तस्य नानर्थस्य प्रतीकारार्थं प्रवृत्तिरपीति सन्देश एव माभूत्। तथा च काव्यारम्भ एवाप्रसिद्धः स्यादित्यहो मूलच्छेदी पाण्डित्यप्रकर्षः। कथं तर्हि "शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ" इत्यादिना भगवत्प्रबोधावधिकस्य शापस्य मासचतुष्टयावशिष्टस्योक्तिः। दशदिवसाधिक्यादिति चेत्स्वपक्षेऽपि कथं सा विंशतिदिवसैर्न्यूनत्वादिति सन्तोष्टव्यम्। तस्मादीषद्वैषम्यमविवक्षितमिति सुष्ठूक्तम् "प्रथमदिवसे" इति॥ २॥

पदार्थ—अबलाविप्रयुक्तः = प्रियासे बिछुड़ा हुआ। कनक...प्रकोष्ठः = सोनेके कंकण गिर जानेसे शून्य कलाइयोंवाले। कामी = कामुक। सः = उस यक्षने। तस्मिन् अद्रौ = उस (रामगिरि) पर्वतमें। कतिचित् मासान् = कुछ महीनोंको। नीत्वा = बिताकर। आषाढ़स्य = आषाढ़ मासके। प्रथमदिवसे = प्रधान (प्रसिद्ध, हरिशयनी एकादशीके) दिनमें। आश्लिष्टसानुं = पहाड़की चोटीसे सटे हुए। वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयं = दांतोंके तिरछे प्रहारसे मिट्टी उखाड़ते हाथी जैसा, दीखते हुए। मेघम् = मेघको। ददर्श = देखा।

भावार्थ—प्रियाके विरहसे यक्ष इतना दुबला हो गया था कि उसके हाथोंसे सोनेके कड़े नीचे खिसक गये थे। इसी अवस्थामें उस कामी यक्षने कुछ (आठ) महीने रामगिरि पहाड़ पर बिताये। आषाढ़ मासके प्रसिद्ध (हरिशयनी एकादशीके) दिन उसने पहाड़की चोटीसे सटे हुए मेघको देखा, जो कि दांतोंके तिरछे प्रहारसे मिट्टी उखाड़ते हुए हाथी-सा दीख रहा था।

टिप्पणी—टीकाकारोंने "आषाढस्य प्रथमदिवसे"का अर्थ "आषाढ़ मासके प्रारम्भका दिन" किया है, कुछ लोग "प्रत्यासन्ने नभसि..." इस आगेके श्लोकसे संगति मिलानेके लिये "प्रशमदिवसे" ऐसा पाठ मानते हैं। मल्लिनाथने इसपर पूरा शास्त्रार्थ ही खड़ा कर दिया है। हमारे विचारसे "आद्ये प्रधाने प्रथमस्त्रिषु" "प्रथमः स्यात्प्रधानाद्योः" इस अमर और हेमकोशके अनुसार प्रथम शब्दका आद्य अर्थ न लेकर प्रधान (मुख्य) अर्थ

लेनेसे सारी शंकाओंका समाधान होजाता है। हरिशयनी आषाढ़मासका प्रधान दिवस है, उससे ४ दिन वाद श्रावण लग जाता है अतः 'प्रत्यासन्ने नभसि' से भी संगति हो जाती है। हरिशयनीसे हरिवोधिनी तक चातुर्मास माना जाता है, अतः "शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ" और "शेषान्मासान् गमय चतुरः" इससे भी संगति ठीक बैठती है। यदि प्रथमका आद्य अर्थ ही लेना हो तब भी "आषाढ़में पढ़नेवाले चतुर्मासके प्रथम दिन अर्थात् हरिशयनी एकादशी" यह माननेमें किसी प्रकारकी विप्रतिपत्ति नहीं होती ॥ २ ॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

तस्येति ॥ राजानो यक्षाः। "राजा प्रभौ नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः" इति विश्वः। राज्ञां राजा राजराजः कुबेरः। "राजराजो धनाधिपः" इत्यमरः। "राजाहःसखिभ्यष्टच्" इति टच्प्रत्ययः। तस्यानुचरो यक्षः। अन्तर्बाष्पो धीरोदात्तत्वादन्तःस्तम्भिताश्रुः सन्। कौतुकाधानहेतोरभिलाषोत्पादकारणस्य "कौतुकं चाभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः" इति विश्वः। तस्य मेघस्य पुरोऽग्रे कथमपि। गरीयसा प्रयत्नेनेत्यर्थः। "ज्ञानहेतुविवक्षायामप्यादिकथमव्ययम्। कथमादि तथाप्यन्तं यत्नगौरवबाढयोः ॥" इत्युज्ज्वलः। स्थित्वा चिरं दध्यौ चिन्तयामास। 'ध्यै चिन्तायाम्' इति धातोर्लिट्। मनोविकारोपशमनपर्यन्तमिति शेषः। विकारहेतुमाह—मेघालोके इति। मेघालोके मेघदर्शने सति सुखिनोऽपि प्रियादिजनसङ्गतस्यापि चेतश्चित्तमन्यथाभूता वृत्तिर्व्यापारो यस्य तदन्यथावृत्ति भवति। विकृतिमापद्यत इत्यर्थः। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि कण्ठालिङ्गनार्थिनि जने। दूरे संस्था स्थितिर्यस्य तस्मिन्दूरसंस्थे सति किं पुनः। विरहिणः किमुत वक्तव्य-

मित्यर्थः। विरहिणां मेघसन्दर्शनमुद्दीपनं भवतीति भावः। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। तदुक्तं दण्डिना—"ज्ञेयःसोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किञ्चन। तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः" इति ॥ ३ ॥

पदार्थ—राजराजस्य=कुबेरके, अनुचरः=सेवक यक्षने। अन्तर्बाष्पः=भीतर ही भीतर आँसू रोकते हुए। कौतुकाधानहेतोः=उत्कंठा उत्पन्न करनेवाले। तस्य=उस मेघके। पुरः=सामने। कथमपि=किसी प्रकार, बड़े प्रयाससे। स्थित्वा=खड़े होकर। दध्यौ=सोचा। मेघालोके=बादलके दिखनेपर। सुखिनःअपि=सुखी व्यक्तिका भी। चेतः=चित्त। अन्यथावृत्ति=दूसरे ही प्रकारके व्यवहारवाला (विकृत)। भवति=हो जाता है। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि=आलिंगनकी कामनावाले। जने=व्यक्तिके। दूरसंस्थे=दूर होनेपर। किंपुनः=फिर कहना ही क्या।

भावार्थ—कुबेरका अनुचर वह यक्ष, अपने आँसुओंको अन्दर ही रोककर (डबडबायी आँखोंसे), प्रियासे मिलनेकी उत्कण्ठा उत्पन्न करनेवाले उस मेघके सामने खड़ा होकर देरतक सोचता रहा—कि वर्षाकालके मेघको देखकर तो सुखी (सुरतसुखासक्त) व्यक्तिकी भी वासना जागृत हो जाती है। जिस बेचारेकी स्त्री इतनी दूर हो, उसकी (मेरे जैसे व्यक्तिकी) क्या दशा होगी?

टिप्पणी—कुछ टीकाकारोंने "केतकाधानहेतोः" पाठ माना है। इसका तात्पर्य है "जिस मेघको देखकर केतकीवृक्षमें आधानक्रिया हो जाती है" (ऐसी कविसमय प्रसिद्धि है) अर्थात् केतकी जैसे अचेतन पदार्थमें भी जब मेघको देखकर विकार उत्पन्न हो जाता है तो चेतन प्राणियोंका क्या कहना है? यह ध्वनि है। इस पाठकी अपेक्षा "कौतुकाधानहेतोः" पाठ अच्छा है। सुखिनःका अर्थ स्त्रीसे युक्त (अविरही) है—"तपस्तप्यति धर्मार्थं धर्माच्च सुखसंभवः। सुखमूलाः स्त्रियो नित्यं तासु सम्भोग इष्यते।" ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी,
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै,
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

प्रत्यासन्न इति ॥ स यक्षः। यश्चिरं दध्यौ स इत्यर्थः। नभसि श्रावणे—"नभः खं श्रावणो नभाः" इत्यमरः। प्रत्यासन्ने आषाढस्यानन्तरं संनिकृष्टे। प्राप्ते सतीत्यर्थः। **दयिताजीवितालम्बनार्थी** सन्। वर्षाकालस्य विरहदुःखजनकत्वात् "उत्पन्नार्थप्रतिकारादनर्थोत्पत्तिप्रतिबन्ध एव वरम्" इति न्यायेन प्रागेव प्रियाप्राणधारणोपायं चिकीर्षुरित्यर्थः। जीवनस्योदकस्य मूतः पटबन्धो वस्त्रबन्धो जीमूतः। पृषोदरादित्वात्साधुः "मूतः स्यात्पटबन्धेऽपि" इति रुद्रः। तेन **जीमूतेन** जलधरेण। प्रयोज्येन **स्वकुशलमयीं** स्वक्षेमप्रधानां **प्रवृत्तिं** वार्ताम्। "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः" इत्यमरः। **हारयिष्यन्**प्रापयिष्यन्। "लृट् शेषे च" इति चकारात्क्रियार्थक्रियोपपदाल्लृट्प्रत्ययः। जीवनार्थं कर्म जीवनप्रदेनैव कर्तव्यमिति भावः। "हृक्रोरन्यतरस्याम्" इति कर्मसंज्ञाया विकल्पात् पक्षे कर्तरि तृतीया। **प्रत्यग्रैरभिनवैः** कुटजकुसुमैर्गिरिमल्लिकाभिः। "कुटजो गिरिमल्लिका" इति हलायुधः। **कल्पितार्घाय** कल्पितोऽनुष्ठितोऽर्घः पूजाविधिर्यस्मै तस्मै "मूल्ये पूजाविधावर्घः" इत्यमरः। **तस्मै** जीमूताय। "क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम्" इति संप्रदानत्वाच्चतुर्थी। **प्रीतिप्रमुखानि** प्रीतिपूर्वकाणि वचनानि यस्मिन्कर्मणि तत्प्रीतिप्रमुखवचनं यथा तथा। शोभनमागतं **स्वागतं** स्वागतवचनं **प्रीतः** सन् **व्याजहार**। कुशलागमनं पप्रच्छेत्यर्थः। नाथेन त्वत्र "प्रत्यासन्ने मनसि" इति साधीयान्पाठः कल्पितः। प्रत्यासन्ने प्रकृतिमापन्ने सतीत्यर्थः। यस्तु तेनैव पूर्वपाठविरोधः प्रदर्शितः सोऽस्माभिः "आषाढस्य प्रथमदिवसे" इत्येतत्पाठविकल्पसमाधानेनैव समाधाय परिहृतः ॥ ४ ॥

पदार्थ—नभसि = श्रावण मासके। प्रत्यासन्ने = समीप आनेपर। दयिताजीवितालम्बनार्थी = प्रियाके जीवनधारणका इच्छुक। सः = वह (यक्ष)। जीमूतेन = मेघके द्वारा। स्वकुशलमयीं = अपनी (यक्षकी) कुशलको बतलानेवाली। प्रवृत्तिं = वार्ताको। हारयिष्यन् = भेजना चाहता हुआ। (अत एव) प्रीतः = प्रसन्न। प्रत्यग्रैः = नवीन। कुटजकुसुमैः = कुटजके फूलोंसे। कल्पितार्घाय = तैयार की है अर्घ (पूजासामग्री) जिसके लिये (ऐसे)। तस्मै = उस (मेघ)-के लिये। प्रीतिप्रमुखवचनं = प्रेमका प्रसिद्ध शब्द। स्वागतम् = शुभागमन (ऐसा)। व्याजहार = बोला।

भावार्थ—(वर्षाकाल आ रहा है, कहीं विरहमें मेरी प्रिया प्राणत्याग न करदे इस आशंकासे) श्रावण समीप होनेसे अपनी प्रियाके प्राणोंका आसरा चाहते हुए यक्षने, मेघद्वारा अपना कुशल-समाचार भेजनेकी इच्छासे प्रसन्न होकर ताजे कुरैयाके फूलोंसे मेघके लिये पूजासामग्री तैयार की और प्रेमपूर्ण शब्दोंसे उसका स्वागत किया।

टिप्पणी—"दयितायाः प्रियायाः जीवितम्, तस्य आलम्बनमुपायः, तस्य-अर्थी इच्छुकः" यह यक्षका विशेषण है। कुछ टीकाकारोंने "जीवितालम्ब-नार्थी" ऐसा द्वितीयान्त पाठ करके इसे प्रवृत्तिका विशेषण माना है। "प्रत्यासन्ने नभसि" को "प्रत्यासन्ने मनसि" पढ़कर "चेत आजानेपर" ऐसा अर्थ भी किया है। जीमूत मेघका नाम है—जीवनं जलं जीवितं च मूतं बद्धमनेनेति। प्रियव्यक्तिके आनेपर जो कुशल प्रश्न पूछा जाता है उसे स्वागत कहते हैं—"सपद्युपस्थिते मित्रे कुशलेनागतं त्वया। इति यत्प्रश्नवचनं तत्स्वागत-मुदाहृतम्—" इति बलः ॥ ४ ॥

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

ननु चेतनसाध्यमर्थं कथमचेतनेन कारयितुं प्रवृत्त इत्यपेक्षायां कविः समाधत्ते—धूमेति ॥ धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुद्वायुश्च तेषां सन्नि-पातः संघातो मेघः क्व। अचेतनत्वात्संदेशानर्ह इत्यर्थः। पटुकरणैः समर्थेन्द्रियैः। "करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि" इत्यमरः। प्राणिभिश्चे-तनैः। "प्राणी तु चेतनो जन्मी" इत्यमरः प्रापणीयाः प्रापयितव्याः। संदिश्यन्त इति संदेशास्त एवार्थाः क्व। इत्येवमौत्सुक्यादिष्टार्थोद्युक्त-त्वात्। 'इष्टार्थोद्युक्त उत्सुकः" इत्यमरः। संप्रदानत्वात्कुशलप्रश्नेनाभिमुखी-चकारेत्यर्थः। अपरिगणयन्नविचारयन्गुह्यको यक्षस्तं मेघं ययाचे याचित-

वान् । "टुयाचृ याच्ञायाम्" । तथाहि । कामार्ता मदनातुराश्चेतनाश्चा
नाश्च तेषु विषये प्रकृतिकृपणाः स्वभावदीनाः । कामान्धानां युक्तायुक्त
विवेकशून्यत्वादचेतनयाच्ञा न विरुध्यत इत्यर्थः । अत्र मेघ-संदेशयोर्वि
योर्घटनाद्विषमालङ्कारः । तदुक्तम्—विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिर्यत्रानर्थस्य
भवेत् । विरूपघटना चासौ विषमालङ्कृतिस्त्रिधा ॥" इति । सा चार्थान्त
न्यासानुप्राणिता, तत्समर्थकत्वेनैव चतुर्थपादे तस्योपन्यासात् ॥ ५ ॥

पदार्थ—धूमज्योतिःसलिलमरुतां = धूआँ, प्रकाश, जल और वायुक
सन्निपातः = मिश्रणरूप । मेघः = मेघ । क्व = कहाँ ? (और) पटुकरणैः
कुशल (समर्थ) इन्द्रियोंवाले । प्राणिभिः = जीवोंद्वारा । प्रापणीयाः = प
चाने योग्य । सन्देशार्थाः = सन्देश वाक्य । क्व = कहाँ । औत्सुक्यात् = मो
कारण । इति = इस बातका । अपरिगणयन् = विचार न करता हुआ
गुह्यकः = यक्ष । तं = मेघसे । ययाचे = प्रार्थना करता था । हि = क्योंकि
कामार्ताः = कामसे पीड़ित व्यक्ति । चेतनाचेतनेषु = सजीव और निर्जी
पदार्थोंमें । प्रकृतिकृपणाः = स्वभावतः विवेकरहित (होते हैं) ।

भावार्थ—कहाँ तो धूआँ, प्रकाश, जल और वायु इन निर्जीव पदार्थों
सम्मिश्रणसे बना हुआ मेघ, और कहाँ समर्थ और कुशल इन्द्रियोंवाले प्राणि
पहुँचाये जानेयोग्य सन्देश-वाक्य ? (अर्थात् इन दोनों में किसी प्रकार सा
नहीं) । फिर भी विरहजन्य मोहके कारण इस बातका विचार न करते
यक्षने मेघसे प्रार्थना की । क्योंकि कामवासनासे सताये हुए व्यक्तियोंमें विवे
नहीं रह जाता ।

टिप्पणी—सूर्यके प्रचण्ड तापसे समुद्रका जल धुआँ (वाष्प) बन
हवामें उड़ जाता है और बहुत ऊँचा आसमानमें जाकर फैल जाता है । चूँ
ऊपर भापको ठंडक मिलती है अतः वे भापके कण इकट्ठा होकर गाढ़े
जाते हैं किन्तु हवा में तैरते रहते हैं । ये ही मेघ हैं । कालिदासकी बहुमु
प्रतिभाका यह उत्तम उदाहरण है । इससे स्पष्ट है कि रसायन विज्ञान पर
उनका अधिकार था ।

यक्ष और गुह्यक ये देवताओंकी दो अलग-अलग जातियाँ नहीं हैं। धनरक्षाके अधिकारमें नियुक्त यक्ष ही गुह्यक कहे जाते हैं। "धनं रक्षन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः"—रन्ति कोश। औत्सुक्यका अर्थ यहाँ उत्कण्ठा नहीं, मोह है—"औत्सुक्यं स्यादनुस्मृत्या विप्रयोगं विमोहनम्॥" ॥ ५॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६॥

जातमिति॥ हे मेघ! त्वां भुवनेषु विदिते भुवनविदिते। "निष्ठा" इति भूतार्थे क्तः। "मतिबुद्धि—" इत्यादिना वर्तमानार्थत्वेऽपि "क्तस्य च वर्तमाने" इति भुवनशब्दस्य षष्ठ्यन्तत्तानियमात्समासो न स्यात्। "क्तेन च पूजायाम्" इति निषेधात्। पुष्कराश्चावर्तकाश्च केचिन्मेघानां श्रेष्ठास्तेषां वंशे जातम्। महाकुलप्रसूतमित्यर्थः। कामरूपमिच्छाधीनविग्रहम्। दुर्गादिसंचारक्षममित्यर्थः। मघोन इन्द्रस्य प्रकृतिपुरुषं प्रधानपुरुषं जानामि। तेन महाकुलप्रसूतत्वादिगुणयोगित्वेन हेतुना विधिवशाद्दैवायत्तत्वात्। "विधिर्विधाने दैवे च" इत्यमरः। वशमायत्ते "वशमिच्छाप्रभुत्वयोः" इति विश्वः। दूरे बन्धुर्यस्य स दूरबन्धुर्वियुक्तभार्योऽहं त्वय्यर्थित्वं गतः। ननु याचकस्य याच्ञाया याच्यगुणोत्कर्षः कुत्रोपयुज्यत इत्याशङ्क्य दैवाद्याच्ञाभङ्गेऽपि लाघवदोषाभाव एवोपयोग इत्याहुः—याच्ञेति। तथाहि अधिगुणेऽधिकगुणे पुंसि विषये याच्ञा मोघा निष्फलापि वरमीषत्प्रियम्। दातुर्गुणाढ्यत्वात्प्रियत्वं याच्ञावैफल्यादीषत्प्रियत्वमिति भावः। अधमे निर्गुणे याच्ञा लब्धकामापि सफलापि न वरम्। ईषत्प्रियमपि न भवतीत्यर्थः। "देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीवे मनाक्प्रिये" इत्यमरः॥ अर्थान्तरन्यासानुप्राणितः प्रेयोऽलंकारः। तदुक्तं दण्डिना—"प्रेयः प्रियतराख्यानम्" इति। एतदाद्ये पादत्रये चतुर्थपादस्थेनार्थान्तरन्यासेनोपजीवितमिति सुव्यक्तमेतत्॥ ६॥

पदार्थ—भुवनविदिते = जगत्प्रसिद्ध । पुष्करावर्तकानां = पुष्करावर्तक नामक मेघोंके । वंशे जातं = वंशमें उत्पन्न । कामरूपं = इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ । मघोनः प्रकृतिपुरुषं = इन्द्रके प्रधान कर्मचारी । त्वां = तुमको जानामि=मैं जानता हूँ । तेन=इसलिये । विधिवशात् = भाग्यवश । दूरबन्धुः= दूर है बन्धु जिसका ऐसा । अहं = मैं (यक्ष) । त्वयि = तुम्हारे विषयमें अर्थित्वं गतः = याचक बना हूँ । (क्योंकि) अधिगुणे=गुणवान्से । याच्ञा= प्रार्थना । मोघा अपि=निष्फल भी । वरं=श्रेष्ठ है । अधमे=नीचसे । लब्धकामा= पूरी की गयी भी । न = (श्रेष्ठ) नहीं ।

भावार्थ—हे मेघ ! तुम पुष्करावर्तक नामके जगत्प्रसिद्ध मेघों के वंश में उत्पन्न हुए हो, इच्छानुकूल रूप धारण कर सकते हो देवराज इन्द्र के प्रधान सेवक हो, यह सब मैं जानता हूँ । इसी कारण भाग्यवशात् अपनी प्रियासे (या अपने बान्धवोंसे) दूर बिछुड़ा हुआ मैं, तुमसे याचना कर रहा हूँ । गुणवान् व्यक्तिसे की गई याचना निष्फल होनेपर भी अच्छी है, नीच व्यक्तिसे सफल हुई भी याचना अच्छी नहीं ।

टिप्पणी – मेघों की चार जातियाँ हैं—"पुष्करावर्तकाः शंखाः का- कान्ताः जलप्लुताः । इति वारिमुचां वंशाश्चतुर्धा परिकीर्तिताः ॥" ये मेघ प्रकारके दिखाई देते हैं अतः "कामरूपं" विशेषण दिया है । पुराणसर्वस्व कहा है—पुष्करा नाम ते मेघाः बृहन्तस्तोयमत्सराः । पुष्करावर्तका कारणेनेह शब्दिताः । नानारूपधरास्ते तु महाधीरस्वनास्तथा···॥ ६ ॥

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः,
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां,
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

संतप्तानामिति ॥ हे पयोद ! त्वं संतप्तानामातपेन वा प्रवासविरहेण वा संज्वरितानाम् । "संतापः संज्वरः समौ" इत्यमरः । शरणं पयोदप्र- नातपखिन्नानां प्रोषितानां स्वस्थानप्रेरणया च रक्षकोऽसि । "शरणं गृह

क्षत्रोः" इत्यमरः। तत्तस्मात्कारणाद्धनपतेः कुवेरस्य क्रोधेन विश्लेषितस्य प्रियया वियोजितस्य मे मम सन्देशं वार्तां प्रियाया हर। प्रियां प्रति नये-त्यर्थः। सम्वन्धसामान्ये षष्ठी। सन्देशहरणेनावयोः सन्तापं नुदेत्यर्थः। तत्र स्थाने सा स्थिता तत्स्थानस्य वा किं व्यावर्तकं तत्राह–गन्तव्येति। वहिर्भवं वाह्यम्। "वहिर्देवपञ्चजनेभ्यश्च" इति यञ्। बाह्य उद्याने स्थि-तस्य हरस्य शिरसि या चन्द्रिका तया धौतानि निर्मलानि हर्म्याणि धनिक-भवनानि यस्यां सा तथोक्ता। "हर्म्यादि धनिनां वासः" इत्यमरः। अनेन व्यावर्तकमुक्तम्। अलका नामालकेति प्रसिद्धा यक्षेश्वराणां वसतिः स्थानं ते गन्तव्या। त्वया गन्तव्येत्यर्थः। "कृत्यानां कर्तरि वा" इति षष्ठी ॥७॥

पदार्थ—पयोद=हे मेघ ! त्वम्=तुम। संतप्तानां=ताप (धूप या विरह-) से पीड़ितोंकी। शरणं=रक्षा करनेवाले। असि=हो। तत्=इसलिये। धन-पतिक्रोधविश्लेषितस्य=कुबेरके क्रोधसे विछुड़े हुए। मे=मेरे। सन्देशं=सन्देशको। प्रियायाः= प्रियाके पास। हर=ले जाओ। ते=तुम्हें। बाह्योद्यानस्थित=वाहर कैलासोपवनमें स्थित, हरशिरश्चन्द्रिका=शिवजीके शिरकी चाँदनीसे, धौतहर्म्या=जिसके महल धुले-से रहते हैं (ऐसी)। अलका नाम=अलका नामकी। यक्षेश्वराणां=सम्पन्न यक्षोंकी, वसतिः=वासभूमिमें। गन्तव्यम्=जाना है।

भावार्थ—हे जलद ! तुम संतप्त (ग्रीष्म अथवा विरहसे दुःखी) प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हो, अतः धनेश्वर कुबेरके क्रोधके कारण अपनी प्रियासे वियुक्त हुए मेरे, सन्देशको मेरी प्रियाके पास पहुँचा दो। तुम्हें अलका नामकी उस संपन्न यक्षोंकीनगरीमें जाना है जहाँके महल, समीपमें रहनेवाले शिवजीके मस्तकपर स्थित चन्द्रमाकी किरणोंसे सदा उज्ज्वल (प्रकाशमान) रहते हैं।

टिप्पणी—मेघसे पानी बरसने पर गर्मीसे संतप्तकी रक्षा होती है और बादल देखते ही वर्षाकालका आगमन देखकर प्रवासी अपनी प्रियाके पास पहुँचता है, अतः विरहीका भी वह रक्षक है। अलकापुरी कैलास पर्वत-पर है, वहीं शिवजीका निवास भी है। कुवेर शिवजीका सखा है (देखिये अमरकोश—"कैलासस्थानमलका पूः" और "कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः।" अतः दोनोंका पास-पास रहना स्वाभाविक है, बाह्योद्यानस्थितका

अत्यन्त समीपसे ही तात्पर्य है। कुछ टीकाकारोंने उद्यानका अर्थ निः
किया है अर्थात् बाहर निकलते ही जो शिवजीके दर्शन होते हैं उनके म
परकी चाँदनीसे...। किसीने "वाह्यं-वाहनयोग्यं, उत्-उन्नतं यत् यानम्-वृ
तत्र स्थितो यो हरः" अर्थात् कैलासकी चोटीमें ऊँचे वृषभपर बैठे
शिवजीके मस्तकपरकी चन्द्रकलासे सारी अलकाके भवन प्रकाशमान हो
हैं, यह अर्थ किया है। तात्पर्य प्रायः सबका एक ही है ॥ ७ ॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः,
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां,
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

मदर्थं प्रस्थितस्य ते पथिकाङ्गनाजनाश्वासनमानुषङ्गिकं फलमित्याने
त्वामिति ॥ पवनपदवीमाकाशमारूढं त्वाम्। पन्थानं गच्छन्ति येक
पथिकाः। "पथः ष्कन्" इति ष्कन्प्रत्ययः। तेषां वनिताः प्रोषितभर्तृकाण
प्रत्ययात्प्रियागमनविश्वासात्। "प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुह
इत्यमरः। आश्वसन्त्यो विश्वसिताः। श्वसिधातोः शत्रन्तात् "उगितश्च"
इति ङीप्। तथोद्गृहीतालकान्ता दृष्टिप्रसारार्थमुन्नमय्य धृतालकाग्र
सत्यः प्रेक्षिष्यन्ते अत्युत्कण्ठतया द्रक्ष्यन्तीत्यर्थः। मदागमनेन पथिकाः
मागमिष्यन्तीत्यत्राह। तथा हि। त्वयि संनद्धे व्यापृते सति विरह
विधुरां विवशां जायां क उपेक्षेत। न कोऽपीत्यर्थः। अन्योऽपि मद
तिरिक्तोऽपि यो जनोऽहमिव पराधीनवृत्तिः परायत्तजीवनको न स्या
स्वतन्त्रस्तु न कोऽप्युपेक्षेतेति भावः। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। तदुक्तम्
"कार्यकारणसामान्यविशेषाणां परस्परम्। समर्थनं यत्र सोऽर्थान्तरन्या
उदाहृतः।" इति लक्षणात् ॥ ८ ॥

पदार्थ—पवनपदवीम्=वायुमार्ग (आकाश)-में। आरूढं=चढ़े हुए
त्वां=तुमको। प्रत्ययाद्=विश्वाससे। आश्वसन्त्यः=आश्वस्त हुई (ऐसी
उद्गृहीतालकान्ताः=अलकोंको उठाये हैं बालोंके अग्रभाग जिन्होंने (ऐसी

थिकवनिताः=प्रवाससे लौटते हुए व्यक्तियोंकी स्त्रियाँ । प्रेक्षिष्यन्ते=देखेंगी । त्वयि सन्नद्धे=तुम्हारे उमड़ आनेपर । विरहविधुरां=वियोगसे व्याकुल । जायां=पत्नीको । कः उपेक्षेत=कौन उपेक्षा करेगा ? । यः अन्योऽपि=जो कि दूसरा भी कोई । अहमिव=मेरी भाँति । पराधीनवृत्तिः=दूसरेके आधीन आजीविकावाला । न स्यात्=न हो ।

भावार्थ—हे मेघ ! जब तुम आकाशमें चढ़ जाओगे तो प्रवासियोंकी पत्नियोंको अपने-अपने पतियोंके घर लौट आनेका विश्वास हो जायगा और वे आश्वस्त होकर अपने खुले हुए केशोंको ऊपर उठा-उठाकर तुम्हें देखेंगी । क्योंकि तुम्हारे उभड़ आनेपर अपनी विरहिणी पत्नीकी उपेक्षा कौन करेगा ? जब कि मेरी तरह किसी की आजीविका दूसरोंके अधीन न हो ।

टिप्पणी—"आश्वसन्त्यः" में श्वस् धातु अदादिगणका है शप्का लुक् हो जानेसे यहाँ नुम् नहीं होगा । इसीलिये मल्लिनाथ और भरतमल्लिक आदि टीकाकारोंने "आश्वसत्यः" यही पाठ माना है, किन्तु काशिकाकारने कई उदाहरण देकर आश्वसन्त्यः पाठ स्वीकार किया है और "निरंकुशाः कवयः" कहकर छुट्टी ले ली है । माधवने गणकार्यको अनित्य मानकर शप्का लोप न करके इसका समाधान किया है और कालिदासके इसी उदाहरणको प्रस्तुत किया है ॥ ८ ॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां,
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः,
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥९॥

निमित्तान्यपि ते शुभानि दृश्यन्त इत्याह—मन्दं मन्दमिति । अनुकूलः पवनो वायुस्त्वां मन्दं मन्दम् । अतिमन्दमित्यर्थः अत्र कथंचित्प्रायामेव द्विरुक्तिर्निर्वाह्या । "प्रकारे प्रवचनस्य" इत्येतदाश्रयणे तु कर्मधारयवद्भावे सुब्लुकि मन्दं मन्दमिति स्यात् । तदेवाह वामनः—"मन्दमन्दमित्यत्र प्रकारार्थे [illegible] ।" इति यथा [illegible]

फलानुरूपमित्यर्थः । "यथा सादृश्ययोग्यत्ववीप्सास्वार्थानतिक्रमे" यादवः। नुदति प्रेरयति। अयं सगन्धः सगर्वः। संवन्धीति केचि "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः" इत्युभयत्रापि विश्वः। तव वामो वामभागस्थः । "वामस्तु वक्रे रम्ये स्यात्सव्ये वामगते च" इति शब्दार्णवे। चातकः पक्षिविशेषश्च मधुरं श्राव्यं नदति रति। इदं निमित्तद्वयं वर्तते। वर्तिष्यते चापरं निमित्तमित्याह—गर्भ गर्भः कुक्षिस्थो जन्तुः। गर्भोपकारके ह्यग्नौ सुखे पनसकण्टके। कुक्षिस्थजन्तौ च" इति यादवः। तस्याधानमुत्पादनं तदेव उत्सवः। सुखहेतुत्वादिति भावः। "निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सव क्षणः" इत्यमरः॥ तस्मिन्परिचयादभ्यासाद्धेतोः खे व्योम्नि। आ मालाः। गर्भाधानसुखार्थं त्वत्समीपे वद्धपङ्क्तय इत्यर्थः। उक्तं च दये—"गर्भं वलाका दधतेऽभ्रयोगान्नाके निवद्धावलयः समन्तात्" बलाका वलाकाङ्गना नयनसुभगं दृष्टिप्रियं भवन्तं नूनं सत्यं सेविष्य अनुकूलमारुतचातकशब्दितवलाकादर्शनानां शुभसूचकत्वं शकुनशास्त्रे तद्विस्तरभयान्नालेखि॥ ९॥

पदार्थ—अनुकूलः=सहायक। पवनः=वायु। यथा त्वां=जिस प्र तुमको। मन्दं मन्दं=धीरे धीरे। नुदति=प्रेरित कर रहा है। अयं चातकः चातक। सगन्धः (सन्)=गर्वपूर्वक। ते वामः=तुम्हारे बायीं ओर। नदति=मधुर शब्द कर रहा है। गर्भाधानक्षणपरिचयात्=गर्भधारणकालका आनंद, उसके अभ्यासके कारण। खे=आकाशमें। आवद्धमालाः=पंक्ति हुई। वलाकाः=बगुलोंको स्त्रियाँ। नयनसुभगं=आँखोंको सुन्दर लगनेवा भवन्तं=आपको। सेविष्यन्ते=सेवित करेंगो।

भावार्थ—वायु तुम्हारे अनुकूल होकर जिस प्रकार तुम्हें आगे बढ़ा है, और (जलसे भरा हुआ देखकर) प्रसन्न हुआ चातक तुम्हारे बायीं मधुर-मधुर बोली बोल रहा है (यह तुम्हारी यात्राकी सफलताका द्योतक है गर्भाधानका समय जानकर आकाशमें पंक्ति बनाकर उड़ती हुई बलाकाएं निश्चय ही तुम्हारे पास आयेंगी।

टिप्पणी—यात्राके समय वायुका अनुकूल होना, मोर चातक चाष आदि पक्षियों तथा मृगोंका बायीं ओर होकर बोलना, ये शुभसूचक हैं। इसीलिये इन लक्षणोंको देखकर यक्ष मेघको यात्राकी सफलताका विश्वास दिला रहा है। बलाकाओंका पंक्तिबद्ध होकर आकाशमें उड़ना भी शकुन है। इसलिये कहता है कि यह तीसरा शकुन भी तुम्हारी यात्रामें अवश्य होगा, क्योंकि वर्षाकालमें बलाकायें गर्भधारण करती हैं, (ऐसी प्रसिद्धि है)। तुम्हें देखकर बलाकाओंको अपने गर्भाधानकालका स्मरण हो आयगा और आनन्दका अनुभव करती हुई वे तुम्हारे नयनाभिराम रूपको देखकर तुम्हारे पास पहुंचेंगी। "खे भवन्तं"का—खे=आकाशे भवन्तं=वर्तमानम्—ऐसा भी किसीने अर्थ किया है। 'सगन्धः'के स्थानमें 'सगर्वः' भी पाठान्तर है। अर्थ दोनोंका एक ही है। 'सगन्धः' पाठ अपेक्षाकृत अच्छा है। "गन्धः सम्बन्धलेशयोः" इस कोषके अनुसार गन्धका अर्थ सम्बन्ध भी है। चातक और बादलका सम्बन्ध प्रसिद्ध ही है। इससे 'तुम्हारा सम्बन्धी' यह अर्थ भी हो सकता है॥ ९॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां,
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि॥१०॥

तां चेति॥ हे मेघ! दिवसानामवशिष्टदिनानां गणनायां संख्याने तत्परामासक्ताम्। "तत्परे प्रसितासक्तौ" इत्यमरः। अतएवाव्यापन्नाममृताम्। शापावसाने मदागमनप्रत्याशया जीवन्तीमित्यर्थः। एकः पतिर्यस्याः सैकपत्नी ताम्। पतिव्रतामित्यर्थः। "नित्यं सपत्न्यादिषु" इति ङीप् नकारश्च। भ्रातुर्मे जायां भ्रातृजायाम्। मातृवन्निःशङ्कं दर्शनीयामित्याशयः। तां मत्प्रियामविहतगतिरविच्छिन्नगतिः सन्नवश्यं द्रक्ष्यसि चालोकयिष्यस्येव। तथाहि। आशातितृष्णा "आशा दिगतितृष्णयोः" इति यादवः। बध्यतेऽनेनेति बन्धो बन्धनम् वृन्तमिति यावत्। आशैव बन्धः आशाबन्धः कर्ता। प्रणयि प्रेमयुक्तमत एव कुसुमसदृशम् सुकुमारमित्यर्थः। अत

एव विप्रयोगे विरहे सद्यःपाति सद्योभ्रंशनशीलमङ्गनानां हृदयं जी
तम्। "हृदयं जीविते चित्ते वक्षस्याकूतहृद्ययोः" इति शब्दार्णवे। प्रा
प्रायेण रुणद्धि प्रतिबध्नाति। अर्थान्तरन्यासः ॥१०॥

पदार्थ—दिवसगणनातत्पराम्=शापान्तकी अवधिके दिनोंको गि
लगी हुई। अव्यापन्नाम्=मृत्युको न प्राप्त हुई। एकपत्नीं=पतिव्रता। तां भ्र
जायां=उस भ्रातृपत्नी (यक्षकान्ता)को। अविहतगतिः (सन्)=विना
रुकावटके जाते हुए तुम। अवश्यं द्रक्ष्यसि = अवश्य देखोगे। आशाबन्ध
आशाका बन्धन। कुसुमसदृशं = फूलके सदृश। प्रायशः = अधिकतर।
पाति = शीघ्र टूटजानेवाले। प्रणयि = प्रेमपूर्ण। अङ्गनानां हृदयं = स्त्रि
हृदयको। विप्रयोगे = विरहके समय। रुणद्धि = रोके रहता है।

भावार्थ—हेमेघ! यदि तुम विना कहीं रुके अलकामें पहुँचो
शापकी अवधिके दिन गिनती हुई (और पुनर्मिलनकी आशासे) जो
नहीं, ऐसी पतिपरायणा अपनी भाभीको (अर्थात् मेरी पत्नीको) अ
देखोगे। क्योंकि स्त्रियोंका हृदय फूलके समान कोमल, प्रायः शीघ्र गिरने
और प्रेमसे भरा होता है. वियोगके समय आशारूपी बन्ध (वृन्त) ही
रोके रहता है।

टिप्पणी—एकपत्नी=एक एव पतिर्यस्याः सा एकपत्नी अर्थात् पतिव्र
मेघको पुष्करावर्तक कुलमें उत्पन्न और इन्द्रका प्रधान कर्मचारी कहता
भी यक्ष अपनी पत्नीको उसकी भाभी बताता है, अर्थात् मेघको अपना
भाई कहता है। पत्नीके लिये दिया जानेवाला प्रणय-सन्देश अपनेसे
हाथों नहीं भेजा जा सकता। फिर भारतीय संस्कृतिमें देवर और भा
ऐसा सम्बन्ध माना गया है कि भाभी अपने गोपनीय सन्देशको भी दे
द्वारा पति तक पहुँचा सकती है और उसके गोप्यतम सन्देशको
सकती है। ॥ १० ॥

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।

आकैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥

सम्प्रति सहायसम्पत्तिश्चास्तीत्याह—कर्तुमिति ॥ यद् गर्जितं कर्तृ । महीमुच्छिलीन्ध्रामुद्भूतकन्दलिकाम् । "कन्दल्यां च शिलीन्ध्रः स्यात्" इति शब्दार्णवे । अत एवावन्ध्यां सफलां कर्तुं प्रभवति शक्नोति । शिलीन्ध्राणां भाविसस्यसम्पत्तिसूचकत्वादिति भावः । यदुक्तं निमित्तनिदाने—"कालाभ्रयोगादुदिताः शिलीन्ध्राः सम्पन्नसस्यां कथयन्ति धात्रीम्" इति । तच्छ्रवणसुभगं श्रोत्रसुखम् । लोकस्येति शेषः । ते तव गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्का मानसे सरस्युन्मनसः । उत्सुका इति यावत् । "उत्क उत्सुक उन्मनाः" इति निपातनात्साधु । कालान्तरे मानसस्य हिमदुष्टत्वाद्धिमस्य च हंसानां रोगहेतुत्वादन्यत्र गता हंसाः पुनर्वर्षासु मानसमेव गच्छन्तीति प्रसिद्धिः । विसकिसलयानां मृणालाग्राणां छेदैः शकलैः पाथेयवन्तः । पथि साधु पाथेयं पथि भोज्यम् । "पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ।" तद्वन्तः । मृणालकन्दशकलसम्बलवन्त इत्यर्थः राजहंसा हंसविशेषाः । "राजहंसास्तु ते चंचुचरणैर्लोहितैः सिताः" इत्यमरः । नभसि व्योम्नि । भवतस्तव । आ कैलासात्कैलासपर्यन्तम् । पदद्वयं चैतत् । सहायाः सयात्राः । "सहायस्तु सयात्रः स्यात्" इति शब्दार्णवे । सम्पत्स्यन्ते भविष्यन्ति ॥ ११ ॥

पदार्थ—यच्च = और जो । महीं=पृथ्वीको । उच्छिलीन्ध्रातपत्रां=ऊपरको उभड़ते हुए छत्रक (कुकुरमुत्ते) ही हैं, आतपत्र=छाते जिसके, ऐसी । कर्तुं प्रभवति = करनेमें समर्थ हैं । तत् = ऐसे । श्रवणसुभगं = सुननेमें मनोहर । ते गर्जितं = तुम्हारे गरजनेको । श्रुत्वा = सुनकर । मानसोत्काः = मानससरोवरको जानेकी उत्कण्ठावाले । बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः=मृणालके कोमल टुकड़ोंका संबलवाले । राजहंसाः = राजहंस । नभसि=आकाशमें । आकैलासात् = कैलास-पर्वत तक । भवतः = तुम्हारे । सहायाः संपत्स्यन्ते = सहायक हो जायँगे ।

भावार्थ—तुम्हारे जिस गर्जनके प्रभावसे पृथ्वीमें छातोंके समान शिलीन्ध्र (कुकुरमुत्ते) उग आते हैं, उस कर्ण-सुखदायी गर्जितको सुनकर मानससरोवरमें

जानेके लिये उत्कण्ठित हुए, मृणालके खण्डोंका चबैना लिये हुए राजहंस कैलास पर्वत तक आकाशमें तुम्हारा साथ देंगे।

टिप्पणी— शिलीन्ध्र शब्द छत्रक (कुकुरमुत्ते) और कन्दली दोनों अर्थोंका वाचक है। लोकोक्तिके अनुसार कुकुरमुत्तोंका उगना सुन्दर धान्योत्पत्तिका लक्षण है। मल्लिनाथ कन्दली अर्थ लेते हैं इसलिये उन्होंने आतपत्रांके स्थानमें अवन्ध्यां पाठ माना है। वर्षाकालमें अन्यत्र सब जगहका पानी गन्दा हो जाता है अतः राजहंस मानससरोवरमें चले जाते हैं। मानससरोवर कैलासके पास है और अलका (जहाँ मेघको जाना है) भी कैलासके ही पास है अतः वहीं तक तुम्हारा साथ हो जायगा, ऐसा यक्षका तात्पर्य है। राजहंस सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसका नीर-क्षीर विवेक प्रसिद्ध है। मार्गमें उत्तम साथी मिल जानेसे यात्रा सुखपूर्वक कट जाती है। इसीसे यक्षने इन्हींको मेघका साथी चुना ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥१२॥

आपृच्छस्वेति ॥ प्रियं सखायं प्रियसखम्। "राजाहःसखिभ्यष्टच्" इति टच् समासान्तः। तुङ्गमुन्नतं पुंसां वन्द्यैराराधनीयै रघुपतिपदै रामपादन्यासैर्मेखलासु कटकेषु। "अथ मेखला। श्रोणिस्थानेऽद्रिकटके कटिबन्धेभबन्धने" इति यादवः। अङ्कितं चिह्नितम्। इत्थं सखित्वान्महत्त्वात्पवित्रत्वाच्च सम्भावनार्हम्। अमुं शैलं चित्रकूटाद्रिमालिङ्ग्यापृच्छस्व साधो यामीत्यामन्त्रणेन सभाजय। "आमन्त्रणसभाजने आप्रच्छनम्" इत्यमरः। "आङिनुपृच्छ्योरुपसंख्यानम्" इत्यात्मनेपदम्। सखित्वं निर्वाहयति—काल इति। काले काले प्रतिप्रावृट्कालम्। सुहृत्समागमकालश्च कालशब्देनोच्यते। वीप्सायां द्विरुक्तिः। भवतः संयोगं सम्पर्कमेत्य चिरविरहजमुष्णं बाष्पमूष्माणं नेत्रजलं च। "बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः" इति विश्वः। मुञ्चतो यस्य शैलस्य स्नेहव्यक्तिः प्रेमाविर्भावो

भवति। स्निग्धानां हि चिरविरहसङ्गतानां वाष्पपातो भवतीति भावः ॥१२॥

पदार्थ—पुंसां=मनुष्योंके, वन्द्यैः = पूजनीय। रघुपतिपदैः= रामचन्द्रजीके चरणोंसे। मेखलासु = मध्यभागोंमें। अङ्कितं = चिह्नित हुए। प्रियसखं=अपने प्रियमित्र। तुङ्गं = ऊँचे। अमुं शैलं = इस रामगिरि पर्वतको। आलिङ्ग्य=गले मिलकर। आपृच्छस्व = जानेके लिये पूछो (अर्थात् उससे विदा लो)। काले काले = समय समयपर (प्रत्येक वर्षाकालमें)। यस्य=जिसका। संयोगमेत्य=संयोग पाकर। चिरविरहजं=दीर्घकालीनविरहजन्य। उष्णं वाष्पं=गरम-गरम आँसू। मुञ्चतः=छोड़ते हुए। भवतः=तुम्हारा। स्नेहव्यक्तिः=प्रेमका प्रकाशन। भवति = होता है।

भावार्थ—लोकवन्द्य भगवान् रामचन्द्रजीके श्रीचरणोंसे जिस रामगिरिके प्रान्तभाग पवित्र हो गये हैं ऐसे, अपने प्रिय मित्र इस ऊँचे पर्वतसे, जाते समय विदा लेलो। क्योंकि प्रत्येक वर्षाकालमें इससे मिलनेपर चिरविरहजन्य जो गरम-गरम आँसू तुम्हारे निकलते हैं उनसे तुम्हारा इसके प्रति स्नेह प्रकट होता है।

टिप्पणी—प्रत्येक ग्रीष्म ऋतुके वाद पहले-पहले जो पानी वरसेगा वह स्वभावतः उष्ण होगा। उसीकी उत्प्रेक्षा गरम आँसुओंसे की है। कालिदास परम शैव हैं किन्तु विष्णु के भी अनन्य उपासक और अवतारवादके परम समर्थक हैं, यह "पुंसां वन्द्यैः रघुपतिपदैः" इस कथनसे स्पष्ट हो जाता है। मेघदूतमें अन्यत्र भी उनकी रामभक्ति चरमसीमापर प्रकट हुई है, यह हम भूमिकामें स्पष्ट कर चुके हैं। मल्लिनाथ आदि टीकाकारोंने "भवतः संयोगम् एत्य उष्णं वाष्पं मुञ्चतः पर्वतस्य" ऐसा अन्वय किया है। मल्लिनाथ चित्रकूट को ही रामगिरि मानते हैं इसीलिये यहाँ भी "अमुं शैलं चित्रकूटाद्रिं" लिखते हैं। देखिये टिप्पणी श्लोक १॥ १२॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ॥१३॥

सम्प्रति तस्य मार्गं कथयति—मार्गमिति ॥ हे जलद ! तावदिदानीं कथयतः। मत्त इति शेषः। त्वत्प्रयाणस्यानुरूपमनुकूलं मार्गमध्वानम् "मार्गो मृगपदे मासि सौम्यर्क्षेऽन्वेषणेऽध्वनि" इति यादवः। शृणु तदनु मार्गश्रवणानन्तरं श्रोत्राभ्यां पेयं पानार्हम्। अतितृष्णया श्रोतव्यमित्यर्थः। पेयग्रहणात्संदेशस्यामृतसाम्यं गम्यते। मे सन्देशं वाचिकम् "सन्देशवाग्वाचिकं स्यात्" इत्यमरः। श्रोष्यसि। यत्र मार्गे खिन्नः खिन्नोऽभीक्ष्णंक्षीणबलः सन्। "नित्यवीप्सयोः" इति नित्यार्थे द्विर्भावः। शिखरिषु पर्वतेषु पदं न्यस्य निक्षिप्य। पुनर्बललाभार्थं क्वचिद्विश्रम्येत्यर्थः। क्षीणःक्षीणोऽभीक्ष्णं कृशाङ्गः सन्। अत्रापि कृदन्तत्वात्पूर्ववद्द्विरुक्तिः। स्रोतसां परिलघु गुरुत्वदोषरहितम्। उपलास्फालनखेदितत्वात्पथ्यमित्यर्थः। तथा च वाग्भट्टः—"उपलास्फालनक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः। हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवन्त्यमूः॥" इति पानीयमुपभुज्य शरीरपोषणार्थमभ्यवहृत्य च गन्तासि गमिष्यसि। गमेर्लुट् ॥ १३ ॥

पदार्थ—जलद=हे मेघ ! तावत्=पहले। कथयतः=कहते हुए (मुझसे), त्वत्प्रयाणानुरूपं=तुम्हारी यात्राके योग्य। मार्गं=मार्गको। शृणु=सुनो। यत्र=जिस मार्गमें। खिन्नःखिन्नः=थकता-थकता। शिखरिषु=पहाड़ोंपर। पदं न्यस्य=पैर रखकर। च=और। क्षीणः क्षीणः=बार-बार जल बरसानेसे क्षीण होनेपर। परिलघु=हलके। स्रोतसां=नदियोंके। पयः=जलको। उपभुज्य=उपभोग करके। गन्तासि=जाओगे। तदनु=इसके पश्चात्। श्रोत्रपेयम्=कानोंसे सुनने योग्य। मे सन्देशं=मेरे सन्देशको। श्रोष्यसि=सुनोगे।

भावार्थ—हे मेघ ! पहले तुम्हारी यात्राके योग्य मार्गको तुमसे कहता हूँ, सुनो। जिस मार्गसे चलते-चलते थकने पर पर्वतोंकी चोटियोंमें विश्राम करते हुए और स्थान-स्थानपर जल बरसानेसे क्षीण हुए तुम, नदियोंसे हलका पानी ले-लेकर चलोगे। इसके बाद श्रवण-सुखद मेरा सन्देश सुनोगे।

टिप्पणी—मेघको अलकापुरी भेजा जा रहा है। यदि वह कहे कि मैं किधरसे जाऊँगा ? कहाँ रहूँगा ? क्या खाऊँगा ? तो यक्ष उसकी पूरी

व्यवस्था कर देता है। खिन्नः-खिन्नः और क्षीणः-क्षीणःमें आधिक्य अर्थमें द्वित्व हुआ है, अधिक थकजानेपर और अधिक दुबले होनेपर, यह अर्थ है। परिलघु पयःका विशेषण है। हलका पानी स्वास्थ्यवर्धक होता है और भारी पानी रोगकारक। पहाड़ों और पत्थरोंसे टकरानेके कारण नदियोंका पानी हलका हो जाता है अतः गुणकारक कहा गया है। "कफघ्नं दीपनं हृद्यं लघु स्रोतःसमुद्भवम्"—भावप्रकाश ॥ १३ ॥

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि हरिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

अद्रेरिति ॥ पवनो वायुरद्रेश्चित्रकूटस्य शृङ्गं हरति किंस्वित्। किंस्विच्छब्दो विकल्पवितर्कादिषु पठितः। इति शङ्कयोन्मुखीभिरुन्नतमुखीभिः। "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" इति ङीप्। मुग्धाभिर्मूढाभिः। "मुग्धः सुन्दरमूढयोः" इत्यमरः। सिद्धानां देवयोनिविशेषाणामङ्गनाभिश्चकितचकितं चकितप्रकारं यथा तथा। "प्रकारे गुणवचनस्य" इति द्विर्भावः। दृष्टोत्साहो दृष्टोद्योगः सन्। सरसा आर्द्रा निचुलाः स्थलवेतसा यस्मिंस्तस्मात्। "वानीरे कविभेदे स्यान्निचुलः स्थलवेतसे" इति शब्दार्णवे। अस्मात्स्थानादाश्रमात्पथि नभोमार्गे दिङ्नागानां दिग्गजानां स्थूला ये हस्ताः करास्तेषामवलेपानाक्षेपान्परिहरन्। "हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात्करेभकरयोरपि" इति। "अवलेपस्तु गर्वे स्यात्क्षेपणे दूषणेऽपि च" इति च विश्वः। उदङ्मुखः सन्। अलकाया उदीच्यत्वादित्याशयः। खमाकाशमुत्पतोद्गच्छ। अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति—रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायः परापादितानां कालिदासप्रबन्धदूषणानां परिहर्त्ता यस्मिन्स्थाने तस्मात्स्थानादुदङ्मुखो निर्दोषत्वादुन्नतमुखः सपन्थि सारस्वतमार्गे दिङ्नागानाम्। पूजायां बहुवचनम्। दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावले-

पान्हस्तविन्यासपूर्वकाणि दूषणानि परिहरन् । "अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च" इति विश्वः अद्रेरद्रिकल्पस्य दिङ्नागाचार्यस्य शृङ्गं प्राधान्यम् । "शृङ्गं प्राधान्यसान्वोश्च" इत्यमरः । हरति किंस्विदिति हेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धैर्महाकविभिरङ्गनाभिश्च दृष्टोत्साहः सन्खमुत्पतोच्चैर्भवेति स्वप्रबन्धमात्मानं वा प्रति कवेरुक्तिरिति । "संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि । स्थित्वानुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् ।" इत्येतच्छ्लोकनिर्माणात्तस्य कवेर्निचुलसंज्ञेत्याहुः ॥ १४ ॥

पदार्थ—पवनः = वायु । अद्रेः शृङ्गम् = पहाड़की चोटीको । हरति किंस्वित् = ले जा रहा है क्या ? । इति = इस प्रकार । उन्मुखीभिः = ऊपरको मुख की हुई । मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः = भोली-भाली सिद्धोंकी स्त्रियोंद्वारा । चकितचकितम् = अत्यन्त आश्चर्यसे । दृष्टोत्साहः = देखा गया है उत्साह जिसका (ऐसे तुम) । सरसनिचुलात् = हरी-हरी स्थलवेंतोंसे युक्त । अस्मात्स्थानात् = इस स्थानसे (रामगिरिसे) । पथि = मार्गमें । दिङ्नागानां = दिग्गजोंके । स्थूलहस्तावलेपान् = वड़े-वड़े सूँडोंके प्रहारोंको । परिहरन् = छोड़ता हुआ । उदङ्मुखः = उत्तरकी ओर मुख करके । खम् = आकाशको । उत्पत = उड़ जाओ ।

भावार्थ—किसी पहाड़की चोटीको वायु उड़ाकर ले जा रहा है क्या ? ऐसा सोचकर ऊपरको मुख करके अत्यन्त आश्चर्यसे भोली-भाली सिद्धस्त्रियाँ तुम्हारे उत्साहको देखेंगी, अतः रसीले निचुल वृक्षोंसे घिरे इस स्थानसे, दिग्गजोंके सूँड़ोंके प्रहारसे वचते हुए तुम उत्तरकी ओर मुख करके आकाशमें उड़ जाओ ।

टिप्पणी—सिद्ध देवताओंकी एक जाति विशेष है—"पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।" दिग्गज-आठ हैं—"ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥" हाथी ग्रीष्मसे सन्तप्त होनेपर मेघको देखकर अपने सूँड़ोंको इधर-उधर पटकते हैं ऐसा गजशास्त्रमें कहा गया हैं—"अवस्थां पंचमीं प्राप्ता दृष्ट्वा कृष्णाम्वुदं गजाः ।

सन्तापशान्तये तप्ताः क्षिपन्ति स्थूलहस्तकान् ॥" मल्लिनाथने निचुल नामक कविको कालिदासका प्रशंसक और दिङ्नागको उसका प्रतिद्वन्द्वी मानकर "इस श्लोकमें श्लेष द्वारा कवि अपने प्रतिद्वन्द्वी दिङ्नागाचार्यके प्रति संकेत करता हुआ अपनी काव्यकलाको संबोधित करके कहता है—यह व्यङ्ग्यार्थ है।" ऐसा कहा है, इससे पूर्ववर्ती टीकाकार दक्षिणावर्तनाथको भी यह अर्थ अभीष्ट है, किन्तु कालिदासका समकालवर्ती कोई दिङ्नाग था, ऐसा कोई भी प्रमाण इतिहासमें उपलब्ध नहीं। 'प्रमाणसमुच्चय'का रचयिता दिङ्नाग बहुत बादमें हुआ है ॥ १४ ॥

> रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
> द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ।
> येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
> बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥१५॥

रत्नेति ॥ रत्नच्छायानां पद्मरागादिमणिप्रभाणां व्यतिकरो मिश्रणमिव प्रेक्ष्यं दर्शनीयमाखण्डलस्येन्द्रस्यैतद्धनुःखण्डम्। एतदिति हस्तेन निर्देशो विवक्षितः। पुरस्तादग्रे वल्मीकाग्राद्वामलूरविवरात्। "वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुंनपुंसकम्" इत्यमरः। प्रभवत्याविर्भवति। येन धनुःखण्डेन ते तव श्यामं वपुः। स्फुरितरुचिनोज्ज्वलकान्तिना बर्हेण पिच्छेन "पिच्छबर्हे नपुंसके" इत्यमरः। गोपवेषस्य विष्णोर्गोपालस्य कृष्णस्य श्यामं वपुरिव। अतितरां कान्तिं शोभामापत्स्यते प्राप्स्यते ॥ १५ ॥

पदार्थ—रत्नछायाव्यतिकर इव=रत्नोंकी कान्तियोंका मिश्रण जैसा। प्रेक्ष्यम्=दर्शनीय। आखण्डलस्य=इन्द्रका। एतत्=यह। धनुःखण्डं=धनुषका टुकड़ा। पुरस्तात्=सामने। वल्मीकाग्रात्=बाम्बीकी चोटीसे। प्रभवति=निकल रहा है। येन=जिससे। श्यामं ते वपुः=साँवला तुम्हारा शरीर। स्फुरितरुचिना=चमकती कान्तिवाले। बर्हेण=मोरपंखसे। गोपवेषस्य=ग्वालेका रूप धारण किये। विष्णोःइव=कृष्णकी तरह। अतितरां कान्तिम्=अत्यन्त शोभाको। आपत्स्यते=प्राप्त होगा।

भावार्थ—विभिन्न रंगोंवाली मणियोंकी किरणें आपसमें जैसे मिल जायें, ऐसा दर्शनीय यह इन्द्रधनुष सामनेकी बाम्बीके ऊपरसे निकल रहा है। इस इन्द्रधनुषसे सजा हुआ तुम्हारा साँवला शरीर इस प्रकार अत्यन्त शोभाको प्राप्त होगा जैसे कि मोरपंख लगा लेनेसे गोपवेषधारी कृष्णका श्यामरूप चमक उठता था।

टिप्पणी—वासुकि नागकी फणाओंमें स्थित मणियोंकी किरणें वल्मीक छिद्रोंसे निकलकर इन्द्रधनुषके रूपमें दीखती हैं, ऐसा पौराणिक आख्यान है। वस्तुतः सूर्यकी विभिन्न वर्णों की रश्मियाँ वायुसे विघट्टित हुई एकत्र हो जाती हैं और आकाशमें मेघ आनेपर धनुषाकार दिखाई देती हैं वही इन्द्रधनुष है—ऐसा प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् बराहमिहिराचार्यका मत है। वल्मीक शब्द पर्वतशिखरका वाचक भी है॥ १५॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यःसीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद्व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥

त्वयीति॥ कृषेर्हलकर्मणः फलं सस्यं त्वयि। अधिकरणविवक्षायां सप्तमी। आयत्तमधीनम्। "अधीनो निघ्न आयत्तः" इत्यमरः। इति हेतोः प्रीत्या स्निग्धैः। अकृत्रिमप्रेमार्द्रैरित्यर्थः। भ्रूविलासानां भ्रूविकाराणामनभिज्ञैः पामरत्वादिति शेषः। जनपदवधूनां पल्लीयोषितां लोचनैः पीयमानः सादरं वीक्ष्यमाणः सन्। मालं मालाख्यं क्षेत्रं शैलप्रायमुन्नतस्थलम्। "मालमुन्नतभूतलम्" इत्युत्पलमालायाम्। सद्यस्तत्कालमेव सीरैर्हलैरुत्कषणेन कर्षणेन सुरभि घ्राणतर्पणं यथा तथारुह्य तत्राभिवृष्येत्यर्थः। "सुरभिर्घ्राणतर्पणः" इत्यमरः। किञ्चित्पश्चाल्लघुगतिस्तत्र निर्वृष्टत्वात्क्षिप्रगमनः सन् "लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्" इत्यमरः। भूयः पुनरप्युत्तरेणैवोत्तरमार्गेणैव व्रज गच्छ। तृतीयाविधाने "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इति तृतीया। यथा कश्चिदबहुवल्लभः पतिः कुत्र

त्क्षेत्रे कलत्रे गूढं विहृत्य, "क्षेत्रं शरीरकेदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः" इति विश्वः, दाक्षिण्यभङ्गभयान्नीचमार्गेण निर्गत्य पुनः सर्वाध्यक्ष इव संचरति तद्वदिति ध्वनिः ॥ १६ ॥

पदार्थ — कृषिफलं=खेतीका लाभ। त्वयि-आयत्तं=तुम्हारे अधीन है। इति=यह जानकर। भ्रूविलासानभिज्ञैः=भौंह मटकाना आदिके ज्ञानसे रहित। प्रीतिस्निग्धैः=प्रेमसे भरी हुई। जनपदवधूलोचनैः=ग्रामीण स्त्रियोंकी आँखोंसे। पीयमानः (सन्)=देखे जाते हुए (तुम)। सद्यःसीरोत्कषणसुरभि=तत्काल हल चलाये जानेसे सोंधी-सोंधी सुगन्धवाले। मालक्षेत्रम्=मालनामक क्षेत्रमें। आरुह्य=चढ़कर। किंचित्पश्चाद्व्रज=कुछ पश्चिमकी ओर जाओ। भूय एव=और फिर। लघुगतिः=शीघ्रगामी होकर। उत्तरेण (व्रज)=उत्तर दिशाको चलो।

भावार्थ — खेती करनेका सारा फल (अन्नका संपूर्ण लाभ) तुम्हींपर निर्भर है, ऐसा जानकर किसी प्रकारकी—भौंह मटकाना आदि विकृत चेष्टाओं-को न जानती हुई ग्रामीण कृषक वधुएँ प्रेमपूर्ण दृष्टिसे तुम्हारी ओर देखेंगी। इसलिये तत्काल हल जोतनेसे सोंधी-सोंधी मिट्टीकी गन्धवाले मालनामक क्षेत्रपर मंडराकर कुछ पश्चिमको मुड़ो, वहाँ बरसनेसे हलके होकर फिर तीव्र गतिसे उत्तरकी ओर ही चलो।

टिप्पणी — मल्लिनाथने माल शब्दका अर्थ पठार किया है किन्तु भरत-मल्लिक आदि कई टीकाकार "मालाख्यो देशः" ऐसा कहते हैं। संभवतः उनको माल जिला, जो छत्तिसगढ़ मध्यप्रदेशमें पड़ता है वह अभीष्ट है। कुछ लोग माल्दाको, जो रतनपुरसे उत्तरकी ओर है माल कहते हैं ॥ १६ ॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

त्वामिति ॥ आम्राश्चूताः कूटेषु शिखरेषु यस्य स आम्रकूटो नाम

सानुमान्पर्वतः। "आम्रश्चूतो रसालोऽसौ" इति, "कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्" इति चामरः। आसारो धारावृष्टिः। "धारासंपात आसारः" इत्यमरः। तेन प्रशमितो वनोपप्लवो दावाग्निर्येन तम्। कृतोपकारमित्यर्थः। अध्वश्रमेण परिगतं व्याप्तं त्वां साधु सम्यङ्मूर्ध्ना वक्ष्यति वोढा। वहेर्लृट्। तथाहि। क्षुद्रः कृपणोऽपि। "क्षुद्रो दरिद्रः कृपणे नृशंसे" इति यादवः। संश्रयाय संश्रयणाय मित्रे सुहृदि। "अथ मित्रं सखा सुहृत्" इत्यमरः। प्राप्ते आगते सति। प्रथमसुकृतापेक्षया पूर्वोपकारपर्यालोचनया विमुखो न भवति। यस्तथा तेन प्रकारेणोच्चैरुन्नतः स आम्रकूटः किं पुनर्विमुखो न भवतीति किमु वक्तव्यमित्यर्थः। एतेन प्रथमावसथे सौख्यलाभात्ते कार्यसिद्धिरस्तीतिसूचितम्। तदुक्तं निमित्तनिदाने—"प्रथमावसथे यस्य सौख्यं तस्याखिलेऽध्वनि। शिवं भवति यात्रायामन्यथा त्वशुभं ध्रुवम्।" इति ॥ १७ ॥

पदार्थ—आम्रकूटः सानुमान्=आम्रकूट पर्वत। आसारप्रशमितवनोपप्लवः=मूसलधार वर्षासे शान्त कर दिया है वनके उपद्रवको जिसने (ऐसे) अध्वश्रमपरिगतं=मार्गके श्रमसे थके हुए। त्वाम्=तुमको। मूर्ध्ना=शिखरसे। साधु वक्ष्यति=अच्छी प्रकार धारण करेगा। क्षुद्रः अपि=नीच भी। संश्रयाय=आश्रयके लिये। मित्रे प्राप्ते=मित्र प्राप्त होनेपर। प्रथमसुकृतापेक्षया=पहिलेके उपकारका विचार करके। विमुखो न भवति=विमुख नहीं होता। यः तथा उच्चैः=जो ऐसा ऊँचा हो। किं पुनः=फिर उसका क्या कहना।

भावार्थ—मूसलधार वर्षासे वनके उपद्रवों (वनाग्नि आदि)-को शान्त करके जब तुम आगे बढ़ोगे तो मार्गश्रमसे थके हुए तुमको आम्रकूट पर्वत अपने शिखरपर धारण करेगा। नीच व्यक्ति भी, आश्रयके लिये अपने मित्रको आया देख उसके किये हुए उपकारोंका विचार करके उससे मुँह नहीं मोड़ता, फिर ऐसे ऊँचे (महान् व्यक्ति) की तो बात ही क्या है।

टिप्पणी—टीकाकारोंने प्रायः अमरकंटकको ही आम्रकूट माना है किन्तु यक्षने जिस क्रमसे मेघके मार्गका निर्देश किया है वह अमरकंटकको आम्रकूट

माननेमें संगत नहीं होता। संभवतः छिन्दवाड़ा जिलेमें स्थित अमरवाड़ा तहसीलके आस-पासकी सतपुड़ा पहाड़की किसी चोटीका नाम आम्रकूट रहा होगा। इसके लिये देखिये आचार्य चन्द्रवली पाण्डेयका "कालिदास"—पृष्ठ ४३ टिप्पणी ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥*

छन्नेति ॥ हे मेघ ! परिणतैः परिपक्वैः फलैर्द्योतन्त इति तथोक्तैः। आषाढे वनचूताः फलन्ति पच्यन्ते च मेघवातेनेत्याशयः। काननाम्रैर्वनचूतैश्छन्नोपान्त आवृतपार्श्वोऽचल आम्रकूटाद्रिः स्निग्धवेणीसवर्णे मसृणकेशबन्धच्छाये। श्यामवर्ण इत्यर्थः। "वेणी तु केशबन्धे जलस्रुतौ" इति यादवः। त्वयि शिखरं शृङ्गमारूढे सति। "यस्य च भावेन भावलक्षणम्" इति सप्तमी। मध्ये श्यामः शेषे मध्यादन्यत्र विस्तारे परितः

---

* टि०—कुछ प्रतियोंमें इस श्लोकसे पूर्व और कुछमें इसके बाद निम्नलिखित श्लोक अधिक लिखा है। मल्लिनाथने इस पर टीका नहीं की है। वस्तुतः "त्वामासार···" श्लोकके और इसके भावार्थमें कोई विशेष अन्तर नहीं, अतः यह प्रक्षिप्त ही जान पड़ता है—

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघ्यमानः ॥
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥

भावार्थ—हे जलद ! मार्गमें चलनेसे थके हुए तुमको यह आम्रकूट पर्वत प्रशंसापूर्वक अपने शिरसे धारण करेगा और तुम भी मूसलधार वर्षासे उसकी दवाग्निको शांत कर देना, क्योंकि सज्जनोंके प्रति किया सद्भावपूर्ण उपकार शीघ्र फल देता है।

पाण्डुर्हरिणः । "हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः" इत्यमरः । भुवःस्तन इव अमरमिथुनानाम् । खेचराणामिति भावः प्रेक्षणीयां दर्शनीयामवस्थां नून यास्यति । मिथुनग्रहणं कामिनामेव स्तनत्वेनोत्प्रेक्षा संभवतीति कृतम् । यथा परिश्रान्तः कश्चित्कामी कामिनीनां कुचकलशे विश्रान्तः सन्स्वपिति तद्वद्भवानपि भुवो नायिकायाः स्तन इति ध्वनिः ॥ १८ ॥

पदार्थ—स्निग्धवेणीसवर्णे = चिकनी बालोंकी चोटीके समान रंगवाले। त्वयि = तुम्हारे। शिखरमारूढे (सति) = शिखरपर आरूढ़ हो जानेपर। परिणतफलद्योतिभिः = पके फलोंसे चमकते हुए। काननाम्रैः = जंगली आमोंके वृक्षोंसे। छन्नोपान्तः = ढका हुआ है समीपवर्ती भाग जिसका (ऐसा)। अचलः = आम्रकूट पर्वत। मध्येश्यामः = बीचमें काले रंगके। शेषविस्तारपाण्डुः = अवशिष्ट विस्तृत भाग जिसका पाण्डुवर्णका है (ऐसे)। भुवः स्तन इव = पृथ्वीके स्तनकी भाँति। अमरमिथुनप्रेक्षणीयां = देवताओंके जोड़ोंसे देखने योग्य। अवस्थाम् = दशाको। नूनम् यास्यति = अवश्य ही प्राप्त होगा।

भावार्थ—स्त्रियोंके केशपाशके समान काले वर्णवाले तुम, जब उसके शिखरपर चढ़ोगे तब चारों ओरसे पके फलोंवाले जंगली आमोंसे घिरनेके कारण चमकीले पीले-पीले वर्णका वह आम्रकूट, (बीचमें काला और चारों ओर पीला सा) पृथ्वीके स्तनकी तरह अवश्य ही अत्यन्त शोभाको प्राप्त होगा। जिसे देखने देवताओंके जोड़े (दम्पति) भी आयेंगे।

टिप्पणी—केवल देवता न कहकर देवता दम्पतिके द्वारा उस स्तनके देखने आना उसकी अत्यन्त रमणीयताका द्योतक है। काव्यमें जहाँ कहीं भी दोनों स्तनोंका वर्णन होता है, फिर पृथ्वीके एक ही स्तनका वर्णन यहाँ क्यों किया ? यह शंका उपयुक्त नहीं, क्योंकि विदग्धा नायिकाएँ एक ही स्तनका प्रदर्शन करती हैं दोनों का करनेमें धृष्टता समझी जाती है—"आवृणोति प्रयत्नेन विदग्धैकस्तनं सदा, विवृणोति तथा चैकं यूनां चित्तापकर्षणे।" ॥१८॥

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥

स्थित्वेति ॥ हे मेघ ! वने चरन्ति ते वनचराः। "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति बहुलग्रहणादलुग्भवति। तेषां वधूभिर्भुक्ताः कुञ्जलतागृहा यत्र तस्मिन्। "निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे" इत्यमरः। तत्र ते नयनविनोदोऽस्तीत्यर्थः। तस्मिन्नाम्रकूटे मुहूर्तमल्पकालम्। न तु चिरं स्वकार्यविरोधादिति भावः। "मुहूर्तमल्पकाले स्याद्घटिकाद्वितयेऽपि च" इति शब्दार्णवे। स्थित्वा विश्रम्य। तोयोत्सर्गेण "त्वामासार—" इत्युक्तवर्षणेन द्रुततरगतिर्लाघवाद्धेतोरतिक्षिप्रगमनः सन्। तस्मादाम्रकूटात्परमनन्तरं तत्परं वर्त्म मार्गं तीर्णोऽतिक्रान्तः। उपलैः पाषाणैर्विषमे विन्ध्यस्याद्रेः पादे प्रत्यन्तपर्वते। "पादाः प्रत्यन्तपर्वताः" इत्यमरः। विशीर्णां समन्ततो विसृमराम्। एतेन कस्याश्चित्कामुक्याः प्रियतमचरणपातोऽपि ध्वन्यते। रेवां नर्मदाम्। "रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका" इत्यमरः। गजस्याङ्गे शरीरे भक्तयो रचनाः। रेखा इति यावत्। "भक्तिर्निषेवणे भागे रचनायाम्" इति शब्दार्णवे। तासां छेदैर्भङ्गिभिर्भर्विरचितां भूतिं शृङ्गारमिव भसितमिव वा। 'भूतिर्मातङ्गशृङ्गारे जातौ भस्मनि संपदि" इति विश्वः। द्रक्ष्यसि। अयमपि महांस्ते नयनकौतुकलाभ इति भावः॥ १९॥

पदार्थ— वनचरवधूभुक्तकुञ्जे = वनचारी जीवोंकी स्त्रियोंद्वारा भोगे गये हैं कुञ्ज जिसमें (ऐसे) तस्मिन् = उसी (आम्रकूट) में। मुहूर्तं = कुछ काल। स्थित्वा = ठहरकर। तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः (सन्)=जलको बरसा देनेसे शीघ्रगतिवाला होकर। तत्परं = उससे आगेके। वर्त्म = मार्गको। तीर्णः = तरे हुए (तुम)। उपलविषमे = पत्थरोंसे ऊँचे-नीचे। विन्ध्यपादे = विन्ध्याचलके निचले भागमें। विशीर्णां = बिखरी हुई। रेवां = नर्मदा नदीको। गजस्य अङ्गे = हाथीके शरीरमें। भक्तिच्छेदैः=रेखाओंके खण्डोंसे। विरचितां= बनाई हुई। भूतिमिव=भस्मकी तरह। द्रक्ष्यसि=देखोगे।

भावार्थ— किरातादि वनचारियोंकी स्त्रियोंने जिसकी झाड़ियोंमें आनन्द

लिया है ऐसे, उस आम्रकूटपर कुछ देर रुककर, जल बरसा देनेके कार हलके होनेसे शीघ्र चलते हुए तुम आगेका मार्ग पारकरके उस नर्मद नदीको देखोगे जो विन्ध्यगिरिकी पत्थरोंसे ऊँची-नीची तलहटीमें बिखर हुई ऐसी लगती है जैसे हाथीके शरीरमें भस्मकी रेखाओंसे मण्डल ब दिये हों।

टिप्पणी—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र इन सात कुलपर्वतोंमें विन्ध्य भी एक है। इसकी पर्वत श्रेणियाँ पूर्वी समुद्र पश्चिमी सागर तक फैली हैं और इस प्रकार यह भारतको उत्तरी औ दक्षिणी भारतके रूपमें दो भागोंमें विभक्त करता है। हिमालय और विन्ध्या चलका मध्यभाग आर्यावर्त कहलाता है। पुराणोंमे प्रसिद्ध है कि अगस्त्य ऋषिने इसकी वृद्धिको रोक दिया था। तबसे लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"न मुनि पुनरायाति न चासौ वर्द्धते गिरिः।"

रेवा नर्मदाका नाम है, जो अमरकण्टकसे निकलकर पश्चिमकी ओ बहती हुई कम्बेकी खाड़ीमें गिरती है। यह भी पुण्यनदियोंमें गिनी जात है। "गंगास्नानेन यत्पुण्यं तद्रेवादर्शनेन वै। यथा गङ्गा तथा रेवा त देवी सरस्वती॥" यह प्रसिद्ध है। इसके किनारे पाया जानेवाला प्रत्येक पत्थ शिवरूप (नर्मदेश्वर) होता है, ऐसा पुराणोंमें वर्णन है॥ १९॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः
अन्तःसारं घन! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय॥२०॥

तस्या इति॥ हे मेघ! वान्तवृष्टिरुद्गीर्णवर्षः सन्। कृतवमनस्य व्यज्यते। तिक्तैः सुगन्धिभिस्तिक्तरसवद्भिश्च। "तिक्तो रसे सुगन्धौ च" इति विश्वः। वनगजमदैर्वासितं सुरभितं भावितं च। "हिमवद्विन्ध्यमलय गजानां प्रभवाः" इति विन्ध्यस्य गजप्रभवत्वादिति भावः जम्बूकुञ्ज प्रतिहतरयं प्रतिबद्धवेगम् सुखपेयमित्यर्थः। अनेन लघुत्वं कफाभावश्च

व्यज्यते। तस्या रेवायास्तोयमादाय गच्छेर्व्रज। हे घन मेघ! अन्तःसारो बलं यस्य तं त्वामनिल आकाशवायुः शरीरस्थश्च गम्यते। तुलयितुं न शक्ष्यति शक्तो न भविष्यति। तथाहि। रिक्तोऽन्तःसारशून्यः सर्वोऽपि लघुर्भवति। प्रकम्प्यो भवतीत्यर्थः। पूर्णता सारवत्ता गौरवायाप्रकम्प्यत्वाय भवतीत्यर्थः। अयमत्र ध्वनिः—आदौ वमनशोधितस्य पुंसः पश्चाच्छ्लेष्म-शोषणाय लघुतिक्तकषायाम्बुपानाल्लब्धबलस्य वातप्रकम्पो न स्यादिति। यथाह वग्भट्टः—"कषायाश्चाहिमास्तस्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिताः। किमु तिक्त-कषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः॥ कृतशुद्धेः क्रमात्पीतपेयादेः पथ्यभोजिनः। वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिव योगिनः॥" इति॥ २०॥

पदार्थ—वान्तवृष्टिः=उँड़ेल दी है वर्षा जिसने (ऐसे तुम), तिक्तैः=तिक्तस्वादवाले या सुगन्धित। वनगजमदैः=जंगली हाथियोंके मदजलसे। वासितं=सुरभित। जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं=जामुनकी झाड़ियोंसे जिसका वेग रोका जाता है, ऐसे। तस्याः तोयम्=उस (नर्मदा)के जलको। आदाय=लेकर। गच्छेः=चलना। घन=हे मेघ! अन्तःसारं त्वां=भीतरसे भरे हुए तुमको। अनिलः=वायु। तुलयितुं=हिलानेमें। न शक्ष्यति=समर्थ नहीं होगा। हि=क्योंकि, रिक्तः सर्वः=सभी रिक्त पदार्थ। लघुः=हलके (होते हैं और) पूर्णता=भरा होना। गौरवाय=गुरुताके लिये (होता है)।

भावार्थ—आम्रकूटके प्रान्तभागमें बरस जानेसे तुम खाली हो जाओगे; अतः कड़वे स्वादवाले (अथवा सुन्दर गन्धसे युक्त) वनगजोंके मदजलसे सुगन्धित और जामुनकी झाड़ियोंसे प्रतिहत वेगवाले उस (रेवा)के जलको लेकर चलना। हे मेघ! जल भर लेनेसे तुम भारी हो जाओगे और वायु तुम्हें इधर-उधर हटा नहीं सकेगा, क्योंकि प्रत्येक रिक्त वस्तु हलकी होती है और भरी हुई भारी।

टिप्पणी—"रिक्तः सर्वो·····" यह पाद एक सामान्य उक्ति है, जिसका तात्पर्य है कि कोई भी रिक्त=खाली—तुच्छ या निर्धन व्यक्ति, लघु=हलका—सबके अनादरका पात्र होता है और वही यदि भर जाता है अर्थात् उसमें

गम्भीरता आ जाती है तो वह भारी या सबके आदरका पात्र हो जाता है, कि उसका कोई उल्लंघन या तिरस्कार नहीं कर सकता ॥ २० ॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केशरैरर्द्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ।
दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२१॥

नीपमिति ॥ सारङ्गा मतङ्गजाः कुरङ्गा भृङ्गा वा । "सारङ्गश्चात भृङ्गे कुरङ्गे च मतङ्गजे" इतिविश्वः । अर्धरूढैरेकदेशोद्गतैः केसरैःकिञ्ल्कैर्हरितं पालाशवर्णं कपिशं कृष्णपीतं च । "पालाशो हरितो हरित्" इति "स्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते" इति चामरः । श्यामवर्णमि यावत् । "वर्णो वर्णेन" इति समासः । नीपं स्थलकदम्बकुसुमम् । " स्थलकदम्बके । नीपः स्यात्पुलके" इति शब्दार्णवे । दृष्ट्वा संप्रेक्ष्य । वि त्वेति यावत् । तथा कच्छेष्वनूपेष्वनुकच्छम् । "अव्ययं विभक्ति—" इत्यादि विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः । "जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः" इत्यमर आविर्भूताः प्रथमाः प्रथमोत्पन्ना मुकुला यासां ताः कन्दलीर्भू कदलीः । "द्रोणपर्णी स्निग्धकन्दा कन्दली भूकदल्यपि" इति शब्दार्णवे । जग्ध भक्षयित्वा । "अदो जग्धिः" इति जग्ध्यादेशः । अरण्येष्वधिकसुरभि तिघ्राणतर्पणम् । "दग्धारण्येषु" इति पाठे "दग्धम् इत्यधिकविशेषण अर्थवशात्कन्दलीश्च दृष्ट्वैवेत्यन्वयो द्रष्टव्यः । उर्व्या भूमेर्गन्धमाघ्राय ज लमुचो मेघस्य ते तव मार्गं सूचयिष्यन्त्यनुमापयिष्यन्ति । यत्र यत्र वृ कार्यं कन्दलीमुकुलनीपकुसुमादिकं दृश्यते तत्र तत्र त्वया वृष्टमित्यनुमी इति भावः ॥ २१ ॥

पदार्थ—अर्द्धरूढैः=आधे उगेहुए । केशरैः=किंजल्कोंसे । हरितकपिशं और भूरे रंगके । नीपं=कदम्बको । दृष्ट्वा=देखकर । अनुकच्छम्=किनारे-किना आविर्भूतप्रथममुकुलाः=प्रकट हुई हैं पहिली कोंपलें जिनमें ऐसी । कन्द

कन्दलियोंको। च=भी (देखकर)। दग्धारण्येषु=जले हुए बनोंमें। उर्व्याः= पृथ्वीकी। अधिकसुरभि=बहुत मनोहर। गन्धमाघ्राय=गन्धको सूंघकर सारङ्गाः=चातक,। जललवमुचः=पानीकी बूंदें बरसानेवाले। ते=तुम्हारे। मार्गं मार्गको। सूचयिष्यन्ति=बतायेंगे।

भावार्थ—आधे खिलेहुए केसरोंसे कुछ हरे एवं कुछ धूसर वर्णके कदम्बको और नदियों या तालावों के किनारे-किनारे पहिले-पहिले जिनमें कलियाँ दीख रही हैं ऐसी कन्दलियोंको, देखकर तथा वनाग्निसे जलाये हुए जंगलोंमें पानी पड़नेसे उत्पन्न उत्कट गंधको सूंघकर पपीहे जलकी बूंदोंको बरसानेवाले तुमको मार्गकी सूचना देंगे।

टिप्पणी—इस पद्य में "सारंग" पदके जितने अर्थ होते हैं टीकाकारोंने प्रायः सबको लेकर पर्याप्त तोड़मरोड़ की है। मल्लिनाथने 'मतङ्गजा कुरङ्गा वा' लिया है, किन्तु हमें भरतमल्लिक का "चातक" अर्थ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। इसके लिये कविका "जललवमुचः" पद विचारणीय है। स्वातिकी बूंदके लिये मेघकी बाट जोहनेवाला चातक नियमपूर्वक वर्षाऋतु में ही खिलनेवाले कदम्ब और कन्दलीको देखकर तथा ग्रीष्ममें वनाग्निसे जले हुए वनोंमें पानीकी बूंदें पड़नेसे उठती हुई उत्कट गन्धको सूंघकर मेघको पुकारेगा। यही मेघको उसके गन्तव्यमार्गकी सूचना होगी. अर्थात् ज्यों-ज्यों सारसोंकी ध्वनि सुनाई पड़ेगी त्यों-त्यों उनकी प्यास बुझाने मेघ आगे बढ़ता जायगा। 'जग्ध्वारण्येषु' के स्थानमें 'दग्धारण्येषु' पाठ उपयुक्त है। वस्तुतः अग्निसे जलाई हुई पृथ्वीपर जब पानीकी बूंदें पड़ती हैं तब मनोहर सोंधी-सोंधी उत्कट गन्ध आती है॥२१॥

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्ष्यमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि॥२२॥

प्रक्षिप्तमपि व्याख्यायते—

अम्भ इति ॥ अम्भोबिन्दूनां वर्षोदबिन्दूनां ग्रहणे । "सर्वंसहापति तमम्बु न चातकस्य हितम्" इति शास्त्राद् भूस्पृष्टोदकस्य तेषां रोगहेतुत्वाद् न्तराल एव स्वीकारे चतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः कौतुकात्पश्यन्तः श्रेणीभूत बद्धपंक्तीः । अभूततद्भावे च्विः । बलाका बकपंक्तीः । परिगणनयैका तिस्र इति संख्यानेन निर्दिशन्तो हस्तेन दर्शयन्तः सिद्धाः । स्तनितसमये त्वद्गर्जितकाले सोत्कम्पान्युत्कम्पपूर्वकाणि प्रियसहचरीणां संभ्रमेण लिङ्गितान्यासाद्य । स्वयं ग्रहणाश्लेषसुखमनुभूयेत्यर्थः । त्वां मानयिष्यन्ति तन्निमित्तत्वात्सुखलाभस्येति भावः ॥ २२ ॥

पदार्थ—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् = जलकी बूंदोंको पकड़नेमें चतुर। चातकान् = चातकोंको । वीक्षमाणाः = देखते हुए । श्रेणीभूताः = पंक्तिबद्ध। बलाकाः = बगुलोंको । परिगणनया निर्दिशन्तः = अंगुलीसे गिनकर दिखाते हुए । सिद्धाः = सिद्ध लोग । स्तनितसमये = गर्जनके समयमें । सोत्कम्पानि = कंप-कंपीके साथ । प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि = अपनी डरीहुई प्रियाओंके आलिङ्गनोंको । आसाद्य = पाकर । त्वां मानयिष्यन्ति=तुम्हारी प्रशंसा करेंगे।

भावार्थ—बरसती जलकी बूंदोंको मुखसे पकड़ लेनेमें कुशल चातकोंको देखते हुए और पंक्ति बनाकर चलती हुई बलाकाओंको अंगुलीसे गिनते हुए सिद्ध लोग उस समय तुम्हें धन्यवाद देंगे, जब कि तुम्हारी गर्जनासे डरी हुई उनकी प्रियाएँ सहसा उनको आलिङ्गन करने लगेंगी ।

टिप्पणी—कई टीकाकारोंने प्रक्षिप्त मानकर इसपर टीका नहीं की है और मल्लिनाथने भी "प्रक्षिप्तमपि व्याख्यायते" लिखा है ॥ २२ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२३॥

उत्पश्यामीति । हे सखे मेघ ! मत्प्रियार्थं यथा तथा द्रुतं क्षिप्रं

"लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्" इत्यमरः। यियासोर्यातुमिच्छोरपि। यातेः सन्नन्तादुप्रत्ययः। ते तव ककुभैः कुटजकुसुमैः सुरभौ सुगन्धिनि। "ककुभः कुटजेऽर्जुने" इति शब्दार्णवे। पर्वते पर्वते प्रतिपर्वतम्। वीप्सायां द्विरुक्तिः। कालक्षेपं कालविलम्बम्। "क्षेपो विलम्बे निन्दायाम्" इति विश्वः। उत्पश्याम्युत्प्रेक्षे। विलम्बहेतुं दर्शयन्नाशु गमनं प्रार्थयते—शुक्लेति। सजलानि सानन्दवाष्पाणि नयनानि येषां तैः शुक्लापाङ्गैर्मयूरैः। "मयूरो वर्हिणो वर्ही शुक्लापाङ्गः शिखाबलः" इति यादवः। केकाः स्ववाणीः। "केका वाणी मयूरस्य" इत्यमरः। स्वागतीकृत्य स्वागतवचनीकृत्य प्रत्युद्यातः प्रत्युद्गतः मयूरवाणीकृतातिथ्य इत्यर्थः। भवान् कथमपिय थाकथञ्चिदा शुगन्तुं व्यवस्येदुद्युञ्जीत। प्रार्थने लिङ्। "शेषे प्रथमः" इति प्रथमपुरुषः। शेषश्चायं भवच्छब्दो युष्मदस्मच्छब्दव्यतिरेकात्। "स्वागतीकृत्य केकाः" इत्यत्र केकास्वारोप्यमाणस्य स्वागतवचनस्य प्रकृतप्रत्युद्गमनोपयोगात्परिणामालङ्कारः। तदुक्तमलङ्कारसर्वस्वे—"आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः" इति ॥ २३ ॥

पदार्थ—सखे ! =मित्र ! मत्प्रियार्थं=मेरे कल्याणके लिये। द्रुतं=शीघ्र। यियासोः=जानेकी इच्छावाले। अपि=भी। ते=तुम्हारा। ककुभसुरभौ=कुटजकी गन्धवाले। पर्वते-पर्वते=प्रति पर्वतपर। कालक्षेपं=समयके विलम्बको। उत्पश्यामि=सोचता हूँ। सजलनयनैः=आँसूभरे नेत्रोंवाले। शुक्लापाङ्गैः=मयूरोंसे। केकाः=ध्वनिको। स्वागतीकृत्य=स्वागत मानकर। प्रत्युद्यातः=आगे बढ़ता हुआ। कथमपि=किसी प्रकार। आशु गन्तुं=शीघ्र=जानेके लिए। व्यवस्येत्=प्रयत्न करोगे।

भावार्थ—हे मित्र ! यद्यपि मेरे कार्यके लिए तुम यथाशीघ्र अलका पहुँचना चाहोगे किन्तु फिर भी पुष्पोंकी गन्धसे पूर्ण पर्वत-शिखरोंमें विश्राम करते-करते तुमको विलम्ब हो ही जायगा, ऐसा मैं सोचता हूँ। आँसू भरे मोर अपनी मधुर ध्वनिसे जो तुम्हारा स्वागत करेंगे उसे स्वीकार करते हुए शीघ्र आगे बढ़नेका प्रयत्न करना।

टिप्पणी—'मत्प्रियार्थं'का अर्थ "मेरी प्रियाके पास तक" यह भी हो सकता है। मेघको देखकर मोर आनन्दसे आँसू बरसाते और नाचने लगते

हैं, ऐसा प्रसिद्ध है। शुक्लापाङ्ग मोरका पर्याय है क्योंकि उसके नेत्र-को सफेद होते हैं। केका मोरकी वाणीका नाम है ॥२३॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२४॥

पाण्डिवति। हे मेघ! त्वय्यासन्ने संनिकृष्टे सति दशार्णा नाम जनपदाः सूचिभिन्नैः सूचिषु मुकुलाग्रेषु भिन्नैर्विकसितैः। "केतकीमुकुलाग्रे सूचिः स्यात्" इति शब्दार्णवे। केतकैः केतकीकुसुमैः पाण्डुच्छाया हरित वर्णा उपवनानां वृतयः कण्टकशाखावरणा येषु ते तथोक्ताः। "प्राकारे वरणः सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः" इत्यमरः। तथा गृहबलिभुजां काकादि ग्रामपक्षिणां नीडारम्भैः कुलायनिर्माणैः। "कुलायो नीडमस्त्रियाम्" इत्यमरः चित्याया इमानि चैत्यानि रथ्यावृक्षाः। "चैत्यमायतने बुद्धवन्द्ये चोद्देशपादपे" इति विश्वः। आकुलानि संकीर्णानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु ते तथोक्ता तथा परिणतैः पक्वैः फलैः श्यामानि यानि जम्बूवनानि तैरन्ता रम्याः "मृतावववसिते रम्ये समाप्तावन्त इष्यते" इति शब्दार्णवे। तथा कतिपयेषु दिनेषु स्थायिनो हंसा येषु ते तथोक्ता एवंविधाः संपत्स्यन्ते भविष्यन्ति "पोटायुवतिस्तोककतिपय—" इत्यादिना कतिपयशब्दस्योत्तरपदत्वेऽपि तच्छब्दस्योत्तरत्वमस्त्यस्य शास्त्रस्य प्रायिकत्वात् ॥ २४ ॥

पदार्थ—त्वयि आसन्ने=तुम्हारे समीप आजानेपर। दशार्णाः = दशार्ण देश। सूचिभिन्नैः = कलियोंके मुखभागमें खिले हुए। केतकैः = केतकी पुष्पोंसे पाण्डुच्छायोपवनवृतयः = पीली-पीली हो गयी है उद्यानोंकी परिधि (हाता या घेरा) जिनकी ऐसे। (तथा) गृहबलिभुजां=कौए आदिके। नीडारम्भैः = घोंसले बनानेसे, आकुलग्रामचैत्याः = भर गये हैं गाँवोंके चौराहों परके वृक्ष जिसमें (ऐसे, तथा), परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः = पके हुए जामुनोंसे काले हो गये हैं वनोंके प्रान्तभाग जिनमें ऐसे। (तथा) कतिपयो

स्थायिहंसाः = कुछ ही दिन रहनेवाले हैं हंस जिनमें, ऐसे । सम्पत्स्यन्ते = हो जायँगे ।

भावार्थ—तुम जब समीप पहुँचोगे तो दशार्ण देशमें केतकी वृक्षोंसे निर्मित उद्यानोंके घेरे, कलियोंके कुछ-कुछ खिल जानेसे पीले-पीले दिखाई देने लगेंगे। कौवे आदि पक्षियोंके घोंसलोंसे ग्रामचैत्य भरने लगेंगे। वनोंके वे भाग जिनमें जामुनके पेड़ हैं, फलोंके पक जानेसे काले दीखेंगे और हंस वहाँपर फिर कुछ ही दिन ठहरेंगे। (क्योंकि हंसोंको वर्षाकालके आनेका विश्वास हो जानेसे वे मानस सरोवरको जानेकी सोचेंगे।)

टिप्पणी—"ग्रामचैत्य" गाँवके मध्यमें स्थित उन बड़े-बड़े पीपल आदिके वृक्षोंको कहते हैं, जिनके नीचे चबूतरासा बना होता है और अवकाशके समय गाँवके लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं। दशार्ण—"दश ऋणानि जलदुर्गाणि यस्मिन्" या "दशार्णानां निवासा जनपदाः" यह प्रदेश सम्भवतः मध्यप्रदेशमें छत्तीसगढ़का वह भाग है जिसमें दशार्ण नामक नदी बहती है जो विन्ध्याचलसे निकली है ॥ २४ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा ।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा-
त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥२५॥

तेषामिति ॥ दिक्षु प्रथितं प्रसिद्धं विदिशेति लक्षणं नामधेयं यस्यास्ताम् । "लक्षणं नाम्नि चिह्ने च" इति विश्वः । तेषां दशार्णानां सम्बन्धिनीम । धीयन्तेऽस्यामिति धानी । "करणाधिकरणयोश्च" इति ल्युट् । राज्ञां धानी राजधानी । "कृद्योगलक्षणा षष्ठी समस्यते" इति वक्तव्यात्समासः । तां प्रधाननगरीम् । "प्रधाननगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते" इति शब्दार्णवे । गत्वा प्राप्य सद्यः कामुकत्वस्य विलासितायाः । "विलासी कामुकः कामी स्त्रीपरो रतिलम्पटः" इति शब्दार्णवे । अविकलं समग्रं फलं प्रयोजनं लब्धा लप्स्यते । त्वयेति शेषः । कर्मणि लुट् । कुतः । यस्मात्कारणात्स्वादु मधुरम् । चला ऊर्मयो यस्य तच्चलोर्मि तरङ्गितं वेत्रवत्या

नाम नद्याः पयः। सभ्रूभङ्गं भ्रुकुटियुक्तम्। दशनपीडयेति भावः। मुख-मिवाधरमिवेत्यर्थः। तीरोपान्ते तटप्रान्ते यत्स्तनितं गर्जितं तेन सुभगं यथा तथा। स्तनितशब्देन मणितमपि व्यपदिश्यते। "ऊर्ध्वमुच्चलितकण्ठनासिकं हुङ्कृतं स्तनितमल्पघोषवत्" इति लक्षणात्। पास्यसि। पिबतेर्लृट्। "कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते" इति भावः॥ २५॥

पदार्थ—दिक्षु = दिशाओंमें। प्रथितविदिशालक्षणां = विदिशानामसे जो विख्यात है, ऐसी। तेषां राजधानीं = उन दशार्ण देशोंकी राजधानीमें। गत्वा = जाकर। सद्यः = तत्काल। कामुकत्वस्य = कामुकताका। अविकलं फलं लब्धा = सारा फल प्राप्त करोगे। यस्मात् = क्योंकि। वेत्रवत्याः = बेतवानदीके। स्वादु चलोर्मि पयः = मीठे और चंचल तरङ्गोंवाले जलको। तीरोपान्तस्तनितसुभगं = किनारेके समीप गर्जनेसे भाग्यशाली होकर जैसे। सभ्रूभङ्गं = त्यौरी चढ़े हुए। मुखमिव = (नायिकाके) मुखकी तरह। पास्यसि = पान करोगे।

भावार्थ—दशार्णोंकी राजधानी 'विदिशा' दिशाओंमें प्रसिद्ध है, वहाँ जाकर तुम्हें शीघ्र ही कामुकताका फल मिल जायगा। क्योंकि जैसे कोई कामी (दन्तक्षत पीड़ासे) भौंहें चढ़ाती हुई नायिकाके अधरको चूम लेता है वैसे ही किनारेपर गरजनेसे सुन्दर तुम, वेत्रवतीके मीठे और चंचल तरङ्गों-वाले जलका पान करोगे।

टिप्पणी—विदिशा-प्राचीन कालमें प्रसिद्ध नगरी थी, जो इस प्रदेशकी राजधानी भी थी। आजकल मालवामें स्थित भेलसा नामक स्थानको ही ऐति-हासिकोंने प्राचीन विदिशा माना है, जो भोपालसे उत्तर पूर्व २६ मीलपर स्थित है। वेत्रवती वर्तमान बेतवा नदी है। नायिकाके अधर-पानको ही कामुकताका संपूर्णफल कविने माना है। रतिरहस्यमें भी कहा है—"कामिनाम-धरास्वादः सुरतादतिरिच्यते"॥ २५॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः

यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥२६॥

नीचैरति ॥ हे मेघ ! तत्र विदिशासमीपे विश्रामो विश्रमः खेदापनयः भावार्थे घञ्प्रत्ययः। तस्य हेतोः विश्रामार्थमित्यर्थः। "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इति षष्ठी। विश्रामेत्यत्र "नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः" इति पाणिनीये वृद्धिविधानाद्रूपसिद्धिः। प्रौढपुष्पैः प्रवुद्धकुसुमैः कदम्बैर्नीपवृक्षैस्त्वत्सम्पर्कात्तव सङ्गात्। पुलका अस्य जाताः पुलकितमिव सञ्जातपुलकमिव स्थितम्। तारकादित्वादितच्प्रत्ययः नीचैरित्याख्या यस्य तं नीचैराख्यं गिरिमधिवसेः। गिरौ वसेरित्यर्थः। "उपान्वध्याङ्वसः" इति कर्मत्वम्। यो नीचैर्गिरिः। पण्याः क्रेयाः स्त्रियः पण्यस्त्रियो वेश्याः। "वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्री रूपजीवनी" इति शब्दार्णवे। तासां रतिषु यः परिमलो गन्धविशेषः। "विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे" इत्यमरः। तमुद्गिरन्त्याविष्कुर्वन्तीति तथोक्तानि तैः। शिलावेश्मभिः कन्दरैर्नागराणां पौराणामुद्दामान्युत्कटानि यौवनानि प्रथयति प्रकटयति। उत्कटयौवनाः क्वचिदनुरक्ता वाराङ्गना विश्रम्भविहाराकांक्षिण्यो मात्रादिभयान्निशीथसमये कञ्चन विविक्तं देशमाश्रित्य रमन्ते। तच्चात्र बहुलमस्तीति प्रसिद्धः। अत्रोद्गारशब्दो गौणार्थत्वान्न जुगुप्सावहः। प्रत्युत काव्यस्यातिशोभाकर एव। तदुक्तं दण्डिना—"निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम्। अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते।" इति ॥ २६ ॥

पदार्थ - तत्र = वहाँ। विश्रामहेतोः = विश्राम करनेके लिये। प्रौढपुष्पैः= खिलेहुए पुष्पोंवाले। कदम्बैः = कदम्ब वृक्षोंसे। त्वसंपर्कात्पुलकितमिव = तुम्हारे स्पर्शसे रोमांचित-से प्रतीत होनेवाले। नीचैराख्यं गिरिं= विन्ध्यपर्वतमें। अधिवसेः = ठहर जाना। यः = जो पर्वत। पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः= वेश्याओं द्वारा सुरतकालमें प्रयुक्त सुगन्धों को उगलता हुए। शिलावेश्मभिः = पत्थरोंकी गुफाओंसे। नागराणां = वहाँके नागरिकोंके।

उद्दामानि = उत्कट। यौवनानि = यौवनोंके विलासोंको। प्रथयति = विख्यात कर रहा है।

भावार्थ—जलदान करनेके बाद वहाँ विश्रामके लिये उस निचले पर्वत पर ठहर जाना जो पूरे खिले हुए कदम्बपुष्पोंसे ऐसा लगेगा, जैसे तुम्हारे स्पर्शसे रोमांचित हो गया हो और वेश्याओंके साथ रतिक्रीडामें प्रयुक्त अङ्गरागादिकी महकती सुगन्धसे जिसकी गुफाएँ वहाँके नागरिकोंके प्रचण्ड-यौवनको प्रकट कर रही होंगी।

टिप्पणी—"नीचैराख्यं गिरिम्" इस पदका स्पष्ट अर्थं किसी टीकाकारने नहीं किया है। केवल "नीचैराख्या यस्य तं" अथवा "नीचैर्नामानं" कहकर छुट्टी लेली है। हमारे विचारसे यह नीचैराख्य गिरि विन्ध्याचल ही है क्योंकि पुराणोंमें कथा आती है—एकबार मेरुपर्वतकी ईर्ष्यासे विन्ध्याचल इतना ऊंचा बढ़ गया था कि सूर्यका मार्ग अवरुद्ध हो गया। तब देवताओंने अगस्त्यसे प्रार्थना की और अगस्त्य दक्षिण-यात्राके बहाने उसके पास गये। ऋषिको देखकर विन्ध्य झुक गया। उसने प्रार्थना की कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? तब मुनिने कहा—

नीचैर्भव तथा वत्स यावदागम्यते मया।
अशक्तोऽहं गरुडशैलारोहणे तव पुत्रक॥

अर्थात् मेरे लौटने तक तुम नीचे ही झुके रहो। अगस्त्य दक्षिण दिशाको चले गये और फिर न लौटे। तबसे वह नीचे ही रह गया। उसके शिखर बढ़े नहीं। अतः स्पष्ट है कि नीचैराख्य गिरि वही है। विन्ध्याचल न कहकर कविका नीचैराख्य कहना भी साभिप्राय है। वेत्रवतीका जल पीकर भारी हुआ मेघ सहसा ऊँचे शिखरपर चढ़ नहीं सकेगा, अतः निचली पर्वत श्रेणियोंपर आसानीसे ठहर सकेगा। दूरसे विन्ध्यपादे विशीर्णां रेवाको वह देख ही चुका है (श्लोक १७) अब वहाँ (विन्ध्यगिरि पर) पहुँच जायगा॥ २६॥

विश्रान्तः सन् व्रज नवनदीतीरजातानि सिञ्चन्
उद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि॥

गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२७॥

विश्रान्त इति ॥ विश्रान्तः संस्तत्र नीचैर्गिरौ विनीताध्वश्रमः सन् । अथ विश्रान्तेरनन्तरम् । वनेऽरण्ये या नद्यस्तासां तीरेषु जातानि स्वयं रूढानि । अकृत्रिमाणीत्यर्थः । "नदनदी—" इति पाठे "पुमान्स्त्रिया" इत्येकशेषो दुर्वारः । तेषामुद्यानानामारामाणां सम्बन्धीनि यूथिकाजालकानि मागधीकुसुमकुलानि । "अथ मागधी । गणिका यूथिका" इत्यमरः । "कोरकजालककलिककुड्मलमुकुलानि तुल्यानि" इति हलायुधः । नवजलकणैः सिञ्चन्नार्द्रीकुर्वन् । सिञ्चतेरार्द्रीकरणार्थत्वाद् द्रवद्रव्यस्य करणत्वम् । यत्र तु क्षरणमर्थस्तत्र तु कर्मत्वम् । अथ "रेतः सिक्त्वा कुमारीषु ।" "सुखैर्निषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि" इत्येवमादि । एवं किरतीत्यादीनामपि "रजः किरति मारुतः" "अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः" इत्यादिष्वर्थभेदाश्रयणेन रजोलाजादीनां कर्मत्वकरणत्वे गमयितव्ये । तथा गण्डयोः कपोलयोःस्वेदस्यापनयनेन प्रमार्जनेन या रुजा पीड़ा भिदादित्वादङ्प्रत्ययः । तथा क्लान्तानि म्लानानि कर्णोत्पलानि येषां तथोक्तानाम् । पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः पुष्पावचायिकाः स्त्रियः । कर्मण्यण् । "टिड्ढाणञ्" इत्यादिना ङीप् । तासां मुखानि । छायाया अनातपस्य दानात् । कान्तिदानं च ध्वन्यते । "छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः" इत्यमरः । कामुकदर्शनात्कामिनीनां मुखविकाशो भवतीति भावः । क्षणपरिचितः क्षणं संसृष्टः सन् । न तु चिरम् । गच्छ ॥२७॥

पदार्थ—विश्रान्तः सन् = विश्राम करलेनेपर । उद्यानानां = बागोंके । नवनदीतीरजातानि = कृत्रिम नदियोंके (नहरों या कुल्याओंके) किनारे उत्पन्न हुई । यूथिकाजालकानि = जूहीकी कलियोंको । नवजलकणैः = तत्काल बरसाई हुई जलबूंदोंसे । सिंचन् = सींचता हुआ । गण्ड······त्पलानां = गालों का पसीना पोंछते-पोंछते मुरझा गये हैं कानोंसे लटकते हुए कमल जिनके, ऐसे । पुष्पलावीमुखानां = फूल चुननेवाली रमणियोंके मुखोंको । छायादानात् =

छाया देनेसे। क्षणपरिचितः (सन्) = थोड़ी देर आनन्द देनेसे मित्र जैसे होकर। व्रज = चलो।

भावार्थ—हे मेघ! उक्त पर्वतपर विश्राम लेकर उद्यानोंको सींचनेके लिये बनी कृत्रिम नदियों (नहरों या कुल्याओं) के किनारे उगी हुई जूहीकी कलियोंको हलकी बूंदें बरसाकर सींचते हुए तुम, बार-बार गालोंपर का पसीना पोंछनेमें हाथोंकी उष्णतासे जिनके कर्णोत्पल मुरझा गये हैं ऐसी, फूल तोड़ती युवतियोंके मुखोंपर छाया करते हुए क्षणभर उनसे परिचय प्राप्त करके आगे बढ़ना।

टिप्पणी—वननदी, नगनदी और नवनदी ये तीन पाठ टीकाकारोंने माने हैं। मल्लिनाथने 'वननदी०' मानकर 'जंगलकी नदियोंके किनारे' और वल्लभ आदिने 'नगनदी०' मानकर 'पहाड़ी नदियाँ' ऐसा अर्थ किया है। किन्तु हमारे विचारसे भरतमल्लिक आदिका 'नवनदी०' पाठ अनुकूल है। संभवतः 'नवनदी' से कविका अभिप्राय उन कुल्याओंसे है जो उद्यानोंको सींचनेके लिये बनाई गई हैं, और नव शब्द कृत्रिम अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। 'कुल्याल्पा कृत्रिम सरित्' इस कोशवाक्यसे भी यही प्रतीत होता है। उनके किनारे शोभाके लिये जूहीकी लताओंका होना और पुष्पलावियोंका वहाँ जाना सम्भव है। वननदी या नगनदियोंके किनारे इतनी जूहीकी लताएँ नहीं ठहर सकतीं और न वहाँ कोमलांगी पुष्पलावियोंका जाना ही सम्भव है॥ २७॥

> वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
> सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
> विद्युद्दामस्फुरणचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
> लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥२८॥

वक्र इति॥ उत्तराशामुदीचीं दिशं प्रति प्रस्थितस्य भवतः पन्था उज्जयिनीमार्गो वक्रो यदपि। दूरो यद्यपीत्यर्थः। विन्ध्यादुत्तरवाहिन्या निर्विन्ध्यायाः प्राग्भागे कियत्यपि दूरे स्थितोज्जयिनी उत्तरपथस्तु निर्विन्ध्यायाः पश्चिम इति वक्रत्वम्। तथाप्युज्जयिन्या विशालानगरस्य। "विशालो-ज्जयिनी समा" इत्युत्पलः। सौधानामुत्सङ्गेषूपरिभागेषु प्रणयः परिचयः।

"प्रणयः स्यात्परिचये याच्ञायां सौहृदेऽपि च" इति यादवः। तस्य विमुखः पराङ्मुखो मास्म भूः न भवेत्यर्थः। "स्मोत्तरे लङ् च" इति चकारादाशीरर्थे लुङ् "न माङ्योगे" इत्यडागमप्रतिषेधः। तत्रोज्जयिन्यां विद्युद्दाम्नां विद्युल्लतानां स्फुरितेभ्यः स्फुरणेभ्यश्चकितैर्लोलापाङ्गैश्चञ्चलकटाक्षैः पौराङ्गनानां लोचनैन रमसे यदि तर्हि त्वं वञ्चितः प्रतारितोऽसि। जन्मवैफल्यं भवेदित्यर्थः ॥२८॥

पदार्थ—यदपि=यद्यपि। उत्तराशां प्रस्थितस्य=उत्तर दिशाको जाते हुए। भवतः=आपका। पन्थाः=मार्ग। वक्रः=टेढ़ा पड़ेगा। (तथापि) उज्जयिन्याः=उज्जयिनीके। सौधोत्सङ्गप्रणयिविमुखः=महलोंकी अट्टालिकाओंके अनुरागसे विमुख। मा स्म भूः=न होना, (क्योंकि) तत्र=उस उज्जयिनीमें। विद्युद्दाम०=विद्युद्रेखाकी चमकसे चकाचौंध हुए। पौराङ्गनानां=नागरिक स्त्रियोंके। लोलापाङ्गैः=चंचल कटाक्षोंवाले। लोचनैः= नयनोंसे। यदि न रमसे=यदि न खेले तो। वञ्चितोऽसि=ठगे गये।

भावार्थ—यद्यपि उत्तरदिशाकी ओर जाते हुए तुमको यह मार्ग कुछ टेढ़ा पड़ेगा फिर भी तुम उज्जयिनीके महलोंकी अटारियोंके अनुरागसे विमुख न होना अर्थात् उनपर अवश्य टिकना। क्योंकि रेखा जैसी बिजलीके चमकनेसे चकाचौंध हुई तथा चंचल कनखियोंवाली नागरिक स्त्रियोंकी आँखोंसे तुमने यदि खेल न किया तो समझो ठगे गये (जीवनकी सफलता न पा सके)।

टिप्पणी—उज्जयिनी कालिदासकी अत्यन्त प्रिय नगरी है और अपनी रचनाओंमें किसी न किसी प्रकार इसका वर्णन उन्हें अभीष्ट है। उज्जयिनीका ही नाम अवन्ती भी है। धर्मशास्त्रोंमें सप्त पुरियोंमें इसकी गिनती है। प्रसिद्ध महाकालका मन्दिर इसीमें है। इतिहासके अन्वेषकोंके लिये यह विचारणीय है कि कालिदासने उज्जयिनीको एक महानगरी और विदिशाको 'विदिशालक्षणां राजधानीं' कहा है। यह नगरी मालवा प्रान्तस्थ वर्तमान उज्जैन ही है ॥२८॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।

निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥२९॥

सम्प्रत्युज्जयिनीं गच्छतस्तस्य मध्येमार्गं निर्विन्ध्यासम्बन्धमाह—वीचीति॥ हे सखे, पथ्युज्जयिनीपथे वीचिक्षोभेण तरङ्गचलनेन स्तनितानां मुखराणाम् । कर्तरि क्तः । विहगानां हंसानां श्रेणिः पङ्क्तिरेव काञ्चीगुणो यस्यास्तस्याः स्खलितेनोपस्खलनेन मदस्खलितेन च सुभग यथा तथा संसपन्त्याः प्रवहन्त्याः गच्छन्त्याश्च तथा दर्शितः प्रकटित आवर्तोऽम्भसां भ्रम एव नाभिर्यया । "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" इत्यमरः । निष्क्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्या नाम नदी "निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या" इति समासः । "द्विगुप्राप्तापन्नालम्—" इत्यादिना परवल्लिङ्गताप्रतिषेधः । तस्या नद्याः सन्निपत्य सङ्गत्य । रसो जलमभ्यन्तरे यस्य सः । अन्यत्र रसेन शृङ्गारेणाभ्यन्तरोऽन्तरङ्गो भव । सर्वथा तस्या रसमनुभवेत्यर्थः । "शृङ्गारादौ जले वीर्ये सुवर्णे विषशुक्रयोः । तिक्तादावमृते चैव निर्यासे पारदे ध्वनौ । आस्वादे च रसं प्राहुः" इति शब्दार्णवे । ननु तत्प्रार्थनामन्तरेण कथं तत्रानुभवो युज्यत इत्यत आह—स्त्रीणामिति । स्त्रीणां प्रियेषु विषये विभ्रमो विलास एवाद्यं प्रणयवचनं प्रार्थनावाक्यं हि स्त्रीणामेष स्वभावो यद्विलासैरेव रागप्रकाशनम् । न तु कण्ठत इति भावः । विभ्रमश्चात्र नाभिसन्दर्शनादिरुक्त एव ॥ २९ ॥

पदार्थ—पथि = मार्गमें । वीचिक्षोभ० = तरङ्गोंकी हलचलसे कूजते हुए पक्षियोंकी पंक्ति ही जिसकी करधनी है, ऐसी । स्खलितसुभगं = इधर-उधर टकराती हुई सुन्दर चालसे । संसर्पन्त्याः = चलती हुई । दर्शितावर्तनाभेः = दिखायी है आवर्त रूप नाभि जिसने, ऐसी । निर्विन्ध्यायाः = निर्विन्ध्या नामक नदीके । सन्निपत्य = संपर्कमें आकर । रसाभ्यन्तरः भव = रससे भरे हुए हो जाओ । हि = क्योंकि । प्रियेषु = प्रेमियोंके विषयमें । विभ्रमः = विलास ही स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं = स्त्रियोंका प्रथम प्रणयवचन है ।

भावार्थ—यहाँ मेघमें नायक और निर्विन्ध्यामें नायिकाका आरोप किया है (तात्पर्य यह है कि) जैसे कोई नायिका अपने प्रियतम से प्रणयवचन करते

लिये करधनीसे शब्द करती है, उन्मत्तसी चलती है, नाभि आदि गोप्य अंगोंका प्रदर्शन करती है, उसी प्रकार उज्जयिनी जाते हुए मार्गमें निर्विन्ध्या भी तुम्हें अपना प्रणयी समझेगी और कूजते हुए बगुले आदिकी पंक्तिरूप उसकी करधनी, टेढ़ामेढ़ा चलना उसका उन्माद, जलावर्त ही उसकी नाभि समझकर तुम उसका रस (जल, शृङ्गार) ग्रहण करना। क्योंकि स्त्रियाँ इन विलास-चेष्टाओं द्वारा ही प्रणयकी याचना करती हैं कण्ठ से नहीं।

टिप्पणी—स्त्रियाँ अत्यन्त लज्जालु स्वभाव होनेके कारण अति आकृष्ट होनेपर भी स्पष्टरूपसे प्रणययाचना नहीं करतीं, अपितु विभिन्न प्रकारकी विलास चेष्टाओंसे ही उनकी आसक्ति प्रकट होती है। "बाहुमूलंस्तनं नाभि-मूरुमूलं च मेखलाम्। व्याजतो दर्शयेद् यत्तु वामाऽसौ विभ्रमो मतः।" ॥२९॥

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिः शीर्णपर्णैः।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः॥३०॥

निर्विन्ध्याया विरहावस्थां वर्णयंस्तन्निराकरणं प्रार्थयते—वेणीति॥ अवेणी वेणीभूतमिति वेणीभूतं वेण्याकारं प्रतनु स्तोकं च सलिलं यस्याः सा तथोक्ता। अन्यत्र वेणीभूतकेशपाशेति च ध्वन्यते। रुहन्तीति रुहाः। इगुपधलक्षणः कप्रत्ययः। तटयो रुहा ये तरवस्तेभ्यो भ्रश्यन्तीति तथोक्तैः। जीर्णपर्णैः शुष्कपत्रैः पाण्डुच्छाया पाण्डुवर्णा। अत एव हे सुभग! विरहावस्थया पूर्वोक्तप्रकारया करणेन। अतीतस्यैतावन्तं कालमतीतस्य गतस्य। प्रोषितस्येत्यर्थः। ते तव सौभाग्यं सुभगत्वम्। "हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च" इत्युभयपदवृद्धिः। व्यञ्जयन्ती प्रकाशयन्ती। स खलु सुभगो यमङ्गनाः असौ पूर्वोक्ता सिन्धुर्नदी निर्विन्ध्या। "स्त्री नद्यां ना नदे सिन्धुर्देश भेदेऽम्बुधौ गजे" इति वैजयन्ती। येन विधिना व्यापारेण कार्श्यं त्यजति स विधिस्त्वयैवोपपाद्यः। कर्त्तव्य इत्यर्थः। स च विधिरेकत्र वृष्टिरन्यत्र सम्भोगस्तदभावविरहजन्यकार्श्यस्येति भावः। इयं पञ्चमी मदनावस्था।

तदुक्तं रतिरहस्ये—"नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथ सङ्कल्पः। निद्रा-च्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः। उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः।" इति। "तामतीतस्य" इति पाठमाश्रित्य सिन्धुर्नाम नद्यन्तरमिति व्याख्यातम्। किं तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः काश्मीरदेशेऽस्ति। नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यमित्याचक्षते ॥३०॥

पदार्थ—सुभग ! = हे भाग्यवान् मेघ ! वेणीभूतप्रतनुसलिला = स्त्रियोंकी चोटीके आकारका थोड़ासा रह गया है जल जिसमें, ऐसी। तटरुहतरुभ्रंशिभिः = किनारेमें उगे वृक्षोंसे झड़े हुए। जीर्णपर्णैः = पुराने पत्तोंसे। पाण्डुच्छाया = पीलेवर्णकी। विरहावस्थया = वियोगावस्थाद्वारा। तामतीतस्य = उस निर्विन्ध्याको पार किये। ते सौभाग्यं = तुम्हारी भाग्यशालिताको। व्यञ्जयन्ती = प्रकट करती हुई। सिन्धुः = सिन्धु नामकी नदी। येन विधिना = जिस प्रकारसे। कार्श्यं त्यजति = कृशताको छोड़ती है। स एव = वही विधि। त्वया उपपाद्यः = तुम्हें करना चाहिये।

भावार्थ—हे भाग्यशाली मेघ ! उस (निर्विन्ध्या) को पार करके तुम्हें वही उपाय करना है जिससे सिन्धु नदीकी कृशता दूर हो जाय। क्योंकि विरहिणी नायिकाकी भाँति उसका भी जल लटकती चोटी सा स्वल्प लग रहा है। किनारेके वृक्षोंसे झड़े हुए पीले पत्तोंसे ढकनेके कारण उसकी आभा भी फीकी हो गयी है। इस प्रकार अपनी वियोगावस्थासे वह दुनियाको दिखा रही है कि उसका प्रियतम (तुम) कितना भाग्यवान् है जिसे वह इतना चाहती है कि उसके विरहमें इसकी यह दशा हो रही है।

टिप्पणी—मल्लिनाथने "तामतीतस्य" को "असावतीतस्य" ऐसा पाठ करके "असौ सिन्धुः"को निर्विन्ध्याका ही विशेषण माना है और "तामतीतस्य"पाठको उपेक्ष्य कहा है। किन्तु भूगोलकी अल्पज्ञताके कारण उनका ही पाठ उपेक्ष्य है। क्योंकि लहरोंकी हलचल, टकराती चलना, जलमें भौंरोंका बनना जिस निर्विन्ध्याके विषयमें पूर्वश्लोकमें कहा जा चुका है वह तुरन्त ही वेणीभूतप्रतनु-सलिला कैसे हो जायगी ? मालवामें काली सिन्धु नामक छोटी नदी मालवा

प्रान्तमें बहती है जो चम्बलमें मिलती है, उसीको इस श्लोकमें 'सिन्धु' नामसे कहा गया है। जैसे नायक समागम द्वारा नयिकाको हर्षसे उत्फुल्लित कर देता है ऐसे ही मेघ भी वृष्टिद्वारा सिन्धुका दुबलापन दूर कर देगा, यह अभिप्राय है ॥३०॥

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३१॥

प्राप्येति ॥ विदन्तीति विदाः। इगुपधलक्षणः कः। ओकसो वेद्मस्थानस्य विदाः कोविदाः। ओकारलुप्ते पृषोदरादित्वात्साधुः। उदयनस्य वत्सराजस्य कथानां वासवदत्ताहरणाद्यद्भुतोपाख्यानानां कोविदास्तत्त्वज्ञा ग्रामेषु ये वृद्धास्ते सन्ति येषु तानवन्तींस्तन्नामजनपदान् प्राप्य तत्र पूर्वोद्दिष्टां पूर्वोक्तां "सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः" इत्युक्तां श्रीविशालां सम्पत्तिमहतीम्। "शोभासम्पत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते" इति शाश्वतः। विशालां पुरीमुज्जयिनीमनुसर व्रज। कथमिव स्थिताम्। सुचरितफले पुण्यफले स्वर्गोपभोगलक्षणे स्वल्पीभूते। अत्यल्पावशिष्टे सतीत्यर्थः। गां भूमिं गतानाम्। "गौरिला कुम्भिनी क्षमा" इत्यमरः। पुनरपि भूलोकगतानामित्यर्थः। स्वर्गिणां स्वर्गवतां जनानां शेषैर्भुक्तशिष्टैः पुण्यैः सुकृतैर्हृतमानीतम्। स्वर्गार्थानुष्ठितकर्मशेषाणां स्वर्गदानावश्यंभावादिति भावः। कान्तिरस्यास्तीति कान्तिमदुज्ज्वलम्। सारभूतमित्यर्थः। एकं मुक्तादन्यत्। "एके मुख्यान्यकेवलाः" इत्यमरः। दिवः स्वर्गस्य खण्डमिव स्थितामित्युत्प्रेक्षा। एतेनातिक्रान्तसकलभूलोकनगरसौभाग्यसारत्वमुज्जयिन्या व्यज्यते ॥ ३१ ॥

पदार्थ—उदयन० = वत्सराजकी कथाओंके जानकार हैं गाँवोंके वृद्ध लोग जिनमें, ऐसे। अवन्तीन्=अवन्ति देशोंमें। प्राप्य=पहुँचकर। पूर्वोद्दिष्टां=पहले बताई हुई। श्रीविशालां पुरीं=सम्पत्तिसे भरी नगरी। विशालां=उज्जयिनीको।

अनुसर=चलो। (जो पुरी) सुचरितफले स्वल्पीभूते=पुण्यफलोंके क्षी
होनेपर। गां गतानां=भूमिपर आये हुए। स्वर्गिणां=देवताओंके। शे
पुण्यैः=बचे हुए पुण्यफलोंसे। हृतम्=लाये हुए। कान्तिमत्=दीप्तिमान्। दि
एकं खण्डमिव=स्वर्गके एक टुकड़े सी (है)।

भावार्थ—जहांके गाँवोंमें बड़े बूढ़े आज भी उदयनकी कथाओंको विस्ता
कहा करते हैं, ऐसे अवन्ति देशमें पहुँचकर तुम उस उज्जयिनीकी ओर च
जिसका निर्देश मैं पहिले कर चुका हूँ। धनधान्य रत्नादिसे भरी वह नग
क्या है? प्रतीत होता है कि पुण्य क्षीण होनेपर जो स्वर्गनिवासी भूमिपर आ
हैं वे अपने शेष पुण्यों का उपभोग करनेके लिये स्वर्गका ही एक दीप्तिमा
टुकड़ा भूमिपर ले आये हैं।

टिप्पणी—वत्सराज उदयन और वासवदत्ताकी कथा संस्कृत साहित्
विख्यात है। महाकवि भासके "स्वप्नवासवदत्तम्" और "प्रतिज्ञायौगन्धराय
नाटक तथा सुबन्धुके "वासवदत्ता" गद्यकाव्यका आधार ये ही हैं। गुणाढ्य
"बृहत्कथा" तथा इसके आधार पर बनी क्षेमेन्द्रकी "बृहत्कथामंजरी" औ
सोमदेवके "कथासरित्सागर" में भी यह कथा विस्तारसे आयी है। "उदय
कथाकोविदग्रामवृद्धान्' कहनेसे प्रतीत होता है कि वत्सराजके द्वारा प्रद्यो
सुता वासवदत्ताके अपहरणकी घटना कालिदासके कालमें इतनी ही पुरा
हुई थी जिसे कि गाँवके बूढ़े लोग आज भी सुनाया करते थे।

मनुष्य उत्कट पुण्य करनेपर स्वर्गमें जाते हैं वहाँ उस पुण्यफलका उपभो
करके पुनः भूमिपर जन्म लेते हैं—देखिये गीता—

"ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकानश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।"
"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥३१॥

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥३२॥

दीर्घीकुर्वन्निति ॥ यत्र विशालायां प्रत्यूषेष्वहर्मुखेषु । "प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम्" इत्यमरः । पटु प्रस्फुटम् । मदकलं मदेनाव्यक्तमधुरम् । "ध्वनौ तु मधुरास्फुटे । कलः" इत्यमरः । सारसानां पक्षिविशेषाणाम् । "सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः" इति यादवः । यद्वा सारसानां हंसानाम् । "चक्राङ्गः सारसो हंसः" इति शब्दार्णवे । कूजितं रुतं दीर्घीकुर्वन् । विस्तारयन्नित्यर्थः । यावद्वातं शब्दानुवृत्तेरिति भावः । एतेन प्रियतमः स्वचाटुवाक्यानुसारि क्रीडापक्षिकूजितमविच्छिन्नीकुर्वन्निति च गम्यते । स्फुटितानां विकसितानां कमलानामामोदेन परिमलेन सह या मैत्री संसर्गस्तेन कषायः सुरभिः । "रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे" इति यादवः । अन्यत्र विमर्दगन्धीत्यर्थः । 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे । आमोदः सोऽतिनिर्हारी" इत्यमरः । अङ्गानुकूलो गात्रसुखस्पर्शः अन्यत्र गाढालिङ्गनदत्तगात्रसंवाहन इत्यर्थः । भवभूतिना चोक्तम्—"अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि" इति संवाह्यन्ते च सुरतश्रान्ताः प्रियैर्युवतयः । एतत्कविरेव वक्ष्यति (उ० मे० ९८) "संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानाम् ।" इति । शिप्रानाम काचित्तत्रत्या नदी तस्या वातः शिप्रावातः । शिप्राग्रहणं शैत्यद्योतनार्थम् । प्रार्थना सुरतस्य याच्ञा तत्र चाटु करोतीति तथोक्तः । पुनः सुरतार्थं प्रियवचनप्रयोक्तेत्यर्थः । कर्मण्यणप्रत्ययः प्रियतमो वल्लभ इव स्त्रीणां सुरतग्लानिं सम्भोगखेदं हरति नुदति । चाटूक्तिभिर्विस्मृतपूर्वरतिखेदाः प्रियतमप्रार्थनां सफलयन्तीति भावः । "प्रार्थनाचाटुकारः" इत्यत्र "खण्डितनायिकानुनीता" इति व्याख्याने सुरतग्लानिहरणं न सम्भवति । तस्याः पूर्वं सुरताभावात्पश्चात्तनसुरतग्लानिहरणं तु नेदानीन्तनकोपशमनार्थचाटुवचनसाध्यमित्युत्प्रेक्षैवोचिता विवेकिनाम् । "ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता" इति दशरूपके ॥ ३२ ॥

पदार्थ—यत्र = जहाँ । प्रत्यूषेषु = प्रातःकाल । पटु मदकलं=तीव्र और मदसे मधुर । सारसानां कूजितं = सारसोंकी ध्वनिको । दीर्घीकुर्वन् = फैलाता हुआ । स्फुटित०=खिले कमलोंकी सुगन्धके सम्पर्कसे सुगन्धित । अङ्गानुकूलः= अङ्गोंको सुखदायी । शिप्रावातः = शिप्रानदीका वायु । प्रार्थनाचाटुकारः =

मनानेके लिये मीठी बातें करनेवाले। प्रियतम इव=प्रेमीकी तरह। स्त्रीणां स्त्रियोंकी। सुरतग्लानिम्=सम्भोगकी थकावटको। हरति=दूर करता है।

भावार्थ—जिस उज्जयिनीमें प्रातः सारसोंकी ऊँची और मदसे मधुर ध्वनिको और भी दीर्घ करता हुआ, विकसित कमलोंकी मनोहर गन्धसे भरा तथा अङ्गोंको अत्यन्त आनन्द देनेवाला शिप्रा नदीका वायु, मनानेके लिये चिकनी-चुपड़ी बातें करनेवाले प्रेमीकी तरह, स्त्रियोंके सम्भोगजन्य श्रमको दूर कर देता है।

टिप्पणी—शिप्रा—प्रसिद्ध नदी है जिसके किनारे उज्जयिनी बसी है ॥ ३२ ॥

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान् कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान् मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान् विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥३३॥

इतः परं प्रक्षिप्तमपि श्लोकत्रयं व्याख्यायते—

हारानिति ॥ यस्यां विशालायां कोटिशो विपणिषु पण्यवीथिकासु। "विपणिः पण्यवीथिका" इत्यमरः। रचितान् प्रसारितान्। इदं विशेषणं यथालिङ्गं सर्वत्र सम्बध्यते। तारानच्छुद्धान्। "तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरले शुद्धमौक्तिके" इति विश्वः। तरलगुटिकान् मध्यमणीभूतमहारत्नान्। "तरलो हारमध्यगः" इत्यमरः। "पिण्डे मणौ महारत्ने गुटिका बद्धपारदे" इति शब्दार्णवे। हारान् मुक्तावलीः। तथा कोटिशः शङ्खांश्च शुक्तीश्च मुक्तास्फोटांश्च। "मुक्तास्फोटः स्त्रियां शुक्तिः शंखः स्यात्कम्बुरस्त्रियाम्" इत्यमरः। शष्पं बालतृणं तद्वच्छ्यामान्। "शष्पं बालतृणं घासो यवसं तृणमर्जुनम्" इत्यमरः। उन्मयूखप्ररोहानुद्गतरम्याङ्कुरान् मरकतमणीन् गारुत्मतरत्नानि। तथा विद्रुमाणां भङ्गान् प्रवालखण्डांश्च दृष्ट्वा सलिलनिधयः समुद्रास्तोयमात्रमवशेषो येषां ते तादृशाः संलक्ष्यन्ते। तथानुमीयन्त इत्यर्थः। रत्नाकरादप्यतिरिच्यन्ते रत्नसम्पद्भिरिति भावः ॥ ३३ ॥

पदार्थ—यस्यां = जिसमें । विपणिरचितान् = बाजारोंमें सजाये हुए । कोटिशः = अनेकों । तरलगुटिकान्=मूल्यवान् रत्न जिनके बीचमें लगे हैं, ऐसे । तारान् हारान्=शुद्ध हारोंको । शंखशुक्तीः=शंखों और सीपियोंको । शष्पश्यामान् = घासके से साँवले रंगवाली । उन्मयूखप्ररोहन् = ऊपरको उठ रहे हैं किरणरूप अंकुर जिनके ऐसी । मरकतमणीन् = मरकतमणियोंको । विद्रुमाणां च भङ्गान् = और मूंगोंके टुकड़ोंको । दृष्ट्वा=देखकर । सलिलनिधयः=समुद्र । तोयमात्रावशेषाः=जलमात्र शेष है जिनमें ऐसे । संलक्ष्यन्ते=दिखाई देते हैं ।

भावार्थ—जिस उज्जयिनीमें दूकानोंपर विक्रीके लिये सजाये हुए, बीचमें लटकते हुए बहुमूल्य रत्नोंवाले हारों, करोंड़ों शंखों और सीपियों, ऊपरको अंकुरोंकी तरह उठती हुई किरणोंवाले ऐसे घासके-से गहरे हरे रंगके मकरत मणियों और मूंगोंके टुकड़ोंको देखकर मालूम पड़ता है कि रत्नाकर जलनिधिमें अब केवल जल ही रह गया होगा क्योंकि रत्न तो सब यहाँ आ गये हैं ।

टिप्पणी—मल्लिनाथने इस श्लोकको भी प्रक्षिप्त कहा है, किन्तु इसकी व्याख्या की है । कई टीकाकारोंने इसे लिखा ही नहीं है ।। ३३ ।।

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाटय दर्पा-
दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ।।३४।।

प्रद्योतस्येति । अत्र प्रदेशे वत्सराजो वत्सदेशाधीश्वर उदयनः । प्रद्योतस्य नामोज्जयिनीनायकस्य राज्ञः प्रियदुहितरं वासवदत्तां जह्रे जहार । अत्र स्थले तस्यैव राज्ञः प्रद्योतस्य हैमं सौवर्णं तालद्रुमवनमभूत् । अत्र नलगिरिर्नामेन्द्रदत्तस्तदीयो गजो दर्पान्मदात्स्तम्भमालानमुत्पाट्योद्धृत्योद्भ्रान्त उत्पत्य भ्रमणं कृतवान् । इतीत्थंभूताभिः कथाभिरित्यर्थः । अभिज्ञः पूर्वोक्तकथाभिज्ञः कोविदो जन आगन्तून् देशान्तरादागतान् । औणादिकस्तुन्प्रत्ययः । बन्धून् यत्र विशालायां रमयति विनोदयति । अत्र भाविकालङ्कारः । तदुक्तम्—"अतीतानागते यत्र प्रत्यक्षत्वेन लक्षिते । अत्यद्भुतार्थकथनाद्भाविकं तदुदाहृतम् ।" इति ।। ३४ ।।

पदार्थ—यत्र = जिस उज्जयिनीमें । अभिज्ञः जनः = पूर्वकथाओंको जानने वाले लोग । आगन्तून् बन्धून्=आगन्तुक प्रियजनोंको । अत्र = यहाँ । वत्सराजः उदयनने । प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं=प्रद्योतराजकी प्रियसुता वासवदत्ताको । जहे= हर लिया था । अत्र=यहाँपर । तस्यैव राज्ञः=उसी राजा प्रद्योतका । हैमं= स्वर्णमय । तालद्रुमवनं = ताड़के वृक्षोंका वन । अभूत् = था । अत्र = यहाँपर नलगिरिः = (इस नामका) हाथी । दर्पात् = मदसे । स्तम्भम् उत्पाट्य= खंभेको उखाड़कर । उद्भ्रान्तः किल = मतवाला हो गया था । इति = इस प्रकारकी बातोंसे । रमयति = रिझाते हैं ।

भावार्थ—जिस उज्जयिनीमें रहनेवाले लोग बाहरके आगन्तुकोंको, यहाँ पर उदयनने वासवदत्ताको हरलिया था, यहाँपर राजा प्रद्योतका सुनहरे ताड़ का बगीचा था, यहाँ नलगिरि नामका हाथी मतवाला हो गया था, इत्यादि बताकर उनका मनोविनोद करते हैं ।

टिप्पणी—वत्सराज उदयनके द्वारा प्रद्योतसुता वासवदत्ताका अपहरण उस समयकी प्रसिद्ध घटना है । नलगिरि हाथीका दूसरा नाम चण्ड भी था और इसी दुर्दान्त हाथीके कारण राजा प्रद्योत चण्डमहासेन कहलाते थे । उन्मत्त हुए इस हाथीको वत्सराजने वश कर लिया था और इसी कलापर मुग्ध हो प्रद्योतने वासवदत्ताके अपहरणको क्षमाकर उन्हें विवाहकी स्वीकृति दे दी थी।

मल्लिनाथ आदि कई टीकाकारोंने इस श्लोकको भी प्रक्षिप्त माना है किन्तु अष्टमशताब्दीमें रचित जिनसेनके पार्श्वाभ्युदयमें ये दोनों पद्य उद्धृत हैं। कहा नहीं जा सकता कि प्रक्षिप्त माननेवालोंकी कसौटी क्या है ।।३४।।

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ।।३५।।

पत्रेति ।। हे जलद, यत्र विशालायां वाहाः हयाः पत्रश्यामाः पलाश वर्णा अत एव दिनकरहयस्पर्धिनो वर्णतो वेगतश्च सूर्याश्वस्पर्धि

शैलोदग्राः शैलवदुन्नताः करिणः प्रभेदान्मदस्रावाद्धेतोस्त्वमिव वृष्टिमन्तः । अग्रं नयन्तीत्यग्रण्यः । "सत्सूद्विष–" इत्यादिना क्विप् । "अग्रग्रामाभ्यां नयतेः" इति वक्तव्याण्णत्वम् । योधानामग्रण्यो भटश्रेष्ठाः संयुगे युद्धे प्रतिदशमुखमभिरावणं तस्थिवांसः स्थितवन्तः । अत एव चन्द्रहासस्य रावणासेर्व्रणाः क्षतान्येवाङ्काश्चिह्नानि तैः । "चन्द्रहासो रावणासावसिमात्रेऽपि च क्वचित्" इति शाश्वतः । प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः प्रतिषिद्धभूषणकान्तयः । शस्त्रप्रहारा एव वीराणां भूषणमिति भावः । अत्रापि भाविकालङ्कारः ॥ ३५ ॥

पदार्थ—यत्र = जहाँ । पत्रश्यामाः = पत्तोंके समान हरे रंग के । वाहाः = घोड़े । दिनकरहयस्पर्द्धिनः = सूर्याश्वोंसे स्पर्द्धा करनेवाले (हैं) । शैलोदग्राः = पहाड़ोंसे ऊँचे । करिणः = हाथी । प्रभेदात् = गण्डस्थल फट जानेसे । त्वमिव = तुम्हारी तरह । वृष्टिमन्तः = बरस रहे हैं । योधाग्रण्यः = श्रेष्ठयोधा । संयुगे = युद्धमें । प्रतिदशमुखं = रावणके सम्मुख । तस्थिवांसः = खड़े होनेवाले । चन्द्रहासव्रणाङ्कैः = तलवारकी चोटोंसे उत्पन्न घावोंके चिह्नोंसे । प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः = भूषणोंकी कान्तिको तिरस्कृत कर रहे हैं ।

भावार्थ—जिस उज्जयिनीमें श्यामकर्ण घोड़े सूर्यके घोड़ोंसे प्रतिद्वन्द्विता करते हैं । पहाड़ों जैसे ऊँचे हाथी अपने गण्डस्थलोंसे ऐसे मद बरसाते हैं जैसे तुम जल बरसाते हो । वहाँके योद्धा लड़ाईमें रावणके सामने भी ठहर जाते हैं और उनके शरीरमें तलवारोंके घाव इतने अधिक हैं कि उनसे आभूषणोंकी कान्ति भी फीकी पड़ जाती है ।

टिप्पणी—केवल मल्लिनाथने ही इस पद्यको प्रक्षिप्त मानकर भी उज्जयिनीवर्णनमें स्थान दिया है, शेष टीकाकारोंने इसे अलकावर्णन (उत्तरमेघ) में रखा है । हमारे विचारसे भी यह वहींका पद्य होना चाहिये, क्योंकि "प्रतिदशमुखं" और "चन्द्रहासव्रणाङ्कैः" पदोंकी संगति अलकावासी योद्धाओंसे ही बैठती है उज्जयिनीके योद्धाओंसे नहीं । भरतमल्लिक और विल्सन आदिने इस श्लोकको कालिदासकी रचना न मानकर मेघदूतमें कहीं भी स्थान नहीं दिया है । किन्तु प्राचीन टीकाकार जिनसेन आदिने इसे मेघदूतमें माना है और वस्तुतः यह कालिदासकी शैलीके अनुरूप है भी ।

युवावस्थामें हाथियोंके कपोल फटते हैं और उनसे जलस्राव होता है; यही उनके पूर्ण यौवनका सूचक है। 'चन्द्रहास' रावणकी तलवारका नाम है ॥ ३५ ॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथाः
लक्ष्मीं पश्यन् ललितवनिता पादरागाङ्कितेषु ॥३६॥

जालोद्गीर्णैरिति ॥ जालोद्गीर्णैर्गवाक्षमार्गनिर्गतैः। "जालं गवाक्ष आनाये जालके कपटे गणे" इति यादवः। केशसंस्कारधूपैः। वनिताकेशवासनार्थैर्गन्धद्रव्यधूपैरित्यर्थः। अत्र संस्कारधूपयोस्तादर्थ्येऽपि यूपदार्वादिवत्प्रकृतिविकारत्वाभावादश्वघासादिवत्षष्ठीसमासो न चतुर्थीसमासः। उपचितवपुः परिपुष्टशरीरः। बन्धौ बन्धुरिति वा प्रीत्या भवनशिखिभिर्गृहमयूरैर्दत्तो नृत्यमयोपहार उपायनं यस्मै स तथोक्तः। "उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा।" इत्यमरः॥ कुसुमैः सुरभिषु सुगन्धिषु। ललितवनिताः सुन्दरस्त्रियः। "ललितं त्रिषु सुन्दरम्" इति शब्दार्णवे। तासां पादरागेण लाक्षारसेनाङ्कितेषु चिह्नितेषु हर्म्येषु धनिकभवनेष्वस्या उज्जयिन्या लक्ष्मीं पश्यन्नध्वगमनेन खेदं क्लेशं नयेथा अपनय ॥ ३६ ॥

पदार्थ—जालोद्गीर्णैः = झरोखोंसे निकले हुए। केशसंस्कारधूपैः = बालोंको सुगन्धित करनेका जो धूप, उसके धुँएसे। उपचितवपुः = बढ़ते शरीरवाला। भवनशिखिभिः = गृहमयूरोंद्वारा। बन्धुप्रीत्या = भ्रातृस्नेहसे। दत्तनृत्योपहारः = दिया है नृत्यरूप उपहार जिसको, ऐसा। कुसुमसुरभिषु = पुष्पोंसे सुवासित। ललित = सुन्दर वनिताओंके चरणोंमें लगे महावरसे चिह्नित। अस्या हर्म्येषु = इसके महलोंमें। लक्ष्मीं = शोभाको। पश्यन् = देखता हुआ। अध्वखेदं = मार्गके श्रमको। नयेथाः = दूर करना।

भावार्थ—बालोंको सुवासित करनेके लिये जो धूप जलाई गई है उसके झरोखोंसे निकलते हुए धुँएसे तुम्हारा आकार बढ़ने लगेगा, भ्रातृस्नेहसे पालतू

मोर तुम्हें देखकर नाचेंगे, इस प्रकार फूलोंकी सुगन्धसे भरी और सुन्दरियोंके चलनेसे महावरके पैरोंके चिह्न जिनमें होगये हैं ऐसी उज्जयिनीकी विशाल अट्टालिकाओंकी शोभा देखते हुए तुम मार्गकी थकावट मिटाना।

टिप्पणी—धूपके धुँएसे मेघका बढ़ना स्वाभाविक ही है क्योंकि पहिले कह चुके हैं "धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः"। संस्कारधूमैः ऐसा भी पाठ है। विदग्धनागरिकोंके क्रीडा-गृहोंमें सुगन्धिके लिये फूल बिखेरे रहते थे तुलना०—"वेश्मोज्वलं सुसंमृष्टं प्रकीर्णकुसुमोत्करं।
क्रीडोपकरणैर्युक्तं पिण्डधूपमनोहरम्॥"

इस पद्यसे उज्जयिनीकी उत्कृष्ट रतिसंपत्तिका आभास होता है॥३५॥

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः॥ ३७॥

भर्तुरिति॥ भर्तुः स्वामिनो नीलकण्ठस्य भगवतः कण्ठस्येव छविर्यस्यासौ कण्ठच्छविरिति हेतोर्गणैः प्रमथैः। "गणस्तु गणनायां स्याद्गणेशे प्रमथे चये" इति शब्दार्णवे। सादरं यथा तथा वीक्ष्यमाणः सन्। प्रियवस्तु-सादृश्यादतिप्रियत्वंभवेदिति भावः। त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनम्। "तद्धितार्थ—" इत्यादिना समासः। तस्य गुरोस्त्रैलोक्यनाथस्य चण्डीश्वरस्य कत्यायनीवल्लभस्य पुण्यं पावनं धाम महाकालाख्यं स्थानं यायाः गच्छेः। विध्यर्थे लिङ्। श्रेयस्करत्वात्सर्वथा यातव्यमिति भावः। उक्तं च स्कान्दे "आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम्। मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात्।" इति। केवलं मुक्तिस्थानमिदं किन्तु विलासस्थानमपी-त्याह—धूतेति। कुवलयरजोगन्धिभिरुत्पलपरागगन्धवद्भिस्तोयक्रीडासु निरतानामासक्तानां युवतीनां स्नानं स्नानीयं चन्दनादि। करणे ल्युट्। "स्नानीयेऽभिषवे स्नानम्" इति यादवः। तेन तिक्तैः सुरभिभिः। "कटुतिक्त-कषायास्तु सौरभे च प्रकीर्तिताः" इति हलायुधः। सौगन्ध्यातिशयार्थं विशेषण-

द्वयम्। गन्धवत्या नाम नद्यास्तत्रत्याया मरुद्भिर्मारुतैर्धूतोद्यानं कम्पिता-क्रीडमिति धाम्नो विशेषणम् ॥ ३७ ॥

पदार्थ—भर्तुः=स्वामीके। कण्ठच्छविः=गलेकी नीलिमा जैसा है। इति=यह सोचकर। गणैः = भक्तोंसे। सादरं वीक्ष्यमाणः=आदरसे देखे गये (तुम)। त्रिभुवनगुरोः=तीनों लोकोंके पूज्य। चण्डीश्वरस्य=शिवजीके। पुण्यं=पवित्र। कुवलय०=कमलपरागकी गन्धवाले। गन्धवत्याः=गन्धवती नदीके। तोयक्रीडा० =जलक्रीडासक्त युवतियोंके स्नानसे सुवासित। मरुद्भिः = वायुओंसे। धूतो-द्यानं = हिलाये जा रहे हैं उद्यान जिसके ऐसे। धाम = स्थान (महाकाल)को। यायाः = जाना।

भावार्थ—अपने स्वामी नीलकण्ठके गलेकीसी कान्तिवाले तुमको गणलोग आदरसे देखेंगे। तब तुम त्रिभुवनगुरु शिवजीके उस पवित्रस्थान (महाकाल)को जाना जहाँके बगीचोंमें, कमलकिंजल्कसे पूर्ण गन्धवतीके जलमें जलक्रीडा करती हुई युवतियोंके अङ्गवाससे अतिसुगन्धित वायु प्रवाहित होता रहता है।

टिप्पणी—शिवजी त्रिलोकमें पूज्य हैं और लोक-भेदसे उनके तीन स्वरूप माने गये हैं—आकाशमें तारक लिंग, पातालमें हाटकेश्वर, मृत्युलोकमें महाकाल। इनके दर्शनसे कामना पूर्ण होती है।

गन्धवती—एक छोटी-सी नदी है, जो महाकाल मन्दिरके पास बहती है। यह पूर्वोक्त शिप्रा नदीकी ही एक शाखा है ॥ ३७ ॥

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतांशूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३८॥

अपीति ॥ युग्मम्। हे जलधर! महाकालं नाम पूर्वोक्तं चण्डीश्वर-स्थानमन्यस्मिन सन्ध्यातिरिक्तेऽपि कालआसाद्य प्राप्य ते तव स्थातव्यम्। त्वया स्थातव्यमित्यर्थः। "कृत्यानां कर्तरि वा" इति षष्ठी। यावद्यावता कालेन भानुः सूर्यो नयनविषयं दृष्टिपथमत्येत्यतिक्रामति। ...

पर्यन्तं स्थातव्यमित्यर्थः। यावदित्येतदवधारणार्थं। "यावत्तावच्च साकल्ये-ऽवधौ मानेऽवधारणे" इत्यमरः। किमर्थमत आह—कुर्वन्निति। श्लाघनीयां प्रशस्यां शूलिनः शिवस्य संध्यायां बलिः पूजा तत्र पटहतां कुर्वन् संपादयन्नामन्द्राणामीषद्गम्भीराणां गर्जितानामविकलमखण्डं फलं लप्स्यसि प्राप्स्यसि। लभेः कर्तरि लृट्। महाकालनाथबलिपटहत्वेन विनियोगात्ते गर्जितसाफल्यं स्यादित्यर्थः॥ ३८॥

पदार्थ—जलधर = हे बादल ! अन्यस्मिन् अपि काले=दूसरे समयमें भी। महाकालं = महाकालको। आसाद्य = प्राप्त करके। यावत्=जबतक। भानुः = सूर्य। नयनविषयम् अत्येति = आँखोंसे ओझल हो जाय। (तावत् = तबतक) ते=तुम्हें। स्थातव्यम् = ठहरना चाहिये। श्लाघनीयां = प्रशंसनीय। शूलिनः= शिवकी। सन्ध्या०=सायंकालकी पूजामें पटह (नगाड़ा)का कार्य। कुर्वन् = करते हुए। आमन्द्राणां गर्जितानां = कुछ गम्भीर गर्जनोंके। अविकलं फलं = सम्पूर्ण फलको। लप्स्यसे = पाओगे।

भावार्थ—हे मेघ ! यदि तुम सन्ध्याकालके अतिरिक्त किसी दूसरे समयमें भी महाकालके पास पहुँचो तो सूर्यास्त होनेतक वहीं ठहरना, क्योंकि शिवजी की सायंकालीन आरतीमें तुम्हारी गम्भीर गर्जनाएँ नगाड़ोंका काम देंगी और महाकालके प्रसादसे तुम्हें इन गर्जनाओंका सम्पूर्ण फल प्राप्त होगा।

टिप्पणी—"महाकाल" शिवजीके प्रसिद्ध द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें एक हैं। उनकीपूजामें सम्मिलित होना अवश्य ही फलदायक होगा। इस पद्यसे स्पष्ट होता है कि कालिदासका शिवजीकी उपासनामें दृढ़ विश्वास था॥ ३८॥

पादन्यासैः क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै-
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान्॥३९॥

पादन्यासैरिति॥ तत्र सन्ध्याकाले। पादन्यासैश्चरणनिक्षेपैर्नृत्याङ्गैः क्वणिताः शब्दायमाना रशना यासां तास्तथोक्ताः। क्वणतेरकर्मकत्वात् "गत्यर्थाकर्मक—" इत्यादिना कर्तरि क्तः। लीलया विलासेनावधूतैः

कम्पितैः रत्नानां कङ्कणमणीनां छायया कान्त्या खचिता रूषिता वलयश्चा-मरदण्डा येषां तैः "वलिश्चामरदण्डे च जराविश्लथचर्मणि" इति विश्वः। चामरैर्वालव्यजनैः क्लान्तहस्ताः। दैशिकं नृत्यं सूचितम्। तदुक्तं नृत्य-सर्वस्वे—खड्गकन्दुकवस्त्रादिदण्डिकाचामरस्रजः। वीणां च धृत्वा यत्कुर्युर्नृत्तं तद्दैशिकं भवेत् ॥" इति। वेश्या महाकालनाथमुपेत्य नृत्यन्त्यो गणिकास्त्वत्तो नखपदेषु सुखान् सुखकरान्। "सुखहेतौ सुखे सुखम्" इति शब्दार्णवे। वर्षाग्र-विन्दून् प्रथमबिन्दूनप्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षानपाङ्गाना-मोक्ष्यन्ते। "परैरुपकृताः सन्तः सद्यः प्रत्युपकुर्वते" इति भावः। कामिनीदर्श-नीयत्वलक्षणं शिवोपासनाफलं सद्यो लप्स्यस इति ध्वनिः ॥ ३६ ॥

पदार्थ—तत्र = वहाँ। पादन्यासैः = चरणविक्षेपोंसे। क्वणितरशनाः = शब्द कर रही हैं करधनियाँ जिनकी। लीलावधूतैः = विलासपूर्वक डुलाये गये। रत्नच्छाया० = रत्नोंकी कान्तिसे चमक रहे हैं दण्ड जिनके ऐसे। चामरैः = चँवरोंसे। क्लान्तहस्ताः = थके हाथोंवाली। वेश्याः = वेश्याएँ। त्वत्तः = तुमसे। नखपदसुखान् = नखक्षतोंमें आनन्द देनेवाली। वर्षाग्रविन्दून् = वर्षाकी पहली वूँदोंको। प्राप्य = पाकर। त्वयि = तुमपर मधुकरश्रेणिदीर्घान् = भौंरोंकी पंक्तिके समान लम्बे। कटाक्षान् = कटाक्षोंको। आमोक्ष्यन्ते = छोड़ेंगी।

भावार्थ—सायंकालीन आरतीके समय उस महाकालमन्दिरमें नाचते हुए जिनके पैरोंकी गतिके साथ किंकिणियाँ झनक रही हैं और रत्नोंकी कान्तिसे विभूषित डण्डोंवाले चँवरोंको कलापूर्वक डुलाते हुए जिनके हाथ थक गये हैं, ऐसी वेश्याएँ तुम्हारे बरसाए प्रथम जलविन्दुओंसे नखक्षतोंका दाह शान्त होनेसे प्रसन्न होकर तुमपर कटाक्षपात करेंगी, अर्थात् तुम्हें तिरछी चितवनोंसे देखेंगी।

टिप्पणी—"नखपदसुखान्" का अर्थ वल्लभने "नखपदवत्सुखजनकान्, अथवा नखपदानां सुखान्" किया है किन्तु मल्लिनाथ आदि ने "नखपदेषु सुखान्" ही माना है।

प्राचीन कालमें वेश्याएँ प्रत्येक मन्दिरमें अपनी ललित नृत्यगानकलाओंका प्रदर्शन करती थीं और उसीको उस देवताका आराधन मानती थीं। देवदासी प्रथाका जन्म भी इसी आधारपर हुआ ॥ ३६ ॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजवापुष्परक्तं दधानः
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्याः ॥४०॥

पश्चादिति ॥ पश्चात्सन्ध्याबल्यनन्तरं पशुपतेः शिवस्य नृत्यारम्भे ताण्डवप्रारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तं प्रत्यग्रजपाकुसुमारुणं सन्ध्यायां भवं सान्ध्यं तेजो दधानः; उच्चैरुन्नतं भुजा एव तरवस्तेषां वनं मण्डलेन मण्डलाकारेणाभिलीनोऽभिव्याप्तः सन् । कर्तरि क्तः । भवान्या भवपत्न्या । 'इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्' इति ङीष्, आनुगागमश्च । शान्त उद्वेगो गजाजिनदर्शनभयं ययोस्ते अतएव स्तिमिते निश्चले नयने यस्मिन्कर्मणि तत्तथोक्तम् । "उद्वेगस्त्वरिते क्लेशे भये मन्थरगामिनि" इति शब्दार्णवे । भक्तिः पूज्येष्वनुरागः । भावार्थे क्तिन्प्रत्ययः । दृष्टा भक्तिर्यस्य स दृष्टभक्तिः सन् । पशुपतेरार्द्रं शोणितार्द्रं यन्नागाजिनं गजचर्म । "अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्रीः" इत्यमरः । तत्रेच्छां हर निवर्तयेः । त्वमेव तत्स्थाने भवेत्यर्थः । गजासुरमर्दनानन्तरं भगवान्महादेवस्तदीयमार्द्राजिनं भुजमण्डलेन बिभ्रत्ताण्डवं चकारेति प्रसिद्धिः । दृष्टभक्तिरिति कथं रूपसिद्धिः । दृष्टशब्दस्य "स्त्रिया पुंवत्—" इत्यादिना पुंवद्भावस्य दुर्घटत्वादपूरणीप्रियादिष्विति निषेधात् । भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठादिति । तदेतच्चोद्यम् । दृढभक्तिरिति शब्दमाश्रित्य प्रतिविहितं गणव्याख्याने दृढं भक्तिरस्येति नपुंसकं पूर्वपदम् । अदार्ढ्यनिवृत्तिपरत्वे दृढशब्दाल्लिङ्गविशेषस्यानुपकारित्वात्स्त्रीत्वमविवक्षितमिति । भोजराजस्तु—"भक्तौ च कर्मसाधनायामित्यनेन सूत्रेण भज्यते भव्यत इति कर्मार्थत्वे भवानीभक्तिरित्यादि भवति । भावसाधनायां तु स्थिरभक्तिर्भवान्यामित्यादि भवति" इत्याह । तदेतत्सर्वं सम्यग्विवेचितं रघुवंशसञ्जीविन्यां "दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे" इत्यत्र ।

तस्माद्दृष्टभक्तिरित्यत्रापि मतभेदेन पूर्वपदस्य स्त्रीत्वेन नपुंसकत्वेन च रूप-सिद्धिरस्तीति स्थितम् ॥४०॥

पदार्थ—पश्चात्=बादमें। पशुपतेः=शिवजीके। नृत्यारम्भे=ताण्डवनृत्य शुरू होनेपर। प्रतिनवजवापुष्परक्तं=तत्कालखिले जवा-कुसुम-सी लाल। सान्ध्यंतेजः=सायंकालीन कान्तिको। दधानः=धारण करता हुआ। उच्चैर्भुजतरुवनं=ऊंचे भुजारूप वृक्षोंके समूहमें। मण्डलेनाभिलीनः=वृत्त (गोल) रूपसे व्याप्त हुआ। भवान्याः=पार्वतीका। शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्=भय शान्त हो जानेके कारण निश्चल नेत्रोंसे। दृष्टभक्तिः=देखी गई है भक्ति जिसकी (ऐसा)। आर्द्रनागाजिनेच्छाम्=गीले हाथीके चर्मकी इच्छाको। हर=दूर कर देना।

भावार्थ—सायंकालकी पूजाके बाद जब शिवजी ताण्डव प्रारम्भ करते हुए वृक्षोंके समान ऊँची अपनी भुजाओंको ऊपर उठायेंगे, तब तुम जवाकुसुम जैसी लाल-लाल सान्ध्यशोभा धारणकरके वृत्ताकार होकर उनकी भुजाओंमें घिर जाना। भय दूर हो जानेसे पार्वतीजी निश्चल नेत्रोंसे तुम्हारी ओर देखेंगी और इस प्रकार तुम शिवजीकी, तत्काल मारे हुऐ गजासुरके खूनचूते चर्मको ओढ़नेकी इच्छाको, पूरी कर देना।

विशेष—"मण्डलेनाभिलीनः" का तत्पर्य है नाचनेमें घुमा-घुमाकर वे हाथ इधर-उधर करेंगे उसी क्रमसे तुमभी उनकी भुजाओंके चारों ओर घिर जाना। मल्लिनाथ आदि कई टीकाकारोंने 'जपापुष्परक्तं' पाठ माना है, वस्तुतः यहाँ जवापुष्प ही पाठ है। जवाकुसुम अड़हुलका नाम है, जो लाल होता है और जपा जाईका नाम है जिसका फूल सफेद होता है। गजासुरको मारकर शिवजीने उसके रुधिराक्त चर्मको ओढ़कर ताण्डवनृत्य किया था और उनकी उस विकरालतासे पार्वतीजी डर गयी थीं। यहाँ यक्ष मेघसे कहता है कि तुम नृत्यके समय गजाजिनकी भाँति उनकी भुजाओंमें होजाओगे तो पार्वतीका भय शान्त हो जायगा और वे भक्त समझकर प्रेमसे तुम्हारी ओर देखेंगी। 'दृष्ट-भक्तिः' यह प्रयोग पाणिनीय व्याकरणके अनुसार नहीं बनसकता, 'स्त्रियाः पुंवद्' सूत्रसे दृष्टाको पुंवद्भाव नहीं होगा, क्योंकि भक्ति शब्द प्रियमेंदि आता है। अतः मल्लिनाथने दृष्टं (वस्तु) भक्तिर्यस्य ऐसा विग्रह कर इसे सिद्ध

किया है। किन्तु हमारे विचारसे कालिदास जैसे महाकविके प्रयोगमें इस प्रकार क्लिष्ट कल्पना करना उचित नहीं, जबकि उन्होंने और भी कई ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया है जो पाणिनिके नियमानुसार उस रूपमें नहीं बन सकते ॥ ४० ॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मास्म भूर्विक्लवास्ताः ॥४१॥

इत्थं महाकालनाथस्य सेवाप्रकारमभिधाय पुनरपि नगरसंचारप्रकारमाह—गच्छन्तीनामिति ॥ तत्रोज्जयिन्यां नक्तं रात्रौ रमणवसतिं प्रियभवनं प्रति गच्छन्तीनां योषिताम् । अभिसारिकाणामित्यर्थः । सूचिभिर्भेद्यैः राजमार्गे कनकस्य निकषो निकष्यत इति व्युत्पत्त्या निकष उपलगतरेखा तस्येव स्निग्धं तेजो यस्यास्तया । "स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे रम्ये क्लीवे च तेजसि" इति शब्दार्णवे । सुदाम्नाद्रिणैकदिक्सौदामनी विद्युत् । "तेनैकदिक्" इत्यण्प्रत्ययः । तयोर्वीं मार्गं दर्शय । किं च तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां वृष्टिगर्जिताभ्यां मुखरः शब्दायमानो मा स्म भूः । कुतः । ता योषितो विक्लवा भीरवः । ततो वृष्टिगर्जिते न कार्ये इत्यर्थः । नात्र तोयोत्सर्गसहितं स्तनितमिति विग्रहः । विशिष्टस्येव केवलस्तनितस्याप्यनिष्टत्वात् । न च द्वन्द्वपक्षेऽल्पाच्तरपूर्वनिपातशास्त्रविरोधः । "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति सूत्र एव विपरीतनिर्देशेन पूर्वनिपातशास्त्रस्यानित्यत्वज्ञापनादिति ॥४१॥

पदार्थ—तत्र=वहाँ । नक्तं=रात्रिमें । रमणवसतिं=प्रेमियोंके घरोंको । गच्छन्तीनां=जाती हुई । योषितां=स्त्रियोंके । सूचिभेद्यैस्तमोभिः=घने अन्धकार से । रुद्धालोके=जिनका प्रकाश अवरुद्ध होगया है ऐसे । नरपतिपथे=राजमार्गमें । कनकनिकषस्निग्धया=कसौटीपर चमकती सोनेकी रेखाके समान । सौदामन्या=बिजलीकी चमकसे । उर्वीं दर्शय=भूमि दिखाओ । तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः=जल बरसाने और गरजनेसे मुखर (दुर्जन) । मास्मभूः=मत होना । ताः=वे । विक्लवाः=डरती हैं ।

भावार्थ—उस उज्जयिनीमें रातको अपने-अपने प्रेमियोंके घरोंको जाती हुई रमणियोंको घने अन्धकारसे राजमार्गके ढँक जानेपर कुछ न दीखपड़ेगा, अतः तुम कसौटीपर की चमकती हुई स्वर्णरेखाके समान बिजलीकी रेखा चमकाकर उन्हें मार्ग दिखा देना, किन्तु गरजना और बरसना मत, क्योंकि वे भीरु होती हैं अथवा कामके कारण व्यग्र हुई वे डर जायँगी।

टिप्पणी—सूचिभेद्य—इतना गाढ़ा कि जिसमें सुई भी न गड़ सके, औपचारिकधर्म है। "मास्मभूः"के स्थानमें 'मा च भूः' पाठ कुछ टीकाकारोंने किया है जो उपयुक्त भी लगता है। च समुच्चयार्थक हो जायगा और त्वं "मुखरः माभूः ताश्च विक्लवाः माभूवन्" यह अर्थ हो जायगा ॥४१॥

तां कस्याश्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥४२॥

तामिति ॥ चिरं विलसनात् स्फुरणात् खिन्न विद्युदेव कलत्रं यस्य स भवान् सुप्ताः पारावताः कलरवा यस्यां तस्याम् । विविक्तायामित्यर्थः। "पारावतः कलरवः कपोतः" इत्यमरः। जनसंचारस्तत्रासंभावित एवेति भावः। कस्याश्चिद्भवनवलभौ। गृहाच्छादनोपरिभाग इत्यर्थः। "आच्छादनं स्याद्वलभी गृहाणाम्" इति हलायुधः। तां रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे सति उदिते सतीत्यर्थः। पुनरप्यध्वशेषं वाहयेः। तथाहि। सुहृदां मित्राणामभ्युपेताङ्गीकृतार्थस्य प्रयोजनस्य कृत्या क्रिया यैस्ते। अभ्युपेतसुहृदर्था इत्यर्थः। सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः। "कृत्या क्रियादेवतयोः कार्ये स्त्री कुपिते त्रिषु" इति यादवः। "कृञः श च" इति चकारात्क्यप्। न मन्दायन्ते खलु न मन्दा भवन्ति हि। न विलम्बन्त इत्यर्थः। लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्" इति वा क्यष्। "वा क्यषः" इत्यात्मनेपदम् ॥ ४२ ॥

पदार्थ—चिरविलसनात्=बहुत देरतक विलास करनेसे (चमकनेसे), खिन्नविद्युत्कलत्रः=थकगई है विद्युत्रूपा स्त्री जिसकी ऐसे। भवान्=आप

सुप्तपारावतायां=सो गये हैं कबूतर जिसमें, ऐसी। कस्याञ्चित्=किसी। भवनवलभौ=महलकी छतपर। तां रात्रिं नीत्वा=उस रातको विताकर। सूर्ये दृष्टे=सूर्योदय होनेपर। पुनरपि=फिर भी। अध्वशेषं=अवशिष्ट मार्गको। वाहयेत्=पार करना। सुहृदां=मित्रोंके। अभ्युपेतार्थकृत्याः=स्वीकार किया है प्रयोजन सिद्ध करना जिन्होंने, (ऐसे)। न खलु=कभी नहीं। मन्दायन्ते= शिथिल होते हैं।

भावार्थ—बहुत काल तक चमकनेसे तुम्हारी स्त्री बिजली थक जायगी. अतः किसी महलकी सुनसान छतपर, जहाँकि कबूतर भी सो गये हों, तुम उस रातको विताकर सूर्योदय होते ही फिर आगेका मार्ग पूरा करने चल देना। क्योंकि मित्रोंके कार्यसाधनको जिन्होंने अङ्गीकार करलिया वे व्यक्ति शिथिलता नहीं करते।

टिप्पणी—'वलभी' छतके उस मुंडेरे को कहते हैं जिसके छिद्रोंमें रातको कबूतर आदि पक्षी आराम करते हैं। इससे उज्जयिनीके भवनोंकी विशालता और उन्नतता अभिव्यक्त होती है।।४२।।

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्रं कमलवदनात् सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥४३॥

तस्मिन्निति ॥ तस्मिन् काले पूर्वोक्ते सूर्योदयकाले प्रणयिभिः प्रियतमैः खण्डितानां योषितां नायिकाविशेषाणाम्। "ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्या- कषायिता" इति दशरूपके। नयनसलिलं शान्तिं नेयं नेतव्यम्। नयतिर्द्वि- कर्मकः। अतो हेतोर्भानोर्वर्त्माशु शीघ्रं त्यज। तस्यावरको मा भूरित्यर्थः। विपक्षेऽनिष्टमाचष्टे–सोऽपि भानुः नलान्यम्बुजानि यस्याः सन्तीति नलिनी पद्मिनी। तृणेऽम्बुजे नलं ना तु राज्ञि नाले तु न स्त्रियाम्" इति शब्दार्णवे। तस्याः स्वकान्तायाः कमलं स्वकुसुममेव वदनं तस्मात्प्रालेयं हिममेवास्रमश्रु हर्तुं शमयितुं प्रत्यावृत्तः प्रत्यागतः। नलिन्याश्च भर्तुर्भानोर्देशान्तरे नलिन्य-

न्तरगमनात्खण्डितात्वमित्याशयः। ततस्त्वयि। करानंशून् रुणद्धीति कररुत्। क्विप्। तस्मिन् कररुधि सति। हस्तरोधिनि सतीति च गम्यते। "बलिहस्तांशवः कराः" इत्यमरः। अनल्पाभ्यसूयोऽधिकविद्वेषः स्यात्। प्रायेणेच्छाविशेषविघाताद् द्वेषो रोषविशेषश्च कामिनां भवतीति भावः। किं च "आत्मानं चार्कमीशानं विष्णुं वा द्वेष्टि यो जनः। श्रेयांसि तस्य नश्यन्ति रौरवं च भवेद्ध्रुवम्।" इति निषेधात्कार्यहानिर्भविष्यतीति ध्वनिः ॥४३॥

पदार्थ—तस्मिन्काले=उससमय। प्रणयिभिः=प्रेमियोंद्वारा। खण्डितानां योषिताम्=खण्डिता नायिकाओंके। नयनसलिलं=आँसू। शान्ति नेयम्=पोंछे जाने चाहिये। अतः=इसलिये। आशु=शीघ्र। भानोः वर्त्म=सूर्यके मार्गको। त्यज=छोड़देना। सः अपि=वह भी। नलिन्याः=पद्मिनीके। कमलवदनात्=कमलरूप मुखसे। प्रालेयास्रं=ओसरूप आँसुओंको। हर्तुं=हटानेके लिये। प्रत्यावृत्तः=लौटता हुआ। कररुधि=किरणरूप हाथोंको रोकनेवाले। त्वयि=तुमपर। अनल्पाभ्यसूयः स्यात्=अत्यन्त ईर्ष्यावाला होगा।

भावार्थ—रात अन्यत्र वितानेवाले प्रेमियोंको भी सूर्योदयके बाद उन विरहिणी नायिकाओंके आँसू पोंछने होते हैं जो प्रतीक्षामें व्याकुल हैं। अतः तुम शीघ्र ही सूर्यके मार्गसे हट जाना अर्थात् उसे ढकदेना, क्योंकि वह भी रात कहीं विताकर प्रातः पद्मिनीके कमलरूप आँसू मिटाने लौट रहा है। यदि तुम उसके करों (किरणों या हाथों)को रोकोगे तो वह तुमपर अत्यन्त रुष्ट होगा।

टिप्पणी—नायिकाओंके आठ भेदोंमें "खण्डिता" भी एक है। इसका लक्षण भरतने इस प्रकार दिया है—"निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्गः। यस्याः कुतोऽपि गृहमेति पतिः प्रभाते सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः ॥" उक्त श्लोकके रूपकसे प्रतीत होता है कि यह नायिका अत्यन्त मुग्धा है और यह नायक अतिपटु, अन्यथा केवल आँसू पोंछनेसे काम नहीं चलता ॥४३॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।

तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥४४॥

गम्भीराया इति ॥ गम्भीरा नाम सरित्। उदात्तनायिका च ध्वन्यते। तस्याः प्रसन्नेऽनुरक्तत्वाद्दोषरहिते चेतसीव प्रसन्नेऽतिनिर्मले पयसि। प्रकृत्या स्वभावेनैव सुभगः सुन्दरः। "सुन्दरोऽधिकभाग्ये च दुर्दिनेतरवासरे। तुरीयांशे श्रीमति च सुभगः" इति शब्दार्णवे। ते तव छाया चासावात्मा च। सोऽपि प्रतिविम्बशरीरं च प्रवेशं लप्स्यते। अपिशब्दात्प्रवेशमनिच्छोरपीति भावः। तस्माच्छायाद्वारापि प्रवेशावश्यम्भावित्वादस्या गम्भीरायाः कुमुदवद्विशदानि धवलानि चटुलानि शीघ्राणि शफराणां मीनानामुद्वर्तनान्युल्लुण्ठनान्येव प्रेक्षितान्यवलोकनानि। "त्रिषु स्याच्चटुलं शीघ्रम्" इति विश्वः। एतावदेव गम्भीराया अनुरागलिङ्गम्। धैर्याद्धाष्टर्यात्। वैयात्यादिति यावत्। मोघीकर्तुं। विफलीकर्तुं नार्हसि। नानुरक्ता। विप्रलब्धव्येत्यर्थः। धूर्तलक्षणं तु—"क्लिश्नाति नित्यं गमिता कामिनीमिति सुन्दरः। उपैत्यरक्तां यत्नेन रक्तां धूर्तो विमुञ्चति" ॥ इति ॥ ४४ ॥

पदार्थ—गम्भीरायाः सरितः=गम्भीरा नदीके। प्रसन्ने चेतसि इव=प्रसन्न मनके समान। पयसि=जलमें। प्रकृतिसुभगः=स्वभावतः सुन्दर। ते=तुम्हारा। छायात्मा अपि=छायारूप देह भी। प्रवेशं लप्स्यते=प्रवेश पा जायगा। तस्मात्=इसलिये। त्वं=तुम। अस्याः=इसके। कुमुदविशदानि=कुमुदके समान विकसित। चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि=चञ्चल मछलियोंके उछलने रूप चितवनों को। मोघीकर्तुं=धैर्यसे च्युतकरनेके। न अर्हसि=योग्य नहीं हो।

भावार्थ—किसी गम्भीर स्वभाववाली नायिकाके निर्मल चित्तमें जिस प्रकार सुन्दर नायकका प्रतिबिम्ब पैठ जाता है, उसी प्रकार इस गम्भीरा नामकी नदीके निर्मल जलमें तुम्हारी स्वभावतः सुन्दर छाया प्रवेश कर जायगी। इसलिये जैसे हृदयस्थ वह सुन्दर नायक उस नायिकाके कुमुदकी तरह विकसित नयनोंकी चंचल चितवनोंको व्यर्थ नहीं होने देता इसी प्रकार तुम भी शुभ्र और चंचल इन मछलियोंकी उछालोंको व्यर्थ न जाने देना।

टिप्पणी—"मेघकी छाया जलमें पड़ते ही मछलियाँ उछलने लगती हैं और यह उछलना ही उनके आधान-कालका द्योतक है" ऐसी लोकप्रसिद्धि है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि शफर नामक एक विशेष जातिकी मछलियोंका ही यह गुण है। इस पद्यसे यह भी ध्वनित होता है कि जैसे छायापुरुष सिद्ध करलेनेपर व्यक्तिकी कोई कामना निष्फल नहीं होती उसी प्रकार इनकी भी कामना तुम्हें व्यर्थ नहीं करनी चाहिये। गम्भीरा वह नायिका है जिसके रोष या तुष्टिका पता नहीं चलता। प्रस्तुत पद्यमें गम्भीरा संभवतः मालवाकी कोई छोटी नदी है जो चम्बलमें जाकर मिलती है ।।४४।।

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४५॥

तस्या इति ॥ हे सखे, प्राप्ता वानीरशाखा वेतसशाखा येन तत्तथोक्तमतएव किञ्चिदीषत्करधृतं हस्तावलम्बितमिव स्थितम् । मुक्तस्त्यक्तो रोधस्तटमेव नितम्बः कटिर्येन तत्तथोक्तम् । "नितम्बः पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्रिकटके कटौ" इति यादवः । नीलं कृष्णवर्णं तस्या गम्भीरायाः सलिलमेव वसनं नीत्वापनीय । प्रस्थानसमये प्रेयसीवसनग्रहणं विरहतापविनोदनार्थमिति प्रसिद्धम् । लम्बमानस्य पीतसलिलभाराल्लम्बमानस्य । अन्यत्र जघनारूढस्य ते तव प्रस्थानं प्रयाणं कथमपि कृच्छ्रेण भावि । कृच्छ्रत्वे हेतुमाह—ज्ञातेति । ज्ञातास्वादोऽनुभूतरसः कः पुमान् विवृतं प्रकटीकृतं जघनं कटिस्तत्पूर्वभागो वा यस्यास्ताम् "जघनं स्यात्कटौ पूर्वश्रोणिभागापरांशयोः" इति यादवः । विहातुं त्यक्तुं समर्थः । न कोऽपीत्यर्थः ॥ ४५ ॥

पदार्थ—सखे=मित्र ! प्राप्तवानीरशाखं=वानीर (वेत) की शाखायें जिसे छूरही हैं। किञ्चित् करधृतमिव=कुछ-कुछ हाथसे पकड़े हुए जैसे । मुक्त-तट रूप नितम्बोंको जिसने छोड़ दिया है, ऐसे । नीलं=नीले । तस्याः=उसके

सलिलवसनं=जलरूपवस्त्रको। नीत्वा=हटाकर। लम्बमानस्य=लम्बे हुए। ते=तुम्हारा। प्रस्थानं=गमन। कथमपि=बड़ी कठिनतासे। भावि=होगा। (क्योंकि) ज्ञातास्वादः=जो अनुभव कर चुका है, ऐसा। कः=कौन। विवृतजघनां=खुली जांघोंवालीको। विहातुं समर्थः=छोड़नेमें समर्थ है।

भावार्थ—कुछ-कुछ हाथसे पकड़े हुएकी तरह बेंतकी शाखायें जिसे छू रही हैं, नितम्बरूप तटको जिसने मुक्त करदिया है ऐसे और नीले रंगवाले, उस गम्भीरा-नदीके जलरूप वस्त्रको हटाकर पसरे हुए नायककी भाँति विलम्ब करते हुए तुम आगे बड़ी कठिनतासे जा सकोगे। क्योंकि जिसे सुरतसुखका अनुभव है वह कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो उघड़ी जंघावाली (नायिका)को छोड़ सके।

टिप्पणी—जैसे कोई नायिका प्रियतम द्वारा नीवीबन्ध खोलनेपर अत्यन्त लज्जालु होनेसे वस्त्रोंको हाथसे पकड़ी रहती हुई भी ढीला करदेती है और उन्मुक्त नितम्बोंसे वस्त्र हटाकर नायक स्वेच्छया संभोग करता है उसी प्रकार वानीर'शाखारूप करोंसे नीले सलिलरूप वस्त्रको छूती हुई भी गम्भीराके तटरूप नितम्बोंके उन्मुक्त होजानेसे मेघ, सलिलरूप वस्त्रको हटा देगा अर्थात् उसके ऊपर लम्बा होकर जल लेलेगा, यही तात्पर्य है। यह नायिका विशेष अनुरक्ता है। तुलना०—"नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥" भरतमल्लिक और विल्सनने "पुलिनजघनां" तथा वल्लभ आदिने "विपुलजघनां" पाठ दिया है। किन्तु श्लोकके भावानुसार अश्लील होनेपर भी "विवृतजघनाम्" पाठ ही उपयुक्त प्रतीत होता है ॥४५॥

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४६॥

त्वदिति ॥ त्वन्निष्यन्देन तव वृष्ट्योच्छ्वसिताया उपबृंहिताया वसुधाया भूमेर्गन्धस्य संपर्केण रम्यः सुरभिरित्यर्थः। स्रोतःशब्देनेन्द्रिय-

वाचिना तद्विशेषो घ्राणं लक्ष्यते । "स्रोतोम्बुवेगेन्द्रिययोः" इत्यमरः । स्रोतो-रन्ध्रेषु नासाग्रकुहरेषु यद्ध्वनितं शब्दस्तेन सुभगं यथा तथा दन्तिभिर्गजैः पीयमानः वसुधागन्धलोभादाघ्रायमाण इत्यर्थः । अनेन मान्द्यमुच्यते । काननेषु वनेषूदुम्बराणां जन्तुफलानां "उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः" इत्यमरः । परिणमयिता परिपाकयिता । 'मितां ह्रस्वः" इति ह्रस्वः । शीतो वायुः । देवपूर्वं गिरिं देवगिरिमित्यर्थः । उपजिगमिषोरुपगन्तुमिच्छोः । गमेः सन्नन्तादुप्रत्ययः । ते तव नीचैः शनैर्वास्यति । त्वां वीजयिष्यतीत्यर्थः । सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी । "देवपूर्वं गिरिम्" इत्यत्र देवपूर्वत्वं गिरिशब्दस्य । न तु संज्ञिनस्तदर्थस्येति । संज्ञायाः संज्ञित्वाभावादवाच्यवचनं दोषमाहुरा-लङ्कारिकाः । तदुक्तमेकावल्याम्—'यदवाच्यस्य वचनमवाच्यवचनं हि तत्' इति । समाधानं तु देवशब्दविशेषितेन शब्दपरेण । मेघोपगमनयोग्यदेवगिरि-र्लक्ष्यत इति कथंचित्सम्पाद्यम् ॥४६॥

पदार्थ—त्वन्निष्यन्दो०=तुम्हारे बरसनेसे उछ्वसित भूमिकी सोंधी-सोंधी गन्धके संसर्गसे रमणीय । दन्तिभिः=हाथियोंद्वारा । स्रोतोरन्ध्र०=नाकके छिद्रोंमें साँय-साँयकी सुन्दर ध्वनिसे युक्त । पीयमानः=पियाजाता हुआ । काननोदुम्ब-राणां=जंगली उदुम्बरोंको । परिणमयिता=पकानेवाला । शीतो वायुः=शीतल वायु । देवपूर्वं गिरिं=देव शब्द है पूर्वमें जिसके ऐसे गिरिको, अर्थात् देवगिरिको। उपजिगमिषोः=जानेके इच्छुक । ते=तुम्हारे । नीचैः वास्यति=नीचे बहेगा ।

भावार्थ—तुम्हारे बरसनेपर बाफ निकलती हुई भूमिकी गन्धसे रमणीय, सूंडोंके छिद्रोंसे साँय-साँयकी सुन्दर ध्वनि करते हुए हाथी जिसका उपभोग कर रहे हैं ऐसा, और जंगली गूलरोंको पकानेवाला शीतलवायु तब तुम्हारे नीचे-नीचे बहेगा जब कि तुम देवगिरि की ओर जाना चाहोगे ।

टिप्पणी—देवगिरि–संभवतः देवगढ़से अभिप्राय है, जोकि चम्बलके दक्षिणकी ओर मालवाके मध्यभागमें स्थित है । यहीं कार्तिकेयका मन्दिर है। देवगढ़ ग्राम झाँसीसे दक्षिण-पश्चिम लगभग ६० मील पर पड़ता है । यद्यपि मल्लिनाथने एकावलीका प्रमाण देकर "देवपूर्वं गिरिम्" में अवाच्यवाचक दोष माना है किन्तु संस्कृत साहित्यमें इस प्रकारके प्रयोग बहुधा प्रचलित हैं ॥४६॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥ ४७ ॥

तत्रेति ॥ तत्र देवगिरौ नियता वसतिर्यस्य तम्। नित्यसन्निहितमित्यर्थः। पुरा किल तारकाख्यासुरविजयसन्तुष्टः सुरप्रार्थनावशाद्भगवान्भवानीनन्दनः स्कन्दो नित्यमहमिह सह शिवाभ्यां वसामीत्युक्त्वा तत्र वसतीति प्रसिद्धिः। स्कन्दं कुमारं स्वामिनम्। पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः। पुष्पमेघीकृतात्मा कामरूपत्वात्पुष्पवर्षुकमेघीकृतविग्रहः सन् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः पुष्पासारैः पुष्पसम्पातैः। "धारासम्पात आसारः" इत्यमरः। भवान् स्वयमेव स्नपयत्वभिषिञ्चतु। स्वयं पूजाया उत्तमत्वादिति भावः। तथा च शम्भुरहस्ये—"स्वयं यजति चेद्देवमुत्तमा सोदरात्मजैः। मध्यमा या यजेद्भृत्यैरधमा याजनक्रिया।" इति। स्कन्दस्य पूज्यत्वसमर्थनेनार्थेनार्थान्तरं न्यस्यति—रक्षेति। तद्भगवान्। स्कन्द इत्यर्थः। विधेयप्राधान्यान्नपुंसकनिर्देशः। वासवस्येमा वासव्यः। "तस्येदम्" इत्यण्। तासां वासवीनामैन्द्रीणां चमूनां सेनानां रक्षाहेतो रक्षया कारणेन। रक्षार्थमित्यर्थः। "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इति षष्ठी। नवशशिभृता भगवता चन्द्रशेखरेण। वहतीति वहः। पचाद्यच्। हुतस्य वहो हुतवहो वह्निस्तस्य मुखे सम्भृतं सञ्चितम्। आदित्यमतिक्रान्तमत्यादित्यम्। "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इति समासः। तेजो हि साक्षाद्भगवतो हरस्यैव मूर्त्यन्तरमित्यर्थः। अतः पूज्यमिति भावः। मुखग्रहणं तु शुद्धत्वसूचनार्थम्। तदुक्तं शम्भुरहस्ये—"गवां पश्चाद्द्विजस्याङ्घ्रियोगिनां हृत्कवेर्वचः। परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्रीवह्निवाजिनाम् ॥" इति ॥४७॥

पदार्थ—तत्र = वहाँ। नियतवसतिं = निश्चितरूपसे रहनेवाले। स्कन्दं = कार्तिकेयको। भवान् = आप। पुष्पमेघीकृतात्मा = पुष्पमेघ बनकर। व्योमगङ्गाजलार्द्रैः = आकाशगङ्गाके जलकणोंसे भींगे हुए। पुष्पासारैः = फूलोंकी

तीव्रवर्षैः । स्नपयतु=नहलावें । हि=क्योंकि । तत्=वह (स्कन्दरूप), अत्यादित्यं=सूर्यसे प्रबल । तेजः=तेज है । (जिसे) नवशशिभृता=द्वितीयाके चन्द्रमाको धारण करनेवाले शिवजीने । वासवीनां चमूनां=इन्द्रकी सेनाओंकी, रक्षाहेतोः=रक्षाके लिये । हुतवहमुखे=अग्निके मुखमें । संभृतम्=एकत्र किया था।

भावार्थ—उस देवगिरिमें नित्य वास करनेवाले कार्तिकेयको पुष्पमेघ बनकर तुम स्वर्गङ्गाके जलसे प्रोक्षित दिव्य पुष्पोंकी मूसलधार वर्षाकरके स्नान कराना । क्योंकि वह स्कन्दरूप तेज सूर्यसे भी प्रबल है, जिसे भगवान् चन्द्रशेखरने देवसेनाकी रक्षाके लिये अग्निके मुखमें स्थापित किया था ।

टिप्पणी—इससे पूर्व छठे श्लोकमें "जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः" कह आये हैं, अतः मेघकी कामरूपता यहाँ प्रकट की गई है। "प्रायः कुन्देन्दुसदृशप्रसूनचयवर्षणः । पयोवहोभवेद्यस्तु पुष्पमेघः स उच्यते ॥ इति वलः ॥"

स्कन्दपर महाकविकी कितनी आस्था है इसका जाज्वल्यमान उदाहरण उनकी रचना "कुमारसंभव" है । मेघको जिस इन्द्रका प्रधान कर्मचारी कहा गया है उसी इन्द्रकी सेनाओंकी रक्षाके लिये भगवान् शिवने स्कन्दको उत्पन्न किया है अतः स्कन्दकी पूजा करना मेघका कर्तव्य हो जाता है ॥४७॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥ ४८ ॥

ज्योतिरिति ॥ ज्योतिषस्तेजसो लेखा राजयस्तासां वलयं मण्डलं यस्यास्तीति तथोक्तम् । गलितं भ्रष्टम् । न तु लौल्यात्स्वयं छिन्नमिति भावः। यस्य मयूरस्य बर्हं पिच्छम् । "पिच्छबर्हे नपुंसके" इत्यमरः । भवानी गौरी। पुत्रप्रेम्णा पुत्रस्नेहेन कुवलयस्य दलं पत्रं तत्प्रापि तद्योगि यथा तथा कर्णे करोति । दलेन सह धारयतीत्यर्थः। यद्वा कुवलयस्य दलप्रापि दलभाजि दलार्हे कर्णे करोति । क्विबन्तात्सप्तमी । दलं परिहृत्य तत्स्थाने बर्हं धत्त

इत्यर्थः । नाथस्तु "कुवलयदलक्षेपि" इति पाठमनुसृत्य "क्षेपो निन्दापसारणं वा" इति व्याख्यातवान् । **हरशशिरुचा** हरशिरश्चन्द्रिकया **धौतापाङ्गं** स्वतोऽपि शौक्ल्यादतिधवलितनेत्रान्तम् । "अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ" इत्यमरः । पावकस्याग्नेरपत्यं **पावकिः** । "अत इञ्" इति इञ् । तस्य **तं** पूर्वोक्तं **मयूरं** पश्चात्पुष्पाभिषेचनानन्तरमद्रेर्देवगिरेः । कर्तुः । **ग्रहणेन** गुहासंक्रमणेन **गुरुभिः** । प्रतिध्वानमहद्भिरित्यर्थः । **गर्जितैर्नर्तयेथा** नृत्यं कारय । मार्दङ्गिकभावेन भगवन्तं कुमारमुपास्वेति भावः । "नर्तयेथाः" इत्यत्र "अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्" इत्यात्मनेपदापवादः "निगरणचलनार्थेभ्यश्च" इति परस्मैपदं न भवति । तस्य "न पादम्याङ्माङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः" इति प्रतिषेधात् ॥ ४८ ॥

पदार्थ—पश्चात्=अभिषेकके बाद । ज्योतिर्लेखावलयि=चमकती रेखाओंके मण्डलसे युक्त । गलितं = स्वयं गिरे हुए । यस्य बर्हं = जिसके पंखोंको । भवानी = पार्वतीजी । पुत्रप्रेम्णा = पुत्रस्नेहसे । कुवलयदलप्रापि = कमलकी पंखुड़ी रखे जानेवाले । कर्णे=कानमें । करोति = रखती हैं । हरशशिरुचा = शिवजीके चन्द्रमाकी चाँदनीसे । धौतापाङ्गं = श्वेत होगई हैं कनखियाँ जिसकी ऐसे । तं = उस । पावकेः = कार्तिकेयके । मयूरं = मोरको । अद्रिग्रहणगुरुभिः = पर्वतकी प्रतिध्वनिसे बढ़े हुए । गर्जितैः = गर्जनोंसे । नर्तयेथाः = नाचना ।

भावार्थ—पुष्पाभिषेकके बाद तुम ऐसी गर्जनाओंसे, जो कि देवगिरिसे टकराकर और भी बड़ी होगई हों, कार्तिकेयके उस मोरके नचाना जिसके मंडलाकार चमकती रेखाओंवाले, स्वयं गिरे हुए पंखोंको पार्वतीजी पुत्रस्नेहके कारण अपने उस कानमें लगाती हैं जिसमें कुवलयदल रखे जाते थे ।

टिप्पणी—कार्तिकेयकी उत्पत्तिके विषयमें विख्यात है कि शिवजीका तेज स्कन्दित (स्खलित) हुआ जिसे उन्होंने अग्निके मुखमें रख दिया । वह उसे सहन न कर सका तो उसने गंगामें डालदिया और गंगाने अपनी लहरोंसे शरवण (काँसकी झाड़ियों)में फेंकदिया जहाँ षट्कृत्तिकाओंने उन्हें प्राप्त किया । इसीलिये उनके नाम स्कन्द, पावकि, अग्निभू, शरजन्मा और कार्तिकेय आदि पड़े । यह कथा तारकासुर-वध प्रसङ्गमें शिवपुराणमें प्रसिद्ध है ।

बादलोंकी गर्जनासे मोर नाचने लगते हैं ऐसी कविसमयप्रसिद्धि है। देखिये—साहित्य दर्पण ७—"मेघध्वानेषु नृत्यं भवति च शिखिनां ।" ॥४८॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिस्त्यक्तमार्गः ।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४९॥

आराध्येति ॥ एनं पूर्वोक्तं शरा वाणतृणानि । 'शरो वाणे वाणतृणे' इति शब्दार्णवे । तेषां वनं शरवणम् । "प्रतिरन्तःशरेक्षु—" इत्यादिना णत्वम् । तत्र भवो जन्म यस्य तं शरवणभवम् । "अवर्ज्यो वहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः" इति वामनः । अवर्ज्योऽगतिकत्वादाश्रयणीय इत्यर्थः। देवं स्कन्दम् । "शरजन्मा षडाननः" इत्यमरः । आराध्योपास्य वीणिभिर्वीणावद्भिः । व्रीह्यादित्वादिनिः । सिद्धद्वन्द्वैः सिद्धमिथुनैः । भगवन्तं स्कन्दमुपवीणयितुमागतैरिति भावः । जलकणभयात् । जलसेकस्य वीणाक्वणनप्रतिवन्धकत्वादिति भावः । मुक्तमार्गस्त्यक्तवर्त्मा सन्नुल्लङ्घिताध्वा कियन्तमध्वानं गत इत्यर्थः । सुरभितनयानां गवामालम्भेन संज्ञपनेन जायत इति तथोक्ताम् । भुवि लोके स्रोतोमूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणतां रूपविशेषमापन्नां रन्तिदेवस्य दशपुरपतेर्महाराजस्य कीर्तिम् । चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः। मानयिष्यन् सत्कारयिष्यन् व्यालम्बेथाः । आलम्ब्यावतरेरित्यर्थः । पुरा किल राज्ञो रन्तिदेवस्य गवालम्भेष्वेकत्र संभृताद्रक्तनिष्यन्दाच्चर्मराशेः काचिन्नदी सस्यन्दे । सा चर्मण्वतीत्याख्यायत इति ॥ ४९ ॥

पदार्थ—एनं शरवणभवं देवं = इस शरजन्मा कार्तिकेयकी । आराध्य = आराधना करके । वीणिभिः = वीणाओंवाले । सिद्धद्वन्द्वैः = सिद्धमिथुनोंसे । जलकणभयात्=पानी वरसनेके भयसे । त्यक्तमार्गः=छोड़ा गया है मार्ग जिसका, ऐसा । उल्लङ्घिताध्वा = मार्गको लांघकर । सुरभितनयालम्भजाम् = गौओंके आलम्भनसे उत्पन्न । स्रोतोमूर्त्या = नदी रूपमें । भुवि परिणतां=भूमि मेंबहती

हुई। रन्तिदेवस्य कीर्तिम्=राजा रन्तिदेवकी कीर्तिको। मानयिष्यन्=सत्कार करता हुआ। व्यालम्बेथाः=नीचे लटक जाना।

भावार्थ—सरकण्डोंके वनमें उत्पन्न इस स्कन्ददेवकी आराधना करके तुम आगे बढ़ोगे तो इनकी स्तुति गानेको आये हुए सिद्धोंके जोड़े, पानी बरसनेके भयसे स्वयं तुम्हारे मार्गसे हट जायेंगे। तब सहस्रों गोमेध-यज्ञोंमें गौओंके आलम्भनसे उत्पन्न और पृथ्वीपर नदी रूपमें परिणत हुई राजा रन्तिदेवकी कीर्ति चर्मण्वतीके प्रति सम्मान प्रकट करनेकी इच्छासे नीचे झुकजाना, अर्थात् उससे जल ग्रहण करना।

टिप्पणी—'वीणिभिः' इस विशेषणसे ही स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धोंके जोड़े कार्तिकेयकी स्तुति करनेके लिये आते होंगे और जलके सम्पर्कसे वीणाओंके खराब होनेकी डरसे मार्गसे हट जायँगे।

महाभारतमें कथा प्रसिद्ध है कि दशपुरके राजा रन्तिदेवकी गौएँ स्वर्गकी कामधेनुओंके दिव्यरूपको देखकर राजाके पास गईं और उनसे प्रार्थना की कि आप यज्ञमें हमारा वध करें तो हम भी स्वर्गमें जाकर इसी दिव्यरूपको प्राप्त कर सकेंगी। राजाने उनका अनुरोध स्वीकार कर सहस्रों गोमेध यज्ञ किये। उनमें वध हुई गौओंके चर्मसे पहाड़ जैसा बन गया, उससे जो रक्तकी धारा बही वह ऋषिके प्रतापसे चर्मण्वती नदी होगई और उसमें स्नान करनेसे उतने ही गोमेध-यज्ञों का फल प्राप्त होने लगा ॥४९॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥५०॥

त्वयीति॥ शार्ङ्गिणः कृष्णस्य वर्णस्य कान्तेश्चौरे वर्णचौरे। तत्तुल्यवर्ण इत्यर्थः। त्वयि जलमादातुमवनते सति पृथुमपि दूरत्वात्तनुं सूक्ष्मतया प्रतीयमानं तस्याः सिन्धोश्चर्मण्वत्याख्यायाः प्रवाहम्। गगने गतिर्येषां ते

गगनगतयः खेचराः सिद्धगन्धर्वादयः। अयमपि बहुव्रीहिः पूर्ववज्जन्माद्युत्तर-पदेषु द्रष्टव्यः। नूनं सत्यं दृष्टिरावर्ज्य नियम्यैकमेकयष्टिकं स्थूलो महान्मध्यो मध्यमणीभूत इन्द्रनीलो यस्य तं भुवो भूमेर्मुक्तागुणं मुक्ताहारमिव प्रेक्षिष्यन्ते। अत्रात्यन्तनीलमेघसङ्गतस्य प्रवाहस्य भूकण्ठमुक्तागुणत्वेनोत्प्रेक्ष-णादुत्प्रेक्षैवेयमितीवशब्देन व्यज्यते। निरुक्तकारस्तु "तत्र तत्रोपमा यत्र इव-शब्दस्य दर्शनम्" इतीवशब्ददर्शनादत्राप्युपमैवेति बभ्राम ॥ ५० ॥

पदार्थ—शार्ङ्गिणः=कृष्णके। वर्णचौरे=रंगको चुरानेवाले। त्वयि=तुम्हारे जलमादातुं=जलग्रहणके लिये। अवनते=झुकनेपर। पृथुमपि=विस्तृत भी। दूर-भावात्=दूर होनेसे। तनुं=क्षीणजैसे। तस्याः सिन्धोः प्रवाहम्=उस नदीके प्रवाहको। गगनगतयः=आकाशचारी देवगण। नूनं=निश्चय ही। दृष्टीः आवर्ज्य=आँखोंको दूसरी ओर हटाकर। स्थूलमध्येन्द्रनीलं=विशाल नीलम है बीचमें जिसके, ऐसे। एकं=एकलड़वाले। भुवः मुक्तागुणमिव=पृथ्वीके मुक्ताहार जैसा। प्रेक्षिष्यन्ते=देखेंगे।

भावार्थ—कृष्णके समान श्यामवर्णवाले तुम जब जलग्रहण करने नीचे नदी पर झुकोगे तब आकाशचारी सिद्धगन्धर्व आदि सब ओरसे दृष्टि हटाकर उस चर्मण्वतीके प्रवाहको, जो कि अत्यन्त फैला हुआ होनेपर भी दूरसे पतला-सा दीख रहा है, पृथ्वीके एकलड़वाले ऐसे मुक्ताहार की तरह देखेंगे जिसके मध्यमें बड़ा-सा नीलम लगा हो।

टिप्पणी—भगवान् कृष्ण और मेघका वर्ण समान ही कहा गया है इसीलिये उन्हें घनश्याम कहते हैं। महाकवि कालिदासने मेघको बारबार विष्णुके रूपमें देखा है। कभी—'शार्ङ्गिणो वर्णचौरे' कहा है कभी 'बलिनिय-मनेऽभ्युद्यतविष्णु'। हमारे विचारमें कविको सम्भोगकी जैसी भूमि शिवपार्वतीमें मिली थी वियोगकी वैसी ही रामसीतामें। भलेही उसके विप्रलंभका पात्र यक्ष रहा हो पर कविकी हृत्तंत्रीकी झंकारसे तो—"यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नान-पुण्योदकेषु-रामगिर्याश्रमेषु" और "इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा" यही निकलता है ॥५०॥

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥५१॥

तामिति ॥ तां चर्मण्वतीमुत्तीर्य भ्रुवौ लता इव भ्रूलताः । उपमितसमासः । तासां विभ्रमा विलासाः परिचिता क्लृप्ता येषु तेषां पक्ष्माणि नेत्रलोमानि । "पक्ष्म सूत्रे च सूक्ष्मांशे किञ्जल्के नेत्रलोमनि" इति विश्वः तेषामुत्क्षेपादुन्नमनाद्धेतोः कृष्णाश्च ताः शाराश्च कृष्णशारा नीलशबलाः । "वर्णो वर्णेन" इति समासः । "कृष्णरक्तसिताः शाराः" इति यादवः । ततश्च शारशब्दादेव सिद्धे कार्ष्ण्ये पुनः कृष्णपदोपादानं कार्ष्ण्यप्राधान्यार्थम् । रक्तत्वं तु न विवक्षितमुपमानानुसारात्तत्स्वाभाविकस्य स्त्रीनेत्रेषु सामुद्रिकविरोधादितरस्याप्रसङ्गात् । क्वचिद् भावकथनं तूपपत्तिविषयम् । उपरि विलसन्त्यः कृष्णशाराः प्रभा येषां तेषाम् । कुन्दानि माघ्यकुसुमानि । "माघ्यं कुन्दम्" इत्यमरः । तेषां क्षेप इतस्ततश्चलनं तस्यानुगा अनुसारिणो ये मधुकरास्तेषां श्रियं मुष्णन्तीति तथोक्तानाम् । क्षिप्यमाणकुन्दानुविधायिमधुकरकल्पानामित्यर्थः । दशपुरं रन्तिदेवस्य नगरं तस्य बध्वः स्त्रियः । "वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च" इत्यमरः । तासां नेत्रकौतूहलानां नेत्राभिलाषाणां साभिलाषदृष्टीनामित्यर्थः । आत्मबिम्बं स्वमूर्तिं पात्रीकुर्वन् व्रज गच्छ ॥ ५१ ॥

पदार्थ—ताम् = नदीको । उत्तीर्य = पारकरके । आत्मबिम्बं = अपने देहको । परिचित० = लम्बीलम्बी भौंहोंको मटकानेकी अभ्यस्त । पक्ष्मोत्क्षेपात् = पलक उठानेसे । उपरिविल० = ऊपर शोभा दे रही हैं काली, लाल और श्वेत कान्ति जिनकी, ऐसे । कुन्दक्षेपा० = हिलते-डुलते कुन्दके फूलोंके साथ हिलते हुए भौंरोंकी शोभाको चुरानेवाले । दशपुर० = दशपुरकी स्त्रियोंके नेत्रकौतुकोंका । पात्रीकुर्वन् = विषय बनाते हुए । व्रज = जाओ ।

भावार्थ—चर्मण्वतीको पार करके तुम दशपुरके मार्गसे जाना जहाँकि भौंहें मटकानेकी कलामें अभ्यस्त, पलक ऊपर उठानेसे काली लाल और श्वेत

मिश्रित विचित्र शोभा युक्त, कुन्दके सफेद फूलके साथ हिलते हुए काले भौंरेके समान, दशपुर युवतियोंकी कौतूहलभरी दृष्टि तुमपर पड़ेगी।

टिप्पणी—"कृष्णशारप्रभाणाम्" पाठ प्रायः सभी टीकाकारोंने माना है अतः हमने भी उसीके अनुसार अर्थ किया है किन्तु इस पाठमें अत्यन्त क्लिष्ट कल्पना है जो कालिदास जैसे सहृदय कविके अनुरूप नहीं लगती। हमारे विचारसे "कृष्णासारप्रभाणां" पाठ उचित है। "उपरि विलसन्तः=ऊर्ध्वमुत्पतन्तो ये कृष्णसाराः=मृगास्तेषां प्रभा इव प्रभा येषां ते तथा" अर्थात् पलक उठाते ही ऊपर उछलते हुए मृगोंकी-सी चंचलता जिनमें आजाती है। स्त्रियोंको मृगनयनी इसीलिये कहा जाता है कि उनकी पलकोंमें चौकड़ी-भरते मृगों-सी चपलता रहती है, फिर भ्रूविलासकी अभ्यस्त दशपुरयुवतियोंके विषयमें तो कहना ही क्या है।

दशपुर—संभवतः यह वर्तमान रन्तिपुर है जोकि चम्बलसे कुछ उत्तरकी ओर पड़ता है। कुछ लोग दशोर नामक स्थानको जोकि मालवाके अन्तर्गत मन्दसोर जिलेमें पड़ता है दशपुर कहते हैं। प्राचीन कालमें यह अत्यन्त वैभवपूर्ण नगर था। इसका वर्णन कई स्थलों पर मिलता है॥ ५२॥

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि॥५३॥

ब्रह्मावर्तमिति। अथानन्तरं ब्रह्मावर्तं नाम जनपदं देशम्। अत्र मनुः = "सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।" इति। छायया ऽनातपमण्डलेन प्रविशन्न तु स्वरूपेण। 'पीठक्षेत्राश्रमादीनि परिवृत्यान्यतो व्रजेत्' इति वचनात्। क्षत्रप्रधनपिशुनम्। अद्यापि शिरःकपालादिमत्तया कुरुपाण्डवयुद्धसूचकमित्यर्थः। 'युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्' इत्यमरः। तत्प्रसिद्धं कुरूणामिदं कौरवं क्षेत्रं भजेथाः। कुरुक्षेत्रं व्रजेत्यर्थः। तत्र कुरुक्षेत्रे गाण्डमस्यास्तीति गाण्डीवं धनुर्विशेषः। 'गाण्डी-

जगात्संज्ञायाम्' इति मत्वर्थीयो वप्रत्ययः। 'कपिध्वजस्य गाण्डीवगाण्डिवौ पुंनपुंसकौ'' इत्यमरः। तद्धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वाऽर्जुनः। 'वा संज्ञायाम्' इत्यनङादेशः। सितशरशतैर्निशितबाणसहस्रै राजन्यानां राज्ञां मुखानि धाराणामुदकधाराणां पातैः कमलानि त्वमिवाभ्यवर्षदभिमुखं वृष्टवान्। शरवर्षेण शिरांसि चिच्छेदेत्यर्थः॥ ५२॥

पदार्थ — अथ = इसके बाद। ब्रह्मावर्तं जनपदं = ब्रह्मावर्त नामक देशको। छायया = छायासे। गाहमानः = ढकता हुआ अथवा उसमें प्रवेश करता हुआ। क्षत्रप्रधनपिशुनं = क्षत्रियोंके नाशसूचक। तत् = उस। कौरवं क्षेत्रं = कुरुसम्बन्धी स्थान (कुरुक्षेत्र) को। भजेथाः = प्राप्त करना। यत्र = जहाँ। गाण्डीवधन्वा = अर्जुन। शितशरशतैः = तीक्ष्ण सैकड़ों बाणोंसे। राजन्यानां मुखानि = क्षत्रियोंके शिरोंपर। धारापातैः = मूसलधार गिरनेसे। त्वं = तुम। कमलानि इव = कमलोंपर जैसे। अभ्यवर्षत् = बरसता था।

भावार्थ — दशपुरसे आगे जाकर तुम ब्रह्मावर्त प्रदेशको अपनी छायासे अवगाहित करते हुए क्षत्रियोंके निधन-सूचक उस कुरुक्षेत्रमें पहुँचना, जहाँ गाण्डीवधारी अर्जुनने अपने सैकड़ों तीक्ष्णबाणोंको बरसाकर क्षत्रियोंके मस्तकोंको इस प्रकार काट गिराया था जैसे तुम मूसलधार बरसकर कमलोंको नष्ट कर देते हो।

टिप्पणी — सरस्वती (पंजाबकी एक प्रसिद्ध नदी) और दृषद्वती (घग्घर या राप्ती नामसे प्रसिद्ध) नदीके मध्यका भाग ब्रह्मावर्त कहलाता है। जो हस्तिनापुरसे उत्तर-पश्चिम कुरुक्षेत्र तक है॥५२॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः॥५३॥

हित्वेति ॥ बन्धुप्रीत्या कुरुपाण्डवस्नेहेन । न तु भयेन । समरविमुखः युद्धनिस्पृहः । लाङ्गलमस्यास्तीति लाङ्गली हलधरः । अभिमतरसामभीष्टस्वादां तथा रेवत्याः स्वप्रियाया लोचने एवाङ्कः प्रतिविम्बितत्वाच्चिह्नं यस्यास्तां हालां सुराम् । 'सुरा हलिप्रिया हाला' इत्यमरः । 'अभिप्रयुक्ता देशभाषापदमि'त्यत्र सूत्रे हालेति देशभाषापदमप्यतीव कविप्रयोगात्साधु इत्युदाजहार वामनः । हित्वा त्यक्त्वा । दुस्त्यजामपीति भावः । याः सारस्वतीरपः सिषेवे । हे सौम्य सुभग, त्वं तासां सरस्वत्या नद्या इमाः सारस्वत्यस्तासामभिगमं सेवां कृत्वाऽन्तोऽन्तरात्मनि शुद्धो निर्मलो निर्दोपो भविता । 'ण्वुल्तृचौ' इति तृच् । अपि सद्य एव पूतो भविष्यसीत्यर्थः 'वर्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा' इति वर्तमानप्रत्ययः । वर्णमात्रेण वर्णेन कृष्णः श्यामः । न तु पापेनेत्यर्थः । अन्तःशुद्धिरेव सम्पाद्या न तु वाह्या वहिःशुद्धोऽपि सूतवधप्रायश्चित्तार्थं सारस्वतसलिलसेवी तत्र भगवान्वलभद्र एव निदर्शनम् । अतो भवताऽपि सरस्वती सर्वथा सेवितव्येति भावः ॥५३॥

पदार्थ—बन्धुप्रीत्या = बान्धवों (कौरव-पाण्डवों)के समरविमुखः = युद्धमें न सम्मिलित हुए । लाङ्गली = हलधर (बलदेवजी) । अभिमतरसां = प्रिय है स्वाद जिसका ऐसी । रेवतीलोचनाङ्कां = रेवतीके नयनों जैसे लक्षणों वाली (उनकी तरह उन्मादक) । हालां = सुराको । हित्वा = छोड़कर याः सिषेवे = जिन्हें सेवित करते हैं । तासां सारस्वतीनाम् अपां=उन सरस्वती के जलोंका । अभिगमं कृत्वा = अभिगमन करके । हे सौम्य = हे भद्र ! त्वमपि = तुम भी । अन्तःशुद्धः (सन्) = भीतरसे शुद्ध होकर । वर्णमात्रेण = रंगमात्रसे कृष्णः = काले । भविता = रहोगे ।

भावार्थ—"कौरव पाण्डव दोनों हमारे बन्धु हैं, अतः युद्धमें मैं किसी की हत्या न करूँगा" यह प्रण करके युद्धसे विमुख हुए हलधर बलदेवजी, अत्यन्त प्रिय लगनेवाली और रेवतीके नयनों जैसे लक्षणवाली (उन्मादक) मदिराको छोड़कर जिन जलोंका पान करते हैं, हे सौम्य ! उन सरस्वती नदीके जलोंका अभिगमन करके तुम्हारा भी अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा तब तुम केवल देखने भरके काले रह जाओगे ।

टिप्पणी—बलदेवजीको ब्रह्महत्या लग गयी थी। उसीका प्रायश्चित्त करनेके लिये सबकुछ छोड़कर उन्होंने सरस्वतीके किनारे-किनारे यात्रा की। "ब्रह्महत्याऽपनोदाय प्रयतो नियतेन्द्रियः। मृदुर्भूत्वाऽन्वसरत प्रतिस्रोतः सरस्वतीम्" (महाभारत)। 'रेवतीलोचनाङ्काम्' पदका अर्थ प्रायः टीकाकारोंने "रेवतीके नेत्रोंका प्रतिबिम्ब जिसमें पड़ा है" ऐसा किया है, किन्तु हमारे विचारसे "रेवतीके नयनोंके जैसे चिह्न-लक्षण-हैं जिसमें" यह अर्थ अधिक उपयुक्त है। स्त्रीको मदिरेक्षणा सभी कवि मानते हैं किन्तु मदिराको लोचनोपमा कहना कालिदास जैसे सिद्धसरस्वतीक महाकविकी ही सामर्थ्य हो सकती है। अर्थात् "रेवतीके नयनोंकी भाँति जो आनन्ददायिनी या उन्मादिनी है, ऐसी हालाको" यह अर्थ उचित है ॥५३॥

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५४॥

तस्मादिति ॥ तस्मात् कुरुक्षेत्रात् कनखलस्याद्रेः समीपेऽनुकनखलम् "अनुर्यत्समया" इत्यव्ययीभावः। शैलराजाद्धिमवतोऽवतीर्णां सगरतनयानां स्वर्गसोपानपङ्क्तिम्। स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतामित्यर्थः। जह्नोर्नामराज्ञः कन्यां जाह्नवीं गच्छेर्गच्छ। विध्यर्थे लिङ्। या जाह्नवी गौर्या वक्त्रे या भ्रुकुटिरचना सापत्न्यरोषाद् भ्रूभङ्गकरणं तां फेनैर्विहस्यापहस्येव! धावल्यात् फेनानां हासत्वेनोत्प्रेक्षा। इन्दौ शिरोमाणिक्यभूते लग्ना ऊर्मय एव हस्ता यस्याः सेन्दुलग्नोर्मिहस्ता सती शम्भोः केशग्रहणमकरोत्। यथा काचित्प्रौढा नायिका सपत्नीमसहमाना स्ववाल्लभ्यं प्रकटयन्ती स्वभर्तारं सह शिरोरत्नेन केशेष्वाकर्षति तद्वदिति भावः। इदं च पुरा किल भगीरथप्रार्थनया भगवतीं गगनपथात्पतन्तीं गङ्गां गङ्गाधरो जटाजूटेन जग्राहेति कथामुपजीव्योक्तम् ॥ ५४ ॥

पदार्थ—तस्माद्=वहाँसे। अनुकनखलं=कनखलके पास। शैलराजावतीर्णां=

हिमालयसे उतरी हुई। सगरतनय० = राजासगरके पुत्रोंके लिये स्वर्गारोहण सीढ़ी जैसी। जह्नोः कन्यां = जाह्नवीको। गच्छेः = जाना। या जिसने। गौरीवक्त्र० = पार्वतीकी चढ़ी हुई त्यौरियोंको। फेनैः = झागोंसे विहस्य इव = हँसकर जैसे। इन्दुलग्नो० = चन्द्रमाको छूरहे हैं लहर हाथ जिसके ऐसी। शम्भोः = शिवजीके। केशग्रहणम् अकरोत् = जटाओं ग्रहण कर लिया।

भावार्थ—कुरुक्षेत्रसे आगे बढ़कर कनखलके पास हिमाचलसे उतरती उस जाह्नवीको जाना, जिसने राजा सगरके ६०००० पुत्रोंको सीढ़ियों चढ़ाकर जैसे स्वर्ग पहुँचा दिया और जो पार्वतीजीकी चढ़ी हुई त्योरियों परवांह न करके उन्हें अपने झागसे हँसती हुई सी तरंगरूप हाथोंसे चन्द्रमा छूती हुई शिवजीके मस्तकपर जा विराजी।

टिप्पणी—कनखल हरिद्वारके पास वह स्थान है जहाँ पहाड़ोंसे उतर हुई गंगा समतल भूमिपर वहने लगती है। यह प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। राजा सगरके ६०००० पुत्र कपिल ऋषिके शापसे भस्म हो गये थे जिनका उद्धार करनेके लिये इनके प्रपौत्र राजा भगीरथने घोर तपस्याद्वारा गंगाको प्र करके पृथ्वीपर अवतीर्ण कराया। स्वर्गसे उतरते समय उनके प्रवाहके वेग कोई भूमिपर रोक नहीं सकता था। कहीं वे पाताल न चली जायें, राजा भगीरथकी प्रार्थनापर शिवजीने अपनी जटाओंपर उन्हें अवतीर्ण कराया इसके बाद राजाके निर्दिष्ट मार्गसे सगरसुतोंकी देहभस्मको वहा लेजाती गङ्गासागर पहुँची, यह विख्यात इतिहास है।

गौरीवक्त्र०—इन पदोंका तात्पर्य है कि गंगाने प्रौढ़ा नायिकाकी शिवजीपर अपना पूर्ण प्रभाव जमा लिया और पार्वतीके तेवर चढ़े रह गये॥ ५४॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पूर्वार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥५५॥

तस्या इति ॥ सुरगज इव कश्चिद्दिग्गज इव व्योम्नि पश्चादर्धं पश्चार्धम् । पश्चिमार्धमित्यर्थः पृषोदरादित्वात्साधुः । तेन लम्बत इति पश्चार्धलम्बी सन्पश्चार्धभागेन व्योम्नि स्थित्वा । पूर्वार्धेन जलोन्मुख इत्यर्थः । अच्छस्फटिकविशदं निर्मलस्फटिकावदातुं तस्या गङ्गाया अम्भस्तिर्यक्तिरश्चीनं यथा तथा पातुं त्वं तर्कयेर्विचारयेश्चेत् । सपदि स्रोतसि प्रवाहे संसर्पन्त्या संक्रामन्त्या भवतश्छायया प्रतिबिम्बेनासौ गङ्गाऽस्थाने प्रयागादन्यत्रोपगतः प्राप्तो यमुनासङ्गमो यया सा तथाभूतेवाभिरामा स्यात् ॥५५॥

पदार्थ—सुरगज इव=ऐरावतकी तरह । व्योम्नि=आकाशमें । पूर्वार्द्धलम्बी=अगले भागसे लटकते हुए । अच्छस्फटिकविशदं=स्वच्छस्फटिकसे चमकते हुए । तस्याः=उसके । अम्भः=जलको । तिर्यक्पातुं=तिरछा होकर पीनेके लिये । त्वम् तर्कयेः चेत्=यदि तुम सोचो । (तो) सपदि=सहसा । स्रोतसि=प्रवाहमें । संसर्पन्त्या =चलती हुई । भवतः छायया=तुम्हारी छायासे । असौ=यह । अस्थानोप०=प्रयागके विना दूसरे ही स्थानपर यमुनाका संगम हुई सी । अभिरामा स्यात्=सुन्दर होगी।

भावार्थ—ऐरावत हाथीकी तरह पिछले भागको आकाशमें रख अगले भागको नीचे लटकाते हुए यदि तुम उस गंगाके स्वच्छ स्फटिक जैसे जलको पीना चाहोगे तो एकाएक सफेद पानीमें फैलती हुई तुम्हारी श्यामछायासे वहीं पर गंगा यमुनासे मिलती हुई सी मनोहर प्रतीत होगी, जबकि प्रयागके सिवा अन्यत्र उन दोनोंका संगम नहीं होता ।

टिप्पणी—वल्लभ आदि टीकाकारोंने 'पूर्वार्द्धलम्बी' ही पाठ माना है, हमको भी वही उपयुक्त लगता है । क्योंकि हाथी या मेघ अगले भागको ही जलग्रहणके लिये नीचे झुकायेंगे । मल्लिनाथको भी यही भाव अभीष्ट है जो "पूर्वार्धेन जलोन्मुख इत्यर्थः" इस वाक्यसे स्पष्ट है, किन्तु व्योम्निसे अन्वय करनेके लिये उन्होंने पश्चार्धलम्बी पाठ माना है । पर आकाशमें तो मेघ रहेगा ही चाहे पूर्वार्द्धलम्बी हो वा परार्धलम्बी, अतः कोई विप्रतिपत्ति नहीं । पुराणोंमें यमुनाको कृष्णा और गंगाको श्वेत जलवाली माना है । तुलना०— "गाङ्गमम्बु सितमम्बु यामुनं कज्जलाभमुभयत्र मज्जतः" (नैषध) "सितासिते सरिते तरङ्गचामरे" (पद्म पु०) ॥ ५५ ॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥५६॥

आसीनानामिति ॥ आसीनानामुपविष्टानां मृगाणां कस्तूरिकामृगाणाम्। अन्यथा नाभिगन्धानुपपत्तेः नाभिगन्धैः कस्तूरीगन्धैस्तेषां तदुद्भवत्वात्। अत एव मृगनाभिसंज्ञा च। "मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी च" इत्यमरः। अथवा नाभयः कस्तूर्यः। "नाभिः प्रधाने कस्तूरीमदे च क्वचिदीरितः" इति विश्वः। तासां गन्धैः सुरभिताः सुरभीकृताः शिला यस्य तं तस्या गङ्गाया एव प्रभवत्यस्मादिति प्रभवः कारणम्। तुषारैर्गौरं सितम्। "अवदातः सितो गौरः" इत्यमरः। अचलं प्राप्य। विनीयतेऽनेनेति विनयम्। करणे ल्युट्। अध्वश्रमस्य विनयनेऽपनोदने तस्य हिमाद्रेः शृङ्गे निषण्णः सन्। शुभ्रो यस्त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषो वृषभः। "सुकृते वृषभे वृषः" इत्यमरः। तेनोत्खातेन विदारितेन पङ्केन सहोपमेयामुपमातुमर्हां शोभां वक्ष्यसि वोढासि। बहतेर्लृट्। "त्रिनयन"—इत्यत्र "पूर्वपदात्संज्ञायामगः" इति णत्वं न भवति "क्षुभ्नादिषु च" इति निषेधात्। तस्याः प्रभमित्यादिना हिमाद्रेर्मेघस्य वैवाहिको गृहविहारो ध्वन्यते ॥ ५६ ॥

पदार्थ—आसीनानां=बैठे हुए। मृगाणां=मृगोंके। नाभिगन्धैः=कस्तूरीकी गन्धोंसे। सुरभितशिलं=सुगन्धित शिलाओंवाले। तस्या एव=उस गङ्गाके ही। प्रभवं=उद्गमस्थल। तुषारैः=हिमोंसे। गौरं=श्वेत। अचलं=पर्वतको। प्राप्य=पाकर। अध्वश्रम०=मार्गकी थकावटको मिटानेवाले। तस्य शृङ्गे=उस पहाड़के शिखरपर। निषण्णः=स्थित हुआ। शुभ्रत्रिनयन०=श्वेत जो शिवजीका वृषभ, उससे उछाले हुए कीचड़की उपमावाली। शोभां=शोभाको। वक्ष्यसि=धारण करोगे।

भावार्थ—कस्तूरीमृगोंके बैठनेसे जिसकी शिलाएँ सुगन्धित होगई हैं ऐसे, और वह गंगा जहाँसे निकलती है ऐसे सफेद हिमालयपर पहुँचकर मार्गकी

थकावट दूर करनेके लिये किसी चोटीपर जब तुम बैठोगे तब शिवजीके सफेद वृषभ द्वारा ऊपर उछाले गये कीचड़ जैसे लगने लगोगे।

टिप्पणी—शिवजीके ऊँचे सफेद वृषभकी उपमा हिमालयकी चोटीसे और उसके सींगसे उछालकर उसीके शरीरपर पड़े हुए काले कीचड़की उपमा मेघसे दी गई है। किसीने 'शुभ्रां' पाठ मानकर 'उज्ज्वलां शोभाम्' ऐसा पृथक् विशेषण माना है ॥५६॥

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीवालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम् ॥५७॥

तमिति ॥ वायौ वनवाते सरति वाति सति सरलानां देवदारुद्रुमाणां स्कन्धाः प्रदेशविशेषाः। "अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरोः" इत्यमरः। तेषां सङ्घट्टेन सङ्घर्षणेन जन्म यस्य स तथोक्तः! जन्मोत्तरपदत्वाद्व्यधिकरणोऽपि बहुव्रीहिः साधेरित्युक्तम्। उल्काभिः स्फुलिङ्गैः क्षपिता निर्दग्धाश्चमरीणां बालभाराः केशसमूहा येन। दव एवाग्निर्दवाग्निर्वनवह्निः। "वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते" इति यादवः। तं हिमाद्रिं बाधेत चेत्पीडयेद्यदि। एनं दवाग्निं वारिधारासहस्रैः शमयितुमर्हसि। युक्तं चैतदित्याह—उत्तमानां महतां सम्पदः समृद्धय आपन्नानामार्तानामार्तिप्रशमनमापन्निवारणमेव फलं प्रयोजनं यासां तास्तथोक्ता हि। अतो हिमाचलस्य दावानलस्त्वया शमयितव्य इति भावः। ॥५७॥

पदार्थ—वायौ सरति = हवा चलनेपर। सरल० = चीड़के पेड़ोंके टकरानेसे उत्पन्न। उल्काक्षपित० = चिनगारियोंसे झुलसा दिये हैं चँवरगायोंके बालोंके गुच्छे जिसने, ऐसी। दवाग्निः = बनाग्नि। तं बाधेत चेत् = उस हिमालयको सतावे तो। एनं = इसको। वारिधारासहस्रैः = हजारों जलधाराओंसे। अलं = पूर्णरूपसे। शमयितुम् अर्हसि = शान्तकरने योग्य हो जाना। हि = क्योंकि। उत्तमानां सम्पदः = श्रेष्ठ जनोंकी सम्पत्तियाँ। आपन्नार्ति० = पीड़तोंकी पीड़ाका निवारण है फल जिनका, ऐसी होती हैं।

भावार्थ—हवा चलनेपर जब चीड़के पेड़ोंके टकरानेसे वनाग्नि उत्प[न्न] होगी और उसकी चिनगारियोंसे चँवरगायोंकी पूँछें झुलसने लगेंगी, त[ब] मूसलधार पानी बरसाकर उसे पूरी तरह बुझा देना। क्योंकि पीड़ितोंक[ी] पीड़ाका निवारण ही बड़े लोगोंकी सम्पत्तिका फल है। अर्थात् श्रेष्ठ लोग संपत्तिका संचय इसीलिये करते हैं कि विपन्नोंकी सहायता कर सकें।

टिप्पणी—सरल और देवदारु दोनों यज्ञीय काष्ठ हैं किन्तु अलग-अलग जातिके हैं, देवदारु जड़से ही गोलाकार फैली हुई घनी छायावाली शाखाओंसे भरा होता है। जड़की अपेक्षा चोटीकी ओर शाखाओंकी लम्बाई कम होती जाती है और मन्दिर-सा बन जाता है। इसकी गन्ध उत्कट होती है किन्तु सरलमें बहुत ऊँचा सीधा तना होता है और ऊपर जाकर कुछ ही शाखाएँ इसमें होती हैं। जिनकी बनावट देवदारुसे नितान्त भिन्न होती है। इसकी गन्ध उत्कट नहीं होती। अतः टीकाकारोंद्वारा सरलका देवदारु अर्थ अनुपयुक्त है ॥५७॥

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम्।
तान् कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५८॥

य इति ॥ तस्मिन्हिमाद्रौ संरम्भः कोपः। "संरम्भः संक्रमे कोपे" इति शब्दार्णवे। तेनोत्पतन उत्प्लवने रभसो वेगो येषां ते तथोक्ताः। "रभसो वेगहर्षयोः" इत्यमरः। ये शरभा अष्टापदमृगविशेषाः। "शरभः शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे" इति विश्वः। मुक्तोऽध्वा शरभोत्प्लवनमार्गो येन तं भवन्तं सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः। सम्भावनायां लिङ्। भवतोऽतिदूरत्वात्स्वाङ्गभङ्गातिरिक्तं फलं नास्ति लङ्घनस्येत्यर्थः। ताञ्छरभांस्तुमुला संकुलाः करका वर्षोपलाः। "वर्षोपलस्तु करका" इत्यमरः। तासां वृष्टिस्तस्याः पातेनावकीर्णान्विक्षिप्तान्कुर्वीथाः कुरुष्व। विध्यर्थे लिङ्। क्षुद्रोऽप्यधिक[ारि]प्रन्प्रतिपक्षः सद्यः प्रतिक्षेप्तव्य इति भावः। तथाहि आरभ्यन्ते इत्यारम्भाः कर्माणि तेषु यत्र उद्योगः स निष्फलो येषां ते तथोक्ताः। निष्फलकर्मोपक्रमाः

इत्यर्थः । अतः के वा परिभवपदं तिरस्कारपदं न स्युर्न भवन्ति । सर्वं एव भवन्तीत्यर्थः । यदत्र "घनोपलस्तु करके" इति यादववचनात्करकशब्दस्य नियतपुंल्लिङ्गताभिप्रायेण करकाणामवृष्टिः इति केषांचिद्व्याख्यानं तदन्ये नानुमन्यन्ते । "वर्षोपलस्तु करका" इत्यमरवचनव्याख्याने क्षीरस्वामिना "कमण्डलौ च करकः सुगते च विनायके" इति नानार्थे पुंस्यपि वक्ष्यतीति वदतोभयलिङ्गताप्रकाशनात् । यादवस्य तु पुंलिङ्गताविधाने तात्पर्यं न तु स्त्रीलिङ्गतानिषेध इति न तद्विरोधोऽपि । 'करकस्तु करङ्के स्याद्दाडिमे च कमण्डलौ । पक्षिभेदे करे चापि करका च घनोपले" इति विश्वप्रकाशवचने तूभयलिङ्गता व्यक्तैवेति न कुत्रापि विरोधवार्ता । अतएव रुद्रः—"वर्षोपलस्तु करका करकोऽपि च दृश्यते" इति ॥५८॥

पदार्थ - तस्मिन् = हिमालयमें । संरम्भोत्पतनरभसाः = क्रोधसे उछलनेमें किया है वेग जिन्होंने, ऐसे । ये शरभाः = जो शरभ । मुक्ताध्वानं = की है गर्जना जिसने, ऐसे । भवन्तं = आपको । स्वाङ्गभङ्गाय = अपने शरीरनाश-के लिये । सपदि = उसीसमय । लङ्घयेयुः = लाँघने लगें तो । तान् = उनको । तुमुलकरका० = तीव्र ओलोंकी वर्षासे नष्टभ्रष्ट । कुर्वीथाः = कर देना । निष्फलारम्भयत्नाः = व्यर्थके कार्योंको प्रारम्भ करनेका प्रयत्न करनेवाले । के वा = कौन से । परिभवपदं = तिरस्कारके पात्र । न स्युः = नहीं होते ?

भावार्थ – तुम्हारी गर्जना सुनकर अपने विनाशके लिये शरभोंके दलके दल तुम्हें लाँघकर आगे बढ़नेकी चेष्टा करें तो तुम जोरसे ओले बरसाकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देना । व्यर्थके कामोंको प्रारम्भ करनेवाले कौन ऐसे हैं ? जो तिरस्कारके पात्र नहीं होते ।

टिप्पणी – शरभ एक आठपैरोंवाला भयानक मृग होता है । कहते हैं इसके शरीरमें पंखकी तरहके कुछ ऐसे अवयव बने होते हैं जिनसे यह काफी ऊँचा उड़नेकी तरह उछलता है । पश्चिमी नेपालसे मानससरोवर जानेके मार्गमें ये अधिकतर मिलते हैं । नेपालके मन्दिरोंमें इनकी प्रतिकृतियाँ बनी पाई जाती हैं । बादल गरजनेपर यह उसे सहन नहीं कर सकता और प्रतिहिंसाकी इच्छासे बादलपर उछलता है किन्तु अत्यन्त ऊँचाईसे गिरनेसे उसके ही

पैर टूट जाते हैं। टीकाकारोंने प्रायः यही अर्थ माना है। हमारे विचारसे "शरभः शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे" (विश्वकोष)के अनुसार शरभ का अर्थ मृग न लेकर शलभ (टिड्डीदल) लिया जाता तो अधिक उपयुक्त होता। क्योंकि एक स्थानपर जमा हुए टिड्डियोंके दल बादलकी गर्जना सुनकर पानी बरसनेकी डरसे आकाशमें इस प्रकार उड़ेंगे कि जहाँ बादल न हो आकाशका वह भाग भी मेघाच्छन्न सा लगेगा। यही उनका मेघको लाँघना होगा। साधारण वर्षासे वे मरेंगे नहीं, अतः जोरके ओले बरसानेसे वे निश्चय ही अवकीर्ण हो जायेंगे। निष्फलारम्भयत्ना (संसारको निष्फल=शस्यविहीन करनेका यत्न जिन्होंने आरम्भ किया है) यह विशेषण भी उन्हींके लिये उपयुक्त है।

इसी प्रकार 'मुक्ताध्वानं'का 'परित्यक्तमार्गं' की अपेक्षा (मुक्तं निःसृतं आसमन्तात् ध्वानं गर्जितं यस्य) चारों ओर जिसकी गर्जना फैल रही है, यह अर्थ हमें अधिक अच्छा प्रतीत होता है ॥५८॥

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥५९॥

तत्रेति ॥ तत्र हिमाद्रौ दृषदि कस्यांचिच्छिलायां व्यक्तं प्रकटं शश्वत्सदा सिद्धैर्योगिभिः। "सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः" इति विश्वः। उपचितबलिं रचित-पूजाविधिम्। "बलिः पूजोपहारयोः" इति यादवः। अर्धश्चासाविन्दुश्चेत्यर्धेन्दुः। "अर्धः खण्डे समेंऽशके" इति विश्वः। स मौलौ यस्य तस्येश्वरस्य चरणन्यासं पादविन्यासम्। भक्तिः पूज्येष्वनुरागस्तया नम्रः सन् परीयाः प्रदक्षिणं कुरु। परिपूर्वादिणो लिङ्। यस्मिन् पादन्यासे दृष्टे सत्युद्धूतपापा निरस्तकल्मषाः सन्तः श्रद्दधाना विश्वसन्तः पुरुषाः श्रद्धा विश्वासः आस्तिक्यबुद्धिरिति यावत्। "श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिर्वक्तव्या" इति श्रत्पूर्वाद्दधातेः शानच्। करणस्य क्षेत्रस्य विगमादूर्ध्वं देहत्यागानन्तरम्। "करणं साधकतमं

क्षेत्रगात्रेन्द्रियेषु च" इत्यमरः । स्थिरं शाश्वतं गणानां प्रमथानां पदं स्थानम् । "गणाः प्रमथसंख्यौघाः" इति वैजयन्ती । तस्य प्राप्तये संकल्पन्ते समर्था भवन्ति । क्लृप्तेः पर्याप्तिवचनस्यालमर्थत्वात्तद्योगे "नमःस्वस्ति"— इत्यादिना चतुर्थी । "अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्" इति भाष्यकारः । "अव्यक्तं व्यञ्जयामास शिवः श्रीचरणद्वयम् । हिमाद्रौ शांभवादीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम् । दृष्ट्वा श्रीचरणन्यासं साधकः स्थितये तनुम् । इच्छाधीनशरीरो हि विचरेच्च जगत्त्रयम् ।" इति शंभुरहस्ये ॥५९॥

पदार्थ—तत्र = वहाँ । दृषदि = शिलापर । व्यक्तं = स्पष्ट दीखते हुए । शश्वत् = वारबार । सिद्धैः = सिद्धोंसे । उपचितवलिं = की गई है पूजा जिसकी ऐसे । अर्धेन्दुमौलेः = चन्द्रशेखर शिवजीके । चरणन्यासं = पदचिह्नको । भक्तिनम्रः = भक्तिपूर्वक झुककर । परीयाः = प्रदक्षिणा करना । यस्मिन् दृष्टे = जिसका दर्शन करनेपर । उद्धूतपापाः = पापोंसे रहित हुए । श्रद्धधानाः = श्रद्धालु । करणविगमादूर्ध्वं = शरीरान्तके पश्चात् । स्थिरगणपदप्राप्तये = स्थायी रूपसे शिवजीके लोकमें वास करनेके लिये । संकल्पन्ते = अच्छी प्रकार समर्थ हो जाते हैं ।

भावार्थ—उस हिमालयपर किसी एक शिलामें भगवान् शंकरका चरणचिह्न स्पष्ट दिखाई देता है जिसकी सिद्ध लोग निरन्तर पूजा करते हैं और जिसका दर्शन होनेपर श्रद्धालु भक्तजन मरनेके बाद पाप रहित होकर स्थायी रूपसे शिवजीका पार्षद होनेके लिये समर्थ हो जाते हैं । उसकी तुम भी युक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा करना ।

टिप्पणी—इस श्लोकका अभिप्राय किस स्थानके लिये है यह स्पष्ट नहीं है । विल्सन आदि ने "हरकी पैड़ी" प्रचलित होनेसे हरिद्वार को ही यह स्थान माना है ॥५९॥

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।

निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्

सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥६०॥

शब्दायन्त इति ॥ हे मेघ, अनिलैः पूर्यमाणाः कीचका वेणुविशेषाः। "वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः" इत्यमरः। "कीचको दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे" इति विश्वः। मधुरं श्रुतिसुखं यथा तथा शब्दायन्ते शब्दं कुर्वन्ति। स्वनन्तीत्यर्थः। "शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे" इत्यादिना क्यङ्। अनेन वंशवाद्यसंपत्तिरुक्ता। संसक्ताभिः संयुक्ताभिर्वंशवाद्यानुषक्ताभिर्वा। "संरक्ताभिः" इति पाठे संरक्तकण्ठीभिरित्यर्थः। किन्नरीभिः किन्नरस्त्रीभिः। त्रयाणां पुराणां समाहारस्त्रिपुरम्। "तद्धितार्थोत्तरपद–" इति समासः। पात्रादित्वान्नपुंसकत्वम्। तस्य विजयो गीयते। कन्दरेषु "दरी तु कन्दरो वा स्त्री" इत्यमरः। ते तव निर्ह्रादो मुरजे वाद्यभेदे ध्वनिरिव। मुरजध्वनिरिवेत्यर्थः। स्याच्चेत्तर्हि तव चरणसमीपे पशुपतेर्नित्यसन्निहितस्य शिवस्य सङ्गीतम्। "तौर्यत्रिकं तु सङ्गीतं न्यायारम्भे प्रसिद्धके। तूर्याणां त्रितये च" इति शब्दार्णवे। तदेवार्थः सङ्गीतार्थः सङ्गीतवस्तु। "अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु" इत्यमरः। समग्रः सम्पूर्णो भावी ननु भविष्यति खलु। "भविष्यति गम्यादयः" इति भविष्यदर्थे णिनिः ॥६०॥

पदार्थ—अनिलैः=वायुओंसे। पूर्यमाणाः=भरे हुए। कीचकाः=बाँस। मधुरं शब्दायन्ते=मधुर शब्द करते हैं। संसक्ताभिः किन्नरीभिः=एकत्र हुई किन्नरियोंसे। त्रिपुरविजयो गीयते=त्रिपुर विजयके गीत गाये जाते हैं। कन्दरेषु=गुफाओंमें। ते निर्ह्रादः=तुम्हारी गर्जना। मुरजे=मृदङ्ग पर। ध्वनिः=शब्दकी तरह। स्यात् चेत्=यदि हो जाय तो। पशुपतेः=शिवजीका। समग्रः संगीतार्थः=सम्पूर्ण संगीतका प्रयोजन। तत्र=वहाँ। ननु भावी=सचमुच सिद्ध हो जायगा।

भावार्थ—जिस हिमालयमें छिद्रोंमें हवाएँ भरनेसे बाँसोंका मधुर शब्द हो रहा है, किन्नरियाँ समवेत स्वरसे त्रिपुर विजयके गीत गा रही हैं, वहीं यदि

गुफाओंमें प्रतिध्वनित तुम्हारी गर्जना मृदङ्गकी ध्वनिका काम कर दे तो भगवान् पशुपतिके ताण्डवके लिये सचमुच ही सारा साज इकट्ठा हो जायगा।

टिप्पणी—संगीत शब्दका अभिप्राय यहाँ नाट्यसे है। नाट्यके तीन अङ्ग होते हैं। नृत्य, गीत और वाद्य। वाद्य दो प्रकारके होते हैं। वादित्र और आद्योत (तत और सुषिर अर्थात् वेणु आदि वादित्र हैं तथा आनद्ध और घन=मुरज, कांस्यताल आदि आतोद्य हैं)। यहाँ नृत्य तो स्वयं शङ्कर करेंगे। गीत किन्नरियाँ गा रही हैं। वादित्र स्वयं वज रहे हैं। यदि पर्वत गुफाओं में प्रतिध्वनित तुम्हारी गर्जना आतोद्यका काम कर दे तो सारी नाट्य सामग्री प्रस्तुत हो जाय, यही अभिप्राय है ॥६०॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥६१॥

प्रालेयेति ॥ प्रालेयाद्रेर्हिमाद्रेरुपतटं तटसमीपे। "अव्ययं विभक्ति—" इत्यादिना समीपार्थेऽव्ययीभावः। तांस्तान्। वीप्सायां द्विरुक्तिः। विशेषान् द्रष्टव्यार्थान्। "विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि" इति शब्दार्णवे। अतिक्रम्यानुसरेर्गच्छेरित्यनागतेन सम्बन्धः। हंसानां द्वारं हंसद्वारम्। मानसप्रस्थायिनो हंसाः क्रौञ्चरन्ध्रेण सञ्चरन्त इत्यागमः। भृगुपतेर्जामदग्न्यस्य यशोवर्त्म। यशःप्रवृत्तिकारणमित्यर्थः। यत्क्रौञ्चस्याद्रे रन्ध्रमस्ति तेन क्रौञ्चविलेन बलेर्दैत्यस्य नियमने बन्धनेऽभ्युद्यतस्य प्रवृत्तस्य विष्णोर्व्यापकस्य त्रिविक्रमस्य श्यामः कृष्णवर्णः पाद इव तिर्यगायामेन क्षिप्रप्रवेशनार्थं तिरश्चीनदैर्घ्येण शोभत इति तथाविधः सन्नुदीचीमुत्तरां दिशमनुसरेरनुगच्छ। पुरा किल भगवतो देवाद्धूर्जटेर्धनुरुपनिषदमधीयानेन भृगुनन्दनेन स्कन्दस्य स्पर्धया क्रौञ्चशिखरिणमतिनिशितविशिखमुखेन हेलया मृत्पिण्डभेदं भित्त्वा तत एव क्रौंचक्रोडादेव सद्यः समुज्जृम्भिते कस्मिन्नपि यशःक्षीरनिधौ निखिलमपि जगज्जालमाप्लावितमिति कथा श्रूयते ॥६१॥

पदार्थ—प्रालेयाद्रेः=हिमालयके। उपतटं=किनारोंके आस-पास। तांस्तान्= उन-उन। विशेषान् = विशिष्ट वस्तुओंको। अतिक्रम्य = लांघकर। यत् = जो। हंसद्वारं = हंसोंका मार्ग। भृगुपति० = परशुरामजीके यशका मार्ग। क्रौंचरन्ध्रम्=क्रौंच पर्वतका विवर। तेन=उससे। वलिनियमना०=राजा वलिके बांधनेके लिये तत्पर। विष्णोः = विष्णुके। श्यामः पाद इव = सांवले पैरकी तरह। तिर्यगायामशोभी = तिरछा लम्वा होनेसे सुन्दर (होकर)। उदीचीं दिशं=उत्तर दिशाको। अनुसर=चलो।

भावार्थ—हिमाचलके किनारोंके आस-पास विभिन्न सुन्दर वस्तुओं और दृश्योंको देखते हुए तुम उस क्रौंच पर्वतके छिद्रसे, जो कि परशुरामजीके पराक्रमका प्रत्यक्ष प्रमाण है और वरसातमें हंस जिसके द्वारा मानसरोवरको जाते हैं, तिरछे और लम्बे होकर उत्तर दिशाकी ओर चलना। उस समय राजा वलिको बांधनेसे लिये तत्पर विष्णुके सांवले पैरकी तरह तिरछे और लम्बे तुम सुन्दर दीखोगे।

टिप्पणी—जव परशुरामजी शिवजीसे धनुर्विद्या सीखते थे तव कुमार कार्तिकेय और परशुरामजीमें प्रतियोगिता हुई और दोनोंके वरसते वाणोंसे क्रौंच पर्वतपर छिद्र हो गया। इसीसे परशुरामजीकी भी ख्याति हुई और कार्तिकेय भी क्रौंचदारण कहलाये। वलिके वन्धनकी कथा प्रसिद्ध है ॥६१॥

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥६२॥

गत्वेति ॥ क्रौञ्चविलनिर्गमनानन्तरमूर्ध्वं च गत्वा दशमुखस्य रावणस्य। भुजैर्वाहुभिरुच्छ्वासिताः विश्लेषिताः प्रस्थानां सानूनां सन्धयो यस्य तस्य। एतेन नयनकौतुकसद्भाव उक्तः। त्रिदशपरिमाणमेषामस्तीति त्रिदशाः। "संख्ययाव्यया—" इत्यादिना बहुव्रीहिः। "बहुव्रीहौ संख्येये डच्-" इत्यादिना समासान्तो डजिति क्षीरस्वामी। त्रिदशानां देवानां वनिता

स्तासां दर्पणस्य । कैलासस्य स्फटिकत्वाद्रजतत्वाद्वा विम्बग्राहित्वेनेद-मुक्तम् । कैलासस्यातिथिः स्याः । यः कैलाशः कुमुदविशदैर्निर्मलैः शृङ्गाणामुच्छ्रायैरौन्नत्यैः खमाकाशं वितत्य व्याप्य प्रतिदिनं दिने दिने राशीभूतः त्र्यम्बकस्य त्रिलोचनस्याट्टहासोऽतिहास इव स्थितः । "अट्टावतिशय-क्षौमौ" इति यादवः । धावल्याद्धासत्वेनोत्प्रेक्षा । हासादीनां धावल्यं कविसमयसिद्धम् ।

पदार्थ—ऊर्ध्वं गत्वा च=और ऊपर जाकर । दशमुख०=रावणकी भुजाओंसे जिसकी सन्धियाँ (जोड़) ढीली पड़ गई हैं, ऐसे । त्रिदश० = देवाङ्गनाओंके दर्पण । कैलासस्य = कैलासका । अतिथिः स्याः=अतिथि होना । यः = जो । कुमुदविशदैः=कमलके समान शुभ्र । शृङ्गोच्छ्रायैः = शिखरोंकी ऊँचाईसे । खं वितत्य=आकाशको व्याप्तकरके । प्रतिदिनं = प्रतिदिन । राशीभूतः = इकट्ठा हुआ । त्र्यम्बकस्य=शिवजीके । अट्टहास इव = हंसीके ठहाकेकी तरह स्थितः=स्थित है ।

भावार्थ—क्रौंच पर्वतके विवरसे निकलकर आकाशमें ऊपर उठते हुऐ तुम उस कैलासमें पहुँचना, जिसके जोड़-जोड़, रावणद्वारा हाथों से ऊपर उठाकर हिलानेसे ढीले पड़ गये हैं, जो इतना ऊँचा और स्वच्छ है कि देवाङ्गनाएँ उसमें अपना प्रतिविम्ब देखा करती हैं और जो अपनी ऊँची-ऊँची सफेद चोटियोंसे आकाशको छूता हुआ ऐसा लगता है मानो शिवजीके प्रतिदिनके हँसीके ठहाके जमा होते जा रहे हैं ।

टिप्पणी—मल्लिनाथके सिवा अन्य टीकाकारोंने "प्रतिदिशमिव" पाठ माना है किन्तु उसकी अपेक्षा "प्रतिदिनमिव" ही अधिक अच्छा है । शिवजी हिमालयपर रहकर प्रतिदिन जो अट्टहास करते हैं वह जमा होता जा रहा है । अट्टहासकी धवलता कवि-समय-सिद्ध है । रावणद्वारा कैलासको ऊपर उठाकर हिलानेकी कथा शिवपुराणमें प्रसिद्ध है ॥६२॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे

सद्यः कृत्ताद्विरदरदनच्छेदगौरस्य तस्य ।

शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥६३॥

उत्पश्यामीति ॥ स्निग्धं मसृणं भिन्नं मर्दितञ्च यदञ्जनं कज्जलं तस्य-भेवाभा यस्य तस्मिंस्त्वयि तटगते सानु गते सति सद्यः कृत्तस्य छिन्नस्य द्विरददशनस्य गजदन्तस्य छेदवद् गौरस्य धवलस्य तस्याद्रेः कैलासस्य मेचके श्यामले। "कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः" इत्यमरः। वाससि वस्त्रेऽसन्यस्ते सति हलभृतो बलभद्रस्येव स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां प्रक्षणीयां शोभां भवित्रीं भाविनीमुत्पश्यामि। शोभा भविष्यतीति तर्कयामीत्यर्थः। श्रौती पूर्णोपमालंकारः ॥६३॥

पदार्थ – स्निग्ध०=चिकने पीसे हुए सुरमे जैसे। त्वयि=तुम्हारे। तटगते=समीप पहुँचनेपर। सद्यःकृत्त०=तत्काल काटे हुए हाथीके दाँतके टुकड़े जैसे श्वेत। तस्या अद्रेः=उस कैलास पर्वतकी। भवित्रीं=होनेवाली। शोभां=शोभाको। मेचके वाससि=साँवले वस्त्र। अंसन्यस्ते सति=कंधेमें रखनेपर। हलभृतः इव=हलधर (बलदेव)की जैसी। स्तिमित०=स्थिर आँखोंसे देखने योग्य। उत्पश्यामि=संभावना करता हूँ।

भावार्थ—चिकने पीसे हुए काजल जैसे तुम जब समीप पहुँचोगे तब तत्काल काटे हुए हाथीदाँत जैसे सफेद उस कैलासपर्वतकी शोभा ऐसी होजायगी जैसे बलदेवजी अपने कन्धेपर साँवला वस्त्र लटकाये हों, ऐसा मैं समझता हूँ!

टिप्पणी—बलदेवजीका वर्ण, शुभ्र वस्त्र नीले तथा हल और मुशल ये आयुध प्रसिद्ध हैं। मेघाश्लिष्ट कैलाससे उनकी उपमाद्वारा बलदेवजीकी विशालता और महत्ता ध्वनित होती है ॥६३॥

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ॥६४॥

हित्वेति ॥ तस्मिन्क्रीडाशैले कैलासे। "कैलासः कनकाद्रिश्च मन्दरे

गन्धमादनः । क्रीडार्थं निर्मिताः शंभोर्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवन् ।" इति शंभुरहस्ये । शंभुना शिवेन भुजग एव वलयः कङ्कणं हित्वा गौर्या भीरुत्वात्त्यक्त्वा दत्तहस्ता सती गौरी पादचारेण विचरेद्यदि तर्ह्यग्रयायी पुरोगतस्तथा स्तम्भितो घनीभावं प्रापितोऽन्तर्जलम्योघः प्रवाहो यस्य स तथाभूतः । भङ्गीनां पर्वणां भक्त्या रचनया विरचितवपुः कल्पितशरीरः सन् । मणीनां तटं मणितटं तस्यारोहणाय सोपानत्वं कुरु । सोपानभावं भजेत्यर्थः ॥६०॥

पदार्थ—तस्मिन् = उस । क्रीडाशैले = क्रीड़ापर्वतपर । शम्भुना = शिवजी-द्वारा । भुजगवलयं हित्वा = सर्परूप कंकणको छोड़कर । दत्तहस्ता=हाथका सहारा दी गई । गौरी = पार्वतीजी । यदि पादचारेण विचरेत् = यदि पैदल चलती हों तो । अग्रयायी = आगे आगे चलकर । स्तम्भिता० = अन्दर ही रोक-दिया है जलके वेगको जिसने, ऐसा । भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः=ठेढ़े-मेढ़े रूपमें बना लिया है शरीर जिसने, ऐसे तुम । मणितटारोहणाय=मणिमय तटपर चढ़नेके लिये । सोपानत्वं कुरु = सीढ़ीका काम देना ।

भावार्थ—उस कैलाशपर, कहीं डर न जाँय इसलिये अपने सर्पमय आभूषण उतारकर शिवजीद्वारा हाथका सहारा दी गई पार्वतीजी यदि पैदल ही चल रही हों तो तुम उनके आगे-आगे चलना और जलके वेगको अन्दर ही रोककर अपने शरीरको टेढ़ामेढ़ा करके सीढ़ी जैसे बन जाना, जिससे वे तुमपर आरूढ़ होकर आसानीसे मणिमय शिखरपर चढ़ जायेंगी ।

टिप्पणी—दम्पतियोंके एकान्त विहारस्थलके लिये क्रीड़ा या लीला विशेषण देते हैं क्रीड़ागृह, कीड़ोद्यान, कीड़ापर्वत इत्यादि । भुजगवलयं हित्वा इस पदसे शिवजीका पार्वतीके प्रति अनुराग और पार्वतीका स्वाधीनपतिकत्व व्यंजित होता है ।।६४।।

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं

नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ।

ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः ॥६५॥

तत्रेति। तत्र कैलासेऽवश्यं सर्वथा सुरयुवतयो वलयकुलिशानि कङ्कणकोटयः। शतकोटिवाचिना कुलिशशब्देन कोटिमात्रं लक्ष्यते। तैरुद्घट्टनानि प्रहारास्तैरुद्गीर्णमुत्सृष्टं तोयं येन तं त्वां यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां गृहत्वं कृत्रिमधारागृहत्वं नेष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति। हे सखे हे मित्र, घर्मे निदाघे लब्धस्य। घर्मलब्धत्वं चास्य देवभूमिषु सर्वदा सर्वर्तुसमाहारात्प्राथमिकमेघत्वाद्वा। तथोक्तम्—"आषाढस्य प्रथम—" इति। तत्र ताभ्यः सुरयुवतिभ्यो मोक्षो न स्याद्यदि तदा क्रीडालोलाः क्रीडासक्ताः। प्रमत्ता इत्यर्थः। ताःसुरयुवतीः श्रवणपरुषैः कर्णकटुभिर्गर्जितैः। करणैः। भीषयेस्त्रासयेः। अत्र हेतुभयाभावादात्मनेपदं पुगागमश्च ॥६५॥

पदार्थ · तत्र = वहाँ। अवश्यं = निश्चय ही। सुरयुवतयः=देवताओंकी स्त्रियाँ। वलयकुलि० = कंगनोंकी नोक पर टकरानेसे जल उगलते हुए। त्वां= तुमको। यन्त्रधारागृहत्वं नेष्यन्ति=पानीका नल लगे हुए स्नानागार सा बना देंगी। सखे=हे मित्र ! घर्मलब्धस्य = ग्रीष्ममें पाये हुए। तव = तुम्हारा। ताभ्यः = उनसे। यदि मोक्षः न स्यात्=यदि छुटकारा न हो, (तो) क्रीडालोलाः ताः = क्रीडासक्त हुई उन स्त्रियोंको। श्रवणपरुषैः = सुननेमें कठोर। गर्जितैः= गर्जनाओंसे। भाययेः = डरा देना।

भावार्थ—उस कैलासमें देवाङ्गनाओंके कंकणोंकी तीखी नोकोंसे खरोंच लगनेपर स्थान-स्थानसे जल गिराते हुए तुमको वे पानीका कल लगे स्नानागार सा बना डालेंगी। हे मित्र ! गर्मीमें मिले हुए तुम्हारा यदि उनसे छुटकारा न हो तो क्रीडोन्मत हुई उनको कठोर गर्जनाओंसे डरा देना !

टिप्पणी—'कुलिशवलयो०' पाठकरके 'हीरोंसे जटित कंकणोंके टकरानेसे' ऐसा अर्थ भी किसीने किया है किन्तु यहाँ मल्लिनाथका उपर्युक्त अर्थ ही ठीक लगता है। यन्त्रधारागृहका अभिप्राय दीवारपर लगे उन पानीके नलोंसे है जिन्हें खोलकर इच्छानुसार पानी लिया जा सकता है और फिर बन्द किया जा सकता है। तु०—'प्रतिभित्ति जलस्रावि यन्त्रधारागृहं विदुः।' ॥६५॥

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन् कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन् कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानि स्ववातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥६६॥

हेमेति ॥ हे जलद ! हेमाम्भोजानां प्रसवि जनकम् । 'जिदृक्षि—' इत्यादिनेर्निप्रत्ययः । मानसस्य सरसः सलिलमाददानः । पिबन्नित्यर्थः । तथैरावतस्येन्द्रगजस्य । कामचारित्वाद्वा शिवसेवार्थमिन्द्रागमनाद्वा समागतस्येति भावः । क्षणे जलादानकाले मुखे पटेन या प्रीतिस्तां कुर्वन् तथा कल्पद्रुमाणां किसलयानि पल्लवभूतान्यंशुकानि सूक्ष्मवस्त्राणीव । "अंशुकं वस्त्रमात्रे स्यात्परिधानोत्तरीययोः । सूक्ष्मवस्त्रे नातिदीप्तौ" इति शब्दार्णवे । वातैर्मेघवातैर्धुन्वन । नाना बहुविधाश्चेष्टास्तोयपानादयो येषु तैर्ललितैः क्रीडितैः । "ना भावभेदैः स्त्रीनृत्ये ललितं त्रिषु सुन्दरे । अस्त्रियां प्रमदागारे क्रीडिते जातपल्लवे" इति शब्दार्णवः । तं नगेन्द्रं कैलासं कामं यथेष्टं निर्विशेः समुपभुङ्क्ष्व । "निर्वेशो भृतिभोगयोः" इत्यमरः । यथेच्छविहारो मित्रगृहेषु मख्याः फलम् । सहजमित्रं च ते कैलासः । मेघपर्वतयोरब्जसूर्ययोरब्धिचन्द्रयोः शिखिजीमूतयोः समीराग्न्योर्मित्रता स्वयमिति भावः ॥६६॥

पदार्थ—जलद = हे मेघ ! हेमाम्भोजप्रसवि = सुवर्णमय कमलोंको उत्पन्न करनेवाले । मानसस्य = मानससरोवरके । सलिलम् = जलको । आददानः = ग्रहण करता हुआ । ऐरावतस्य=ऐरावतको । क्षणमुखपटप्रीतिं कुर्वन् = क्षणभरके लिये मुखाच्छादकवस्त्रका आनन्द देते हुए । कल्प० = कल्पवृक्षके पल्लवरूप । अंशुकानि=वस्त्रोंको । स्ववातैः=अपनी हवाओंसे । धुन्वन्=हिलाता हुआ । नानाचेष्टैः = विभिन्न चेष्टाओंवाले । ललितैः=विलासोंसे । तं नगेन्द्रं निर्विशेः=उस पर्वतराजका आनन्द लेना ।

भावार्थ—हे मेघ ! सुनहरे कमलोंको उगानेवाले मानससरोवरके जलको लेते हुए, ऐरावतको क्षणभरके लिये मुखपट (रूमाल)का आनन्द

देते हुए, कल्पवृक्षके कोंपलरूप सूक्ष्मवस्त्रोंको अपनी नम हवाओंसे हिलाते हुए तुम विविध प्रकारकी चेष्टाओंसे पूर्ण विलासोंद्वारा उस पर्वतश्रेष्ठ कैलाशका आनन्द लेना।

टिप्पणी— ग्रीष्ममें जब हाथी गर्मीसे व्याकुल होजाते हैं तब गीला कपड़ा उनके मुखपर डाल दिया जाता है जिससे उन्हें ठण्ढक प्रतीत होती है। मुखपटसे यही अभिप्राय है। प्रसिद्ध टीकाकार भरतमल्लिकने "धुन्वन्वातैः सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि च्छायाभिन्नस्फटिकविशदं निर्विशेः..." ऐसा पाठ दिया है ॥६६॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥६७॥

तस्येति॥ प्रणयिनः प्रियतमस्येव तस्य कैलासस्योत्सङ्गे ऊर्ध्वभागे कटौ च। "उत्सङ्गो मुक्तसंयोगे सक्थन्यूर्ध्वतलेऽपि च" इति मालतीमालायाम्। गङ्गा दुकूलं शुभ्रवस्त्रमिवेत्युपमितसमासः। "दुकूलं सूक्ष्मवस्त्रे यदुत्तरीये सितांशुके" इति शब्दार्णवे। अन्यत्र तु गङ्गैव दुकूलम्। तत्स्रस्तं यस्यास्तां तथोक्तामलकां कुबेरनगरीं दृष्ट्वा कामिनीमिवेति शेषः। हे कामचारिन्! त्वं पुनस्त्वं तु न ज्ञास्यस इति न किन्तु ज्ञास्यस एवेत्यर्थः। कामचारिणस्ते पूर्वमपि बहुकृत्वो दर्शनसंभवाज्ज्ञानसंभावितमेवेति निश्चयार्थं नञ्द्वयप्रयोगः। तदुक्तम्—"स्मृतिनिश्चयसिद्धयर्थेषु नञ्द्वयप्रयोगः" इति। उच्चैरुन्नतानि विमानानि सप्तभूमिकभवनानि यस्यां सा। "विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्मनि" इति यादवः। मेघसंवाहनस्थानसूचनार्थमिदं विशेषणम्। अन्यत्र विमाना निष्कोपा। याऽलका। वो युष्माकं काले। मेघकाल इत्यर्थः। कालस्य सर्वमेघसाधारण्याद्व इति बहुवचनम्। सलिलमुद्गिरतीति सलिलोद्गारम स्रवत्सलिलधारमित्यर्थः। अभ्रवृन्दं मेघकदम्बकं कामिनी स्त्री मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैर्ग्रथितं प्रत्युप्तम् "मुक्ताजालं मौक्तिके मुक्ता" इति यादवः।

अलकमिव चूर्णकुन्तलानिव। जातावेकवचनम्। "अलकाश्चूर्णकुन्तलाः" इत्यमरः। वहति विभर्ति। अत्र कैलासस्यानुकूलनायकत्वमलकायाश्च स्वाधीनपतिकाख्यनायिकात्वं ध्वन्यते। "एकायत्तोऽनुकूलः स्यात्" इति। "प्रियोपलालिता नित्यं स्वाधीनपतिका मता" इति च लक्षयन्ति। उदाहरन्ति च—"लालयन्नलकप्रान्तान् रचयन्पत्रमञ्जरीम्। एकां विनोदयन् कान्तां छायावदनुवर्तते।" इति ॥६७॥

इति श्रीमहोपाध्यायमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीवनीसमाख्यया व्याख्यया समेते महाकविकालिदासविरचिते मेघदूतकाव्ये पूर्वमेघः समाप्तः।

पदार्थ—कामचारिन्=हे इच्छानुकूल विचरण करनेवाले मेघ! प्रणयिनः इव तस्य=प्रियतमकी तरह उस कैलासके। उत्सङ्गे=ऊपरी भागमें। स्रस्तगङ्गादुकूलाम्=खिसकगया है गंगारूप वस्त्र जिसका, ऐसी। अलकां दृष्ट्वा=अलकापुरीको देखकर। पुनः=फिर। त्वं न ज्ञास्यसे (इति) न=तुम नहीं पहचानोगे ऐसी बात नहीं। उच्चैर्विमाना=ऊँचे-ऊँचे सतमंजिले भवनोंवाली। या=जो अलकापुरी। वः काले=तुम्हारे समयमें (वर्षाकालमें)। सलिलोद्गारम् अभ्रवृन्दं =जलवरसाते हुए मेघसमूहको। मुक्ताजालग्रथितम्=मोतियोंके गुच्छे जिनमें गुंथे हैं, ऐसे। अलकं=केशोंको। कामिनी इव=नायिकाकी तरह। वहति=धारण करती है।

भावार्थ—हे स्वेच्छाचारी मेघ! जिस प्रकार कोई कामिनी, जिसका कि दुकूल (साड़ी) खिसक गया हो, अपने प्रियतमकी गोदमें वैठती है उसी प्रकार गंगारूप वस्त्र जिसका निकल गया है ऐसी, कैलासके उत्सङ्गमें स्थित उस अलकाको तुम नहीं पहचान सकोगे, यह वात नहीं है। जो कि ऊँचे-ऊँचे सातमंजिले भवनोंसे भरी हुई वर्षाकालमें जलबूँदें टपकाते हुए मेघसमूहको इस प्रकार धारण कर लेती है जैसे कि कोई विमान (मानरहित) कामिनी मोतियोंकी जालियोंसे गुंथे वालोंको धारण करती है।

टिप्पणी—सातमंजिले भवनोंको 'विमान' कहते हैं। इस श्लोकमें कैलासकी प्रणयी से, अलकाकी नायिकासे, गङ्गाकी स्रस्त दुकूलसे, सलिलकी मुक्ताजालसे और अभ्रवृन्दकी केशोंसे उपमा दी गई है ॥६७॥

पूर्वमेघकी हिन्दीव्याख्या समाप्त।

उत्तरमेघः

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥१॥

विद्युत्वन्तमिति ॥ यत्रालकायां ललिता रम्या वनिताः स्त्रियो ये[षु]
ते ॥ चित्रैर्वर्तन्त इति सचित्राः । "आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्" इत्यमरः । "[ते]
सहेति तुल्ययोगे" इति बहुव्रीहिः । "वोपसर्जनस्य" इति सहशब्दस्य समासः।
सङ्गीताय तौर्यत्रिकाय प्रहतमुरजास्ताडितमृदङ्गाः । "मुरजा तु मृदङ्गे
स्याड्ढक्कामुरजयोरपि" इति शब्दार्णवे । मणिमया मणिविकारा भुवो
येषु । अभ्रं लिहन्तीत्यभ्रंलिहान्यभ्रंकषाणि । "वहाभ्रे लिहः" इति
खश्प्रत्ययः । "अरुर्द्विष—" इत्यादिना मुमागमः । अग्राणि शिखराणि येषां
ते तथोक्ताः । अतितुङ्गा इत्यर्थः । प्रासादा देवगृहाणि । "प्रासादो देवभूभुजाम्"
इत्यमरः । विद्युतोऽस्य सन्तीति विद्युत्वन्तम् । सेन्द्रचापमिन्द्रचापवन्तम्।
स्निग्धः श्राव्यो गम्भीरो घोषो गर्जितं यस्य तम । अन्तर्गतं तोयं यस्य
तम् । तुङ्गमुन्नतं त्वां तैस्तैर्विशेषैर्ललितवनितत्वादिधर्मैस्तुलयितुं समीकर्तुमलं
पर्याप्ताः । "अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्" इत्यमरः । अत्रोपमानोप-
मेयभूतमेघप्रासादधर्माणां विद्युद्वनितादीनां यथासंख्यमन्योन्यसादृश्यान्मेघप्रासा-
दयोः साम्यसिद्धिरिति । बिम्बप्रतिबिम्बभावेनेयं पूर्णोपमा । वस्तुतो भिन्नयोः
परस्परसादृश्यादभिन्नयोरुपमानोपमेयधर्मयोः पृथगुपादानाद्बिम्बप्रतिबिम्ब-
भावः ॥ १ ॥

पदार्थ—यत्र=जहाँ । ललितवनिताः=विलासिनी सुन्दरियोंवाले । सचित्राः
= चित्रोंसे युक्त । संगीताय प्रहतमुरजः = संगीतके लिये बजते मृदंगोंवाले ।
मणिमयभुवः = मणियोंसे ... फर्शोंवाले । अभ्रंलिहाग्राः = आकाशको छूने...

छतोंवाले । प्रासादाः=महल । विद्युत्वन्तं=विजलीसे युक्त । सेन्द्रचापं=इन्द्रधनुषके सहित । स्निग्धगम्भीरघोषं=मधुर और गम्भीर ध्वनिवाले । अन्तस्तोयं=जलसे भरे हुए । तुङ्गं=ऊँचे । त्वां=तुमको । तैः तैः विशेषैः=उन उन विशेष पदार्थोंसे । तुलयितुं=वराबरी करनेमें । अलम्=समर्थ हैं ।

भावार्थ—जिस अलकापुरीके महल अपनी उन-उन विशेषताओंसे तुम्हारी समता करनेमें समर्थ हैं । जैसे—तुममें विजलीकी चंचलता है तो महलोंमें सुन्दरी रमणियोंकी चेष्टाएँ । तुममें रंगविरंगा इन्द्रधनु है तो उनमें रंगविरंगे चित्र । तुम स्निग्ध गम्भीर घोष करते हो तो वहाँ संगीतकलाका मृदंग बजता है । तुम्हारे भीतर जल भरा है तो उनके फर्श मणिमय हैं । तुम ऊँचाईपर हो तो उनकी भी छतें गगनचुम्बी हैं ।

टिप्पणी—मल्लिनाथने 'ललिताः रम्याः वनिताः स्त्रियो येषु' कहकर ललित शब्दको सामान्यतया रमणीयतावाचक माना है । हमारे विचारसे यहाँ "ललिताः ललितगुणयुक्ताः" ऐसा अर्थ किया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा । ललितका लक्षण है—"हस्तपादाङ्गविन्यासभ्रूनेत्रास्यप्रयोजितम् । सुकुमार-विधानेन ललितं तत्प्रकीर्तितम् ॥" इस प्रकार सुन्दरियोंकी चंचलताका विजलीकी चंचलतासे साम्य हो जाता है ॥१॥

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥२॥

सम्प्रति सर्वदा सर्वसंपत्तिमाह—

हस्त इति ॥ यत्रालकायां वधूनां स्त्रीणां हस्ते लीलार्थं कमलं लीला-कमलम् । शरल्लिङ्गमेतत् । तदुक्तम्—"शरत्पङ्कजलक्षणा" इति । अलके कुन्तले । जातावेकवचनम् । अलकेष्वित्यर्थः । बालकुन्दैः प्रत्यग्रमाघ्यकुसुमै-रनुविद्धम् । अनुवेधो ग्रन्थनम् । नपुंसके भावे क्तः । यद्यपि कुन्दानां शैशिरत्व-मस्ति "माघ्यं कुन्दम्" इत्यभिधानात्तथापि हेमन्ते प्रादुर्भावः शिशिरे प्रौढत्व-

मिति व्यवस्थाभेदेन हेमन्तकार्यत्वमित्याशयेन बालेति विशेषणम्। "अलकम्" इति प्रथमान्तपाठे सप्तमीप्रक्रमभङ्गः स्यात्। नाथस्तु नियतपुंलिङ्गताहानि-श्चेति दोषान्तरमाह। तदसत्। "स्वभाववक्राण्यलकानि तासाम्।" "निर्धूता-न्यलकानि पातितमुरः कृत्स्नोऽधरः खण्डितः" इत्यादिषु प्रयोगेषु नपुंसकलिङ्ग-दर्शनात्। आनने मुखे लोध्रप्रसवानां लोध्रपुष्पाणां शैशिराणां रजसा परागेण। "प्रसवस्तु फले पुष्पे वृक्षाणां गर्भमोचने" इति विश्वः। पाण्डुतां नीता श्रीः शोभा। चूडापाशे केशपाशे नवकुरवकं वासन्तः पुष्पविशेषः। कर्णे चारु पेशलं शिरीषं ग्रैष्मः पुष्पविशेषः। सीमन्ते मस्तककेशवीथ्याम्। "सीमन्तमस्त्रियां मस्तकेशवीथ्यामुदाहृतम्" इति शब्दार्णवे। तवोपगमः। मेघागम इत्यर्थः। तत्र जातं त्वदुपगमजम्। वार्षिकमित्यर्थः। नीप कदम्ब-कुसुमम्। सर्वत्रास्तीति शेषः। अस्तिर्भवतिपरः प्रथमपुरुषोऽप्रयुज्यमानोऽप्य-स्तीति न्यायात्। इत्थं कमलकुन्दादि तत्तत्कार्यसमाहाराभिधानादर्थात्सर्वर्तुसमा-हारसिद्धिः। कारणं विना कार्यस्यासिद्धेरिति भावः ॥ २ ॥

पदार्थ—यत्र = जहाँ। वधूनां = रमणियोंके। हस्ते=हाथमें। लीलाकमलं= खेलनेके लिये कमलके फूल हैं। अलके = केशोंमें। बालकुन्दानुविद्धम्=नये कुन्द पुष्पोंका गुम्फन है। आनने=मुखमें। श्रीः = शोभा। लोध्रप्रसवरजसा= लोध-पुष्पके परागसे। पाण्डुतां नीता=धवलताको पहुँचाई है। चूडापाशे= बालोंके जूड़ेमें। नवकुरवकं=ताजा शोण पुष्प है। कर्णे=कानमें। चारु शिरीषं= सुन्दर शिरीषका फूल है। च=और। सीमन्ते=मांगमें। त्वदुपगमजं=तुम्हारे आगमनपर खिलनेवाला, नीपं = कदम्बका फूल है।

भावार्थ—जिस अलकाकी रमणियाँ छहों ऋतुओंमें होनेवाले पुष्पोंका सदा उपयोग करती हैं, जैसे—उनके हाथोंमें लीला-कमल है, जो कि शरद्में होते हैं। बालोंमें कुन्द है जो हेमन्तमें होता है। मुखमें लोधके परागका चूर्ण मला गया है जो शिशिरमें होता है। जूड़ोंमें कुरवकके (ताजे झिण्टीके) फूल लगे हैं जो वसन्तमें होता है, कानमें शिरीष है जो ग्रीष्ममें खिलता है और मांगमें कदम्बका पुष्प है, जो मेघागम होने पर वर्षामें खिलता है।

टिप्पणी—इस श्लोकसे अलकाकी सर्वर्तुसंपत्ति और वहाँके निवासियोंकी अलौकिक शक्तिमत्ता तथा सुरुचि ध्वनित होती है। "अलका"के स्थानमें "अलकं" और "आनने श्रीः" का आननश्रीः यह भी पाठ मिलता है किन्तु हस्ते आदि सप्तम्यन्त पाठमें अलके और आनने पाठ ही उपयुक्त प्रतीत होता है ॥२॥

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाप्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥३॥

यत्रेति ॥ यत्रालकायां पादपा वृक्षाः। नित्यानि पुष्पाणि येषां ते तथा न त्वृतुनियमादिति भावः। अत एवोन्मत्तैर्भ्रमरैर्मुखराः शब्दायमानाः नलिन्यः पद्मिन्यो नित्यानि पद्मानि यासां तास्तथा। न तु हेमन्तवर्जित-मित्यर्थः। अत एव हंसश्रेणीभी रचितरशनाः नित्यं हंसपरिवेष्टिता इत्यर्थः। भवनशिखिनः क्रीडामयूरा नित्यं भास्वन्तः कलापा बर्हाणि येषां ते तथोक्ताः न तु वर्षास्वेव। अत एव केकाभिरुत्कण्ठा उद्ग्रीवाः। प्रदोषा रात्रयो। नित्या ज्योत्स्ना येषां ते। न तु शुक्लपक्ष एव। अत एव प्रतिहता तमसा वृत्तिर्व्याप्तिर्येषां ते च ते रम्याश्चेति तथोक्ताः ॥३॥

पदार्थ—यत्र=जहाँ। पादपाः=वृक्ष। नित्यपुष्पाः=सदा फूलोंवाले। उन्मत्त-भ्रमरमुखराः=उन्मत्त भौंरोंसे गुंजायमान। नलिन्यः=बावड़ियाँ या कमलिनियाँ। नित्यपद्मा=सदा कमलोंसे युक्त। हंसश्रेणीरचितरशना=हंसपंक्तियोंकी करधनी-सी बनी हुई। भवनशिखिनः=घरेलू मोर। नित्यभास्वत्कलापाः=सदा चमकते पंखोंसे युक्त। केकोत्कण्ठा=बोलनेमें ऊपरको गर्दन उठाये हुए। प्रदोषाः=सन्ध्यायें। नित्यज्योत्स्नाः=सदा चाँदनीवाली। प्रतिहत०=अन्धकारको दूर हटानेसे रमणीय, हैं।

भावार्थ—जिस अलकामें वृक्षोंपर सदा फूल खिले रहनेसे मस्त भौंरे गुंजायमान रहते हैं। बावड़ियोंमें सदा कमल खिले रहते हैं और हंसोंकी पंक्तियाँ करधनी-सी दीखती हैं। पालतू मोर सदा अपने चमकीले पंखोंको

फैलाये हुए ऊपरको गर्दन उठाकर कूजते रहते हैं और जहाँकी सन्ध्यायें सदा रहनेवाली चाँदनीसे अंधेरा नष्ट हो जानेके कारण रमणीय लगती हैं।

टिप्पणी—पूर्वमेघमें बता चुके हैं कि शिवजीका नित्य सन्निधान होनेके कारण उनके ललाटपर स्थित चन्द्रमाकी किरणोंसे अलका सदा प्रकाशमान रहती है। कई टीकाकारोंने इसे प्रक्षिप्त मानकर इसपर टीका नहीं की है॥३॥

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।
नाप्यन्यस्मात् प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति—
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति॥४॥

आनन्देति॥ यत्रालकायां वित्तेशानां यक्षाणाम्। "वित्ताधिपः कुवेरः स्यात्प्रभौ धनिकयक्षयोः" इति शब्दार्णवे। आनन्दोत्थमानन्दजन्यमेव नयन-सलिलम्। अन्यैर्निमित्तैः शोकादिभिर्न। इष्टसंयोगेन प्रियजनसमागमेन साध्यान्निवर्तनीयात्। न त्वप्रतीकार्यादित्यर्थः। कुसुमशरजान्मदनशरजा-दन्यस्तापो नास्ति। प्रणयकलहादन्यस्मात्कारणाद्विप्रयोगोपपत्तिर्विरह-प्राप्तिरपि नास्ति। किं च यौवनादन्यद्वयो वार्धकं नास्ति। श्लोकद्वयं प्रक्षिप्तम्॥ ४॥

पदार्थ—यत्र = जहाँ। वित्तेशानां = यक्षोंके। नयनसलिलं = आँखोंसे जल (आँसू)। आनन्दोत्थं = आनन्दसे जन्य ही होता है। अन्यैः निमित्तैः न = दूसरे कारणोंसे नहीं। तापः = संताप। इष्टसंयो॰ = प्रिय समागमसे साध्य। कुसुमशरजात् = कामजन्यसे। अन्यः न = दूसरा नहीं। प्रणयकलहात् = प्रेमके झगड़ेसे। अन्यस्मात् = सिवाय। विप्रयोगोपपत्तिः = विरहकी प्राप्ति। न = नहीं। यौवनादन्यत् = जवानीके सिवा दूसरी। वयः = अवस्था। न च खलु = नहीं होती।

भावार्थ—जिस अलकामें रहनेवाले यक्षोंके आँखोंसे आँसू आनन्दमें ही निकलते हैं, और किसी (पीड़ा आदि) कारणसे नहीं। प्रियजनोंके समागमसे मिटने योग्य कामज तापके सिवा दूसरा कोई ताप उन्हें नहीं होता। प्रणय-

कलहके अतिरिक्त कभी प्रेमियोंको विरहका अनुभव नहीं होता। यौवनके सिवा दूसरी अवस्था उनकी नहीं होती, अर्थात् वे सदा युवा ही रहते हैं।

टिप्पणी—यक्षोंके उत्कृष्ट जीवनका दिग्दर्शन कराया गया है। कुछ टीकाकार इसे भी प्रक्षिप्त मानते हैं। यह परिसंख्या अलंकारका अच्छा उदाहरण है ॥ ४ ॥

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ।
आसेवन्ते मधुरतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥५॥

यस्यामिति ॥ यस्यामलकायां यक्षा देवयोनिविशेषा उत्तमस्त्रीसहाया ललिताङ्गनासहचराः सन्तः सितमणिमयानि स्फटिकमणिमयानि चन्द्रकान्तमयानि वा अत एव ज्योतिषां तारकाणां छायाः प्रतिबिम्बान्येव कुसुमानि तै रचितानि परिष्कृतानि। "ज्योतिस्तारान्गिभाज्वालादृक्पुत्रार्थाध्वरात्मसु" वैजयन्ती। एतेन पानभूमेरम्लानशोभत्वमुक्तम्। हर्म्यस्थलान्येत्य प्राप्य। त्वद्गम्भीरध्वनिरिव ध्वनिर्येषां तेषु पुष्करेषु वाद्यभाण्डमुखेषु। "पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्यभाण्डमुखे गजे" इत्यमरः। शनकैर्मन्दमहतेषु सत्सु। एतच्च नृत्यगीतयोरप्युपलक्षणम्। कल्पवृक्षप्रसूतं कल्पवृक्षस्य काङ्क्षितार्थप्रदत्वान्मध्वपि तत्र प्रसूतम्। रतिः फलं यस्य तद्रतिफलाख्यं मधु मद्यमासेवन्ते। आदृत्य पिबन्तीत्यर्थः। "तालक्षीरसितामृतामलगुडोन्मत्तास्थिकालाह्वयादर्वीन्द्रद्रुममोरटेक्षुकदलीगुग्गुलुप्रसूनैर्युतम्। इत्थं चेन्मधुपुष्पभङ्ग्युपचितं पुष्पद्रुमूलावृतं क्वाथेन स्मरदीपनं रतिफलाख्यं स्वादु शीतं मधु।" इति मदिरार्णवे ॥५॥

पदार्थ—यस्यां = जिसमें। उत्तमस्त्रीसहायाः = सुन्दर रमणियों सहित। यक्षाः = यक्ष। सितमणि० = स्फटिक मणिसे बने। ज्योतिश्छाया० = तारोंके प्रतिबिम्ब रूप पुष्पोंसे सुशोभित। हर्म्यस्थलानि = महलोंकी अट्टालिकाओंमें। एत्य = जाकर। त्वद्गम्भीरध्वनिषु = तुम्हारे जैसे धीरशब्दवाले। पुष्करेषु =

मृदङ्गपुटोंके । शनकैः = धीरे-धीरे । आहतेषु = बजानेपर । कल्पवृक्षप्रसूतं = कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न । रतिफलं = रति ही है फल जिसका अर्थात् कामोद्दीपक; मधु = मदिराको । आसेवन्ते = सेवन करते हैं ।

भावार्थ—जिस अलकामें यक्ष लोग अपनी सुन्दरीस्त्रियोंके साथ, स्फटिकमणिसे बनी हुई और आकाशके तारोंके प्रतिबिम्ब ही जिसमें सजाये हुए फूलोंसे लग रहे हैं ऐसी, महलोंकी अटारियोंपर जाकर तुम्हारी तरह गम्भीर ध्वनिवाले मृदंगपुटोंके बजनेपर कल्पवृक्षसे निकली हुई और कामोद्दीपक मदिराका सेवन करते हैं ।

टिप्पणी—कुछ टीकाकारोंने 'शनकैः' का अर्थ 'क्षण' करके 'कभी मधु पीते हैं और कभी मृदङ्ग बजाते हैं, इस प्रकार पूरा रतिसुखका आनन्द लेते हैं ।' ऐसा अर्थ किया है । "मधुपानं मृदङ्गानां वादनं चन्द्ररश्मयः । प्रासादशिखरं रम्यं पुनरुत्तेजयेत्स्मरम्" इस उक्तिके अनुसार सारा सुख उन यक्षोंको उक्त श्लोकमें प्राप्त है । रतिफल एक विशेष प्रकारके मद्यका नाम भी है जिसे मल्लिनाथने मदिरार्णवसे संजीवनीमें उद्धृत किया है ॥ ५ ॥

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः ।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥६॥

मन्दाकिन्या इति ॥ यत्रालकायाममरैः प्रार्थिताः । सुन्दर्य इत्यर्थः । कन्या यक्षकुमार्यः । "कन्या कुमारिकानार्योः" इति विश्वः । मंदाकिन्या गंगायाः सलिलेन शिशिरैः शीतलैर्मरुद्भिः सेव्यमानाः सत्यः । तथानुतटं तटेषु रोहन्तीत्यनुतटरुहः । क्विप् । तेषां मन्दाराणां छायययानातपेन वारितोष्णाः शमितातपाः सत्यः । कनकस्य सिकता मुष्टिभिर्निक्षेपेन गूढैः संवृतैरतएवान्वेष्टव्यैर्मृग्यैर्मणिभी रत्नैः संक्रीडन्ते । गुप्तमणिसंज्ञया दैशिक्या क्रीडया सम्यक्क्रीडन्तीत्यर्थः । "क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च" इत्यात्मनेपदम् । "रत्नादिभिर्वालुकादौ गुप्तैरन्वेष्टव्यकर्मभिः । कुमारीभिः कृता क्रीडा नाम्ना

गुप्तमणिः स्मृता ।। रासक्रीड़ा गूढमणिर्गुप्तकेलिस्तु लायनम् । पिच्छकन्दुकदण्डाद्यैः स्मृता दैशिककेलयः ।।" इति शब्दार्णवे ।।६।।

पदार्थ—यत्र=जहाँ । अमरप्रार्थिता:=देवताओंसे चाही गईं । मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः=स्वर्गङ्गाके जलसे शीतल । मरुद्भिः=वायुओंसे । सेव्यमानाः=सेवित । अनुतटरुहां=किनारोंपर उगे हुए । मन्दाराणां=मन्दार वृक्षोंकी । छायया=छायासे । वारितोष्णाः=दूर हो गई है गर्मी जिनकी (ऐसी) । कन्याः=यक्ष-कन्याएँ । कनकसिकता०=सुनहरी बालूको मुट्ठीमें रखकर छिपाये हुए । अन्वेष्टव्यैः=खोजने योग्य । मणिभिः=रत्नोंसे । संक्रीडन्ते=खेल करती हैं ।

भावार्थ— जिस अलकामें, स्वर्गङ्गाकी शीतलवायु जिनकी सेवा कर रहा है, मन्दारके वृक्षोंकी छाया जिनपर पड़ती हुई धूपको रोक रही है और देवता जिनके लिये तरस रहे हैं, ऐसी यक्षवालाएँ सुनहरी बालूकी मुट्ठियोंमें रत्न छिपाकर उन्हें खोजनेके खेल कर रही हैं ।

टिप्पणी—इस प्रकारका खेल गूढ़मणि या गुप्तमणि कहा जाता था । आजभी पर्वतीय बच्चे आड़ू या खुमानीकी गुठलियोंको मुट्ठीमें दबाकर इसे खेला करते हैं । यह दैशिक खेल है ।।३।।

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ।।७।।

नीवीति ।। यत्रालकायामनिभृतकरेषु चपलहस्तेषु प्रियेषु नीवी वसनग्रन्थिः । "नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि" इति विश्वः । सैव बन्धो नीवीबन्धः । चूतवृक्षवदपौनरुक्त्यम् । तस्योच्छ्वसितेन त्रुटितेन शिथिलं क्षौमं दुकूलं रागादाक्षिपत्स्वाहरत्सु सत्सु ह्रीमूढानां लज्जाविधुराणाम् । बिम्बं बिम्बिकाफलम् । "बिम्बं फले बिम्बिकायाः प्रतिबिम्बे च मण्डले" इति विश्वः । बिम्बमिवाधरो यासां तासां बिम्बाधराणां स्त्रीविशेषाणाम् । "विशेषाः कामिनीकान्तभीरुबिम्बाधराङ्गनाः" इति शब्दार्णवे । चूर्णस्य

कुंकुमादेर्मुष्टिः । अर्चिर्भिर्मयूखैस्तुङ्गान् । "अर्चिर्मयूखशिखयोः" इति विश्वः। रत्नान्येव प्रदीपानभिमुखं यथा तथा प्राप्यापि विफलप्रेरणा दीपनिर्वापणाक्षमत्वान्निष्फलप्रक्षेपा भवति। अत्राङ्गनानां रत्नप्रदीपनिर्वापणवृत्त्या मौग्ध्यं व्यज्यते ॥७॥

पदार्थ—यत्र=जहाँ। अनिभृतकरेषु प्रियेषु=चंचल हाथोंवाले प्रियतमों द्वारा। नीवीबन्धो०=कमरकी गाँठ खोलदेनेसे ढीलेहुए। क्षौमं=रेशमी वस्त्रको। रागात् =प्रेमसे। आक्षिपत्सु=हटा देनेपर। ह्रीमूढानां=लज्जासे विवश। बिम्बाधराणां= बिम्बके समान अधरोंवाली स्त्रियोंकी। चूर्णमुष्टिः=धूलकी मुट्ठी। अर्चिस्तुङ्गान् =ऊँची लौवाले। रत्नदीपान्=रत्नदीपकोंपर। अभिमुखं=सामने। प्राप्य अपि= पहुँचकर भी। विफलप्रेरणा=व्यर्थ हुआ है फैंकना जिसका, ऐसी। भवति=होजाती है।

भावार्थ—जिस अलकामें अनुरागके कारण प्रेमियोंके शरारती हाथों द्वारा कमरबन्दकी गाँठ खोलदेनेसे शिथिल हुई साड़ियों को हटा देनेपर अत्यन्त लज्जित बिम्बोष्ठी सुन्दरियाँ, अँधेरा करदेनेके विचारसे धूलकी मुट्ठी ऊँची-लौवाले दीपकोंपर फैंकती हैं, किन्तु उनका यह प्रयत्न व्यर्थ जाता है। क्योंकि उन दीपकोंसे अग्निकी ज्योति नहीं निकलती जो धूलसे बुझजाय, वे तो रत्नोंकी किरणें हैं जो तीव्र प्रकाश कर रही हैं।

टिप्पणी—चूर्णमुष्टिसे अभिप्राय यहाँ मुट्ठीमें भरे हुए देह आदि पर लगानेवाले सुगन्धित चूर्ण-मुष्टि (पाउडर)से है। 'रागात्'के स्थानमें 'कामात्' और 'अभिमुखमपि' का 'अभिमुखगतान्'भी पाठान्तर है ॥७॥

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः।
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥८॥

नेत्रेति ॥ हे मेघ, नेत्रा प्रेरकेण सततगतिना सदागतिना वायुना। "मातरिश्वा सदागतिः" इत्यमरः। यस्या अलकाया विमानानां सप्तभूमि-

भवनानामग्रभूमीरुपरिभूमिका नीता प्रापिताः । त्वमिव दृश्यन्त इति त्वादृशः । त्वत्सदृशा इत्यर्थः । 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च" इति कञ्प्रत्ययः । जलमुचो मेघाः । आलेख्यानां सच्चित्राणाम् । "चित्रं लिखितरूपाढ्यं स्यादालेख्यं तु यत्नतः" इति शब्दार्णवे । नवजलकणैर्दोषं स्फोटमुत्पाद्य सद्यः शङ्कास्पृष्टा इव सापराधत्वाच्छङ्कयाविष्टा इव । "शङ्का वितर्कभययोः" इति शब्दार्णवे । धूमोद्गारस्य धूमनिर्गमस्यानुकृतावनुकरणे निपुणाः कुशला जर्जरा विशीर्णाः सन्तो जालमार्गैर्गवाक्षरन्ध्रैर्निष्पतन्ति निष्क्रामन्ति । यथा केनचिदन्तःपुरसंचारवता दूतेन गूढवृत्त्या रहस्यभूमिं प्रापितास्तत्र स्त्रीणां व्यभिचारदोषमुत्पाद्य सद्यः साशङ्काः क्लृप्तवेशान्तरा जारा क्षुद्रमार्गैर्निष्क्रामन्ति तद्वदिति ध्वनिः । प्रकृतार्थे शङ्कास्पृष्टा इवेत्युत्प्रेक्षा ॥८॥

पदार्थ—नेत्रा=प्रेरक । सततगतिना=वायुसे । यद्विमानाग्रभूमीः=जिसके सातमंजिले भवनोंकी छतोंपर । नीताः = ले जाये गये । त्वादृशाः = तुम जैसे । जलमुचः=मेघ । नवजलकणैः=छोटी-छोटी जलकी फुहियोंसे । आलेख्यानां = चित्रोंको । दोषमुत्पाद्य=विकृत करके । शङ्कास्पृष्टा इव=डरे हुए से । धूमोद्गा० =धुंआ निकलनेका अनुकरण करनेमें चतुर । सद्यः=तत्काल । जर्जराः =शीर्ण होकर । जालमार्गैः=झरोखोंसे । निष्पतन्ति=निकल जाते हैं ।

भावार्थ—आगे बढ़नेकी प्रेरणा देनेवाले वायुसे जिस अलकाके सातमंजिले महलोंकी छतोंपर ले जाये गये तुम जैसे मेघ, छोटी-छोटी पानीकी फुहियोंसे वहाँके भित्ति-चित्रोंको विकृत करके, पकड़े जानेकी डरसे जैसे, धुएँकी तरह बनकर तत्काल रोशनदानोंसे बिखर-बिखरकर निकल जाते हैं ।

टिप्पणी—मल्लिनाथने इस श्लोकमें जिस ध्वनिका निर्देश किया है हमारे विचारसे वह अत्यन्त ही अनुपयुक्त और जुगुप्सास्पद है । जब कि प्रेमियोंके लीलास्थलमें घुसकर भित्तिचित्रोंको विकृत कर देना ही एक बड़ा अपराध है और उसीकी शंकासे भागना पर्याप्त है । यदि ठोंक-पीटकर वायुमें दूतका, मेघमें जारका आरोप करें भी तो आलेख्य को नायिका नहीं मान सकते, भग्नप्रक्रमत्व दोष हो जायगा ॥८॥

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानामङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥९॥

यत्रेति ॥ यत्रालकायां निशीथेऽर्धरात्रे । "अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ" इत्यमरः । त्वत्संरोधस्य मेघावरणस्यापगमेन विशदैर्निर्मलैश्चन्द्रपादैश्चन्द्रमरीचिभिः । "पादा रश्म्यंघ्रितुर्यांशाः" इत्यमरः । स्फुटजललवस्यन्दिन ऊल्वणाम्बुकणस्राविणस्तन्तुजालावलम्बा वितानलम्बिसूचकाः पुञ्जाधाराः तद्गणगुम्फिता इत्यर्थः । चन्द्रकान्ताश्चन्द्रकान्तमणयः प्रियतमानां भुजैरालिङ्गनेपूच्छ्वासितानां प्रशिथिलीकृतानाम् । श्रान्त्या जलसेकाय वा शिथिलितालिङ्गनानामिति यावत् । स्त्रीणां सुरतजनितामङ्गग्लानिं शरीरखेदम् । अवयवानां म्लानतामिति यावत् । व्यालुम्पन्त्यपनुदन्ति ॥९॥

पदार्थ—यत्र=जहाँ । निशीथे=आधीरातमें । त्वत्संरोधा०=तुम्हारा अवरोध हट जानेसे निर्मल । चन्द्रपादैः=चन्द्रमाकी किरणोंसे । स्फुटजललव०=स्पष्ट ही जलकणोंको टपकाती हुई । तन्तुजालावलम्बाः=झालरोंसे लटकती हुई । चन्द्रकान्ताः=चन्द्रकान्त मणियाँ । प्रियतमभुजा०=प्रियतमोंकी भुजाओंके गाढ़ आलिंगनसे उसाँसें भरती हुई । स्त्रीणां=स्त्रियोंकी । सुरतजनितां=संभोगजन्य । अङ्गग्लानिं=देहकी थकावटको । व्यालुम्पन्ति=दूर करती हैं ।

भावार्थ—जिस अलकामें अर्द्धरात्रिके समय चन्द्रमाके सामनेसे तुम्हारे हट जानेपर विमल चाँदनीके सम्पर्कसे स्वच्छ जलकणोंको टपकानेवाली, झालरोंमें लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियाँ प्रियतमोंकी भुजाओंके गाढ़ आलिङ्गनोंसे उसाँसें भरती हुई नायिकाओंकी संभोगजन्य अङ्गग्लानिको दूर कर देती हैं ।

टिप्पणी—चन्द्रकिरणोंके स्पर्शसे चन्द्रकान्त मणियाँ पसीज उठती हैं और उनसे जल चूने लगता है और सूर्यकिरणों के स्पर्शसे सूर्यकान्तसे आग बरसने लगती है, ऐसा प्रसिद्ध है । "प्रियतमभुजोच्छ्वासितानाम्" यह भी पाठान्तर है ॥९॥

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्द्धम् ।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्या सहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥१०॥

अक्षय्येति ॥ यत्रालकायाम् । क्षेतुं शक्याः क्षय्याः । "क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे" इति निपातः । ततो नञ्समासः । भवनानामन्तरन्तर्भवनम् । "अव्ययं विभक्ति—" इत्यादिनाव्ययीभावः । अक्षय्या अन्तर्भवने निधयो येषां ते तथोक्ताः । यथेच्छभोगसम्भावनार्थमिदं विशेषणम् । विबुधवनिता अप्सरसस्ता एव वारमुख्या वेश्यास्ता एव सहाया येषां ते तथोक्ताः । "वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाथ सा जनैः । सत्कृता वारमुख्या स्यात्" इत्यमरः । बद्धालापाः सम्भावितसंलापाः कामिनः कामुकाः प्रत्यहमहन्यहनि । "अव्ययं विभक्ति—" इत्यादिना समासः । रक्तो मधुरः कण्ठः कण्ठध्वनिर्येषां ते तैः सुन्दरकण्ठध्वनिभिर्धनपतियशः कुबेरकीर्तिमुद्गायद्भिरुच्चैर्गायनशीलैः । देवगानस्य गान्धारग्रामत्वात्तारतरं गायद्भिरित्यर्थः । किन्नरैः सार्धं सह । विभ्राजस्येदं वैभ्राजम् । वैभ्राजमित्याख्या यस्य तद्वैभ्राजाख्यम् । "विभ्राजेन गणेन्द्रेण त्रातं वैभ्राजमाख्यया" इति शम्भुरहस्ये । चैत्ररथस्य नामान्तरमेतत् । बहिरुपवनं बाह्योद्यानं निर्विशन्त्यनुभवन्ति ॥१०॥

पदार्थ—यत्र=जहाँ । अक्षय्यान्त०=अक्षय हैं भवनोंके भीतरकी निधियाँ जिनकी ऐसे । विबुधवनिता०=अप्सरा रूप वेश्याओंके साथ । बद्धालापः=शुरू किये हैं वार्तालाप जिन्होंने, ऐसे । कामिनः=कामी लोग । प्रत्यहं=प्रतिदिन । रक्तकण्ठैः=मधुरध्वनिवाले । धनपतियशः उद्गायद्भिः=कुबेरका यश गाते हुए । किन्नरैः सार्धं=किन्नरोंके साथ । वैभ्राजाख्यं=वैभ्राज नामक । बहिरुपवनं=बाहरी उद्यानमें । निर्विशन्ति=आनन्द करते हैं ।

भावार्थ—जिस अलकामें, अक्षयनिधियाँ जिनके घरोंमें भरी हैं, ऐसे कामीजन अप्सरारूप गणिकाओंके साथ बातें करते हुए, सुरीले कंठवाले और कुबेरका यश गाते हुए किन्नरोंके साथ वैभ्राज नामक उद्यानका आनन्द लेरहे हैं ।

टिप्पणी—"शम्भुरहस्य" के अनुसार विभ्राजनामक गणसे रचित होनेके कारण इस उद्यानका नाम वैभ्राज पड़ गया था। वस्तुतः चित्ररथ नामक कुबेरके प्रसिद्ध उद्यानका ही यह नामान्तर है। निर् उपसर्गके संयोगसे प्रवेशार्थक विश धातुका आनन्द करना अर्थ होता है ॥१०॥

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥११॥

गतीति ॥ यत्रालकायां कामिनीनामभिसारिकाणाम् । निशि भवो नैशो मार्गः सवितुरुदये सति गत्या गमनेनोत्कम्पश्चलनं तस्माद्धेतोरलकेभ्यः पतितैर्मन्दारपुष्पैः सुरतरुकुसुमैः। तथा पत्राणां पत्रलतानां छेदैः खण्डैः। पतितैरिति शेषः। तथा कर्णेभ्यो विभ्रश्यन्तीति कर्णविभ्रशीनि तैः कनकस्य कमलैः षष्ठ्या विवक्षितार्थलाभे सति मयटा विग्रहेऽध्याहारदोषः। एवमन्यत्रा-प्यनुसन्धेयम्। तथा मुक्ताजालैर्मौक्तिकसरैः। शिरोनिहितैरित्यर्थः। तथा स्तनयोः परिसरः प्रदेशस्तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैर्हारैश्च सूच्यते ज्ञाप्यते। मार्गे पतितमन्दारकुसुमादिलिङ्गैरयमभिसारिकाणां पन्था इत्यनुमीयत इत्यर्थः ॥११॥

पदार्थ—यत्र=जहाँ। कामिनीनां=अभिसारिकास्त्रियोंका। नैशो मार्गः= रात्रिमें अभिसरणका मार्ग। सवितुः उदये=सूर्योदय होनेपर। गत्युत्कम्पात्= चलनेमें हिलने-डुलने से। अलकपतितैः=बालोंसे गिरे हुए। मन्दारपुष्पैः= मन्दारके फूलोंसे। पत्रच्छेदैः=पत्तोंके टुकड़ोंसे। कर्णविभ्रंशिभिः=कानसे गिरे हुए। कनककमलैः=स्वर्णकमलोंसे। मुक्ताजालैः=मोतियोंकी लड़ोंसे। स्तनपरि-सर० = स्तनप्रदेशमें टूट गये हैं तागे जिनके ऐसे। हारैः = हारोंसे। सूच्यते= सूचित हो जाता है।

भावार्थ—जिस अलकामें, सुन्दरियोंद्वारा रात्रिमें अपने प्रियतमोंके पास जानेके मार्ग, सूर्योदय होनेपर स्पष्ट मालूम हो जाते हैं। क्योंकि जल्दी चलनेमें शरीर हिलनेसे बालोंसे गिरे मन्दार पुष्प और कानोंपरके सुनहरे कमलोंकी

पंखड़ियाँ उन मार्गों में गिरी रहती हैं, जूड़ोंपर की जालियोंसे और ऊँचे स्तनोंपर टकराकर टूटे हुए हारोंसे मोती बिखरे रहते हैं।

टिप्पणी—मल्लिनाथने "स्तनयोःपरिसरः प्रदेशः तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैः हारैः" यह अर्थ किया है, किन्तु भरतसेनने 'स्तनपरिसरैः' पाठ और "स्तनयोः परिसरैः वेष्टनैः" यह अर्थ करके इसे 'मुक्ताजालैः'का विशेषण माना है। यह अपेक्षाकृत अच्छा प्रतीत होता है ॥११॥

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
सभ्रूभङ्गं प्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै—
रतस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥१२॥

मत्वेति ॥ यत्र लकायां मन्मथः कामः । धनपतेः कुबेरस्य सखेति धनपतिसखः । "राजाहःसखिभ्यष्टच् ।" तं देवं महादेवं साक्षाद्वसन्तं सखिस्नेहान्निजरूपेण वर्तमानं मत्वा ज्ञात्वा भयाद्धालेक्षणभयात्षट्पदा एव ज्या मौर्वी यस्य तं चापं प्रायः प्राचुर्येण न वहति न बिभर्ति । कथं तर्हि तस्य कार्यसिद्धिरत आह—सभ्रूभङ्गेति । तस्य मन्मथस्यारम्भः कामिजनविजयव्यापारः सभ्रूभङ्गं प्रहितानि प्रयुक्तानि नयनानि दृष्टयो येषु तैस्तथोक्तैः कामिन एव लक्ष्याणि तेष्वमोघैः । सफलप्रयोगैरित्यर्थः । मन्मथचापोऽपि क्वचिदपि मोघः स्यादिति भावः । चतुराश्च ता वनिताश्च तासां विभ्रमैर्विलासैरेव सिद्धो निष्पन्नः । यदनर्थकरं पाक्षिकफलं च तत्प्रयोगाद्वरं निश्चितसाधनप्रयोग इति भावः ॥ १२ ॥

पदार्थ—यत्र = जहाँ । मन्मथः = कामदेव । धनपतिसखं = कुबेरके मित्र । देवं=शिवजीको । साक्षाद्वसन्तं मत्वा=प्रत्यक्षरूपसे रहते हुए जानकर । भयात्= डरसे । षट्पदज्यं=भ्रमरोंकी डोरीवाले । चापं=धनुषको । प्रायः=अधिकतर । न वहति = नहीं धारण करता । सभ्रूभङ्गं=मटकती भौंहोंके साथ । प्रहितनयनैः= फेंकगये कटाक्षोंवाले । कामिलक्ष्येषु=कामुक-जनरूप-लक्ष्यों (निशानों)पर । अमोघैः=व्यर्थ न जानेवाले । चतुरवनिताविभ्रमैरेव=चतुरस्त्रियोंके विलासोंसे ही । तस्य आरम्भः=उसका कार्य । सिद्धः (भवति) = सिद्ध हो जाता है ।

भावार्थ—जिस अलकामें कुबेरके मित्र शंकरजीको प्रत्यक्षरूपसे वास करते जानकर डरके मारे कामदेव प्रायः अपने भौंरोंकी डोरीवाले धनुषका प्रयोग नहीं करता। उसका काम मटकती भौंहोंके साथ फैंकीगई बांकी चितवनोंवाले और कामिजनरूप निशानोंपर अचूक, चतुर कामिनियोंके हाव-भावोंसे ही सिद्ध हो जाता है।

टिप्पणी—शिवजीने कामदेवको भस्म किया था अतः उसका उनसे डरना स्वाभाविक ही है। कामदेवका धनुष फूलोंका है, उसपर मंडरानेवाले भौंरे इस धनुषकी डोरी है, अरविन्द अशोक, आम, मालती, नीलोत्पल इन पांच फूलोंके उसके बाण होते हैं, ऐसा प्रसिद्ध है। इस श्लोकमें कामिनियोंकी टेढ़ी भौंहें ही धनुष हैं, उनसे निकलते कटाक्ष ही बाण हैं और कामिजन अचूक लक्ष्य हैं। इस प्रकार विना धनुषको धारण किये इन्हींसे उसका कार्य सिद्ध हो जाता है, यह अभिप्राय है॥१२॥

वासश्चित्रं मधुनयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः॥१३॥

वास इति॥ यस्यामलकायां चित्रं नानावर्णं वासो वसनम्। परिधेयमण्डनमेतत्। नयनयोर्विभ्रमाणामादेश उपदेशे दक्षम। अनेन विभ्रमद्वारा मधुनो मण्डनत्वमनुसन्धेयम्। तच्च मण्डनादिवद्देहधार्येऽन्तर्भाव्यम्। मधु मद्यम्। किसलयैः पल्लवैः सह पुष्पोद्भेदम्। उदयं चेत्यर्थः। इदं तु कचधार्यम्। भूषणानां विकल्पान्विशेषान्। देहधार्यमेतत्। तथा चरणकमलयोर्न्यासस्य योग्यम। रज्यतेऽनेनेति रागो रञ्जकद्रव्यम्। लाक्षैव रागस्तं लाक्षारागं च। चकारोऽङ्गरागादिविलेपनमण्डनोपलक्षणार्थः। सकलं सर्वम्। चतुर्विधमपीत्यर्थः। अबलामण्डनं योषित्प्रसाधनजातमेकः कल्पवृक्ष एव सूते जनयति। न तु नानासाधनसम्पादनप्रयास इत्यर्थः॥१३॥

पदार्थ—यस्यां = जिसमें। एकः कल्पवृक्षः = एक ही कल्पवृक्ष। चित्रं

वासः=विचित्र वस्त्रोंको । नयनयोः विभ्रमादेशदक्षं=आँखोंको विलासोंकी शिक्षा देनेमें चतुर । मधु=मद्यको । किसलयैः सह=कोंपलोंके सहित । पुष्पोद्भेदं= फूलोंके उद्भवको । भूषणानां विकल्पान् = आभूषणोंके विभिन्न प्रकारोंको । चरणकमलन्यासयोग्यं=कमलसदृश चरणोंमें लगानेयोग्य । लाक्षारागं=महावरके रंगको । सकलं=सम्पूर्ण । अबलामण्डनं=स्त्रियोंकी अलंकरणसामग्रीको । सूते= उत्पन्न करता है ।

भावार्थ—जिस अलकामें केवल कल्पवृक्षसे ही रंग-विरंगे वस्त्र, आँखोंमें खुमारी लानेवाला मद्य, पल्लवोंसहित पुष्प, विभिन्न प्रकारके आभूषण, कमल-जैसे कोमल चरणोंमें लगानेका आलता आदि स्त्रियोंकी सारी अलंकरणसामग्री उत्पन्न हो जाती है ।

टिप्पणी—"रसाकर" के अनुसार स्त्रियोंके आभूषण चार प्रकारके होते हैं—"कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम् । चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च दैशिकम् ॥" इस प्रकार ये चारों प्रकारके आभरण अलकाकी स्त्रियोंको केवल एक कल्पवृक्षसे ही प्राप्त हो जाते थे । जैसे-कचधार्य-पुष्पोद्भेद । देहधार्य-भूषणोंके विकल्प । परिधेय-क्षौमवसन और विलेपन-लाक्षाराग । इसके पूर्व "आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतम्"में कल्पवृक्षसे बननेवाले मद्यको बता चुके हैं । इस तरह कल्पवृक्ष सारी प्रसाधन-सामग्रीका जनक था, जबकि अन्यत्र "क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा·········लाक्षारसः केनचित्···" आदि श्लोकमें भिन्न-भिन्न सामग्रीकी उपलब्धि भिन्न-भिन्न वृक्षोंसे होती थी ॥१३॥

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
तस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्द्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥१४॥

इत्थमलकां वर्णयित्वा तत्र स्वभवनस्याभिज्ञानमाह—

तत्रेति ॥ तत्रालकायां धनपतिगृहात् कुबेरगृहादुत्तरेणोत्तरस्मिन्देशे

"एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः" इत्येनप्प्रत्ययः "एनपा द्वितीया" इति द्वितीया। "गृहाः पुंसि च भूम्न्येव" इत्यमरः। अथवा "उत्तरेण" इति नैन-प्रत्ययान्तं किन्तु "तोरेणन" इत्यस्य विशेषणं तृतीयान्तम्। धनपतिगृहादु-त्तरस्यां दिशि यत्तोरणं वहिर्द्वारं तेन लक्षितमित्यर्थः। अस्माकमिदमस्मदीयम्। "वृद्धाच्छः" इति पक्षे छप्रत्ययः। आगारं गृहम्। सुरपतिधनुश्चारुणा मणिमयत्वादभ्रंकषत्वाच्चेन्द्रचापसुन्दरेण तोरणेन वहिर्द्वारेण दूराल्लक्ष्यं दृश्यम्। अनेनाभिज्ञानेन दूरत एव ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः। अभिज्ञानान्तरमाह—यस्यागार-स्योपान्ते प्राकारान्तःपार्श्वदेशे मे मम कान्तया वर्धितः पोषितः कृतकतनयः कृत्रिमसुतः। पुत्रत्वेनाभिमन्यमान इत्यर्थः। हस्तेन प्राप्यैर्हस्तावचेयैः स्तवकैर्गुच्छैः नमितः। "स्याद्गुच्छकस्तु स्तवकः" इत्यमरः। वालो मन्दारवृक्षः कल्पवृक्षोऽस्तीति शेषः ॥१४॥

पदार्थ - यत्र=वहाँ। धनपतिगृहान् = कुबेरके घरसे। उत्तरेण=उत्तरकी ओर। सुरपतिधनुश्चारुणा = इन्द्रधनुषके समान रंग-विरंगे। तोरणेन = वहिर्द्वारसे। दूराल्लक्ष्यं=दूरसे ही दीखपड़नेवाला। अस्मदीयं=हमारा। आगारं=घर है। यस्य उपान्ते=जिसके समीपमें ही। मे कान्तया वर्धितः=मेरी प्रियासे पाल-पोसकर वढ़ाया गया। कृतकतनयः=मानाहुआ पुत्र। हस्तप्राप्यस्तवकनमितः=हाथसे छूनेयोग्य गुच्छोंसे झुकाहुआ। वालमन्दारवृक्षः=छोटासा मदारका वृक्ष है।

भावार्थ— उसी अलकामें कुबेरके घरसे उत्तरकी ओर इन्द्रधनुषके समान सुन्दर रंग-विरंगे फाटकसे जो दूरसे ही पहिचाना जाता है, ऐसा मेरा घर है। जिसके पासमें एक छोटासा मन्दार वृक्ष है। उसे मेरी प्रियाने पुत्र मानकर पाल-पोसकर वड़ा किया है और अब इतना वड़ा होगया है कि उसके झुके हुए गुच्छे ऊपर हाथ उठाकर छुए जा सकते हैं।

टिप्पणी— गृह शब्दका सामान्यतः नपुंसकलिङ्गमें ही प्रयोग होता है किन्तु "गृहाःपुंसि च भूम्न्येव" इस अमरकोशके अनुसार केवल बहुवचनमें पुंलिंगमें भी प्रयोग होता है। अन्तर यही है कि "गृहं" से केवल भवन मात्र विवक्षित है और "गृहाः" से अहातेके अन्दर आनेवाला बगीचा आदि भी। वृक्ष आदि प्राकृतिक पदार्थोंके साथ पुत्रादिकी भावनासे प्रेमप्रदर्शन भारतीय

संस्कृतिकी मौलिक विशेषता है, जिसका संस्कृतसाहित्यमें, विशेषतः कालिदासकी रचनाओंमें अत्यधिक प्रयोग हुआ है। अभिज्ञान शाकुन्तलमें तो कविका यह प्रकृतिप्रेम चरमसीमाको पहुँचा है। यहाँ भी 'कृतकतनयः'का यही अभिप्राय है ॥ १४ ॥

वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥१५॥

इतः परं चतुर्भिः श्लोकैरभिज्ञानान्तरमाह—

वापीति ॥ अस्मिन् मदीयागारे मरकतशिलाभिर्बद्धः सोपानमार्गो यस्याः सा तथोक्ता । विदूरे भवा वैदूर्याः । "विदूराञ्ञ्यः" इति ञ्यप्रत्ययः । वैदूर्याणां विकारा वैदूर्याणि । विकारार्थेऽण्प्रत्ययः । स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तैर्हैमैः सौवर्णैर्विकचकमलैश्छन्ना वापी च । अस्तीति शेषः । यस्या वाप्यास्तोये कृतवसतयः कृतनिवासा हंसास्त्वां मेघं प्रेक्ष्यापि व्यपगतशुचो वर्षाकालेऽपि व्यपगतकलुषजलत्वाद्वीतदुःखाः सन्तः सन्निकृष्टं सन्निहितम् । सुगममपीत्यर्थः । मानसं मानससरो नाध्यास्यन्ति नोत्कण्ठया स्मरिष्यन्ति । "आध्यानमुत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम्" इति काशिकायाम् ॥ १५ ॥

पदार्थ—अस्मिन्=इस घरमें। मरकत०=मरकतमणि (पन्ना)की शिलाओंसे बनी हैं सीढ़ियाँ जिसकी, ऐसी। स्निग्धवैदूर्यनालैः=चिकनी वैडूर्यमणिकी नालवाले। हैमैः=सुनहरे। विकचकमलैः=विकसित कमलोंसे। छन्ना=ढकी हुई। वापी च=बावड़ी भी है। यस्याः तोये=जिसके जलमें। कृतवसतयः=किया है निवास जिन्होंने, ऐसे। हंसाः=हंस। त्वां प्रेक्ष्य अपि=तुमको देखकर भी। व्यपगतशुचः=शोकरहित हुए जैसे। सन्निकृष्टं=समीपवर्ती। मानसं=मानससरोवरको। न आध्यासन्ति=जानेकी उत्कण्ठा नहीं करते।

भावार्थ—उस मेरे घरमें एक बावड़ी भी है, जिसकी सीढ़ियाँ मरकतमणिसे

बनी हैं। जो चिकने वैडूर्यमणिके समान डण्डीवाले, खिले हुए सुनहरे कमलोंसे भरी रहती है और जिसके निर्मल जलमें आनन्दसे रहनेवाले हंस वर्षाकाल आनेपर भी समीपवर्ती मानस सरोवरमें जानेकी व्यग्रता नहीं दिखलाते।

टिप्पणी—पूर्वश्लोकमें वहिर्द्वार (फाटक)की पहिचान बताई थी। इसमें वापीसे दूसरी पहिचान बताई है। इस वापीमें वैडूर्यके से लाल-लाल डंडियों-वाले सुनहरे कमल खिले रहते हैं। वर्षाकालमें सब जगहका पानी गदला हो जाता है अतः हंस उड़कर मानस सरोवरमें चले जाते हैं, क्योंकि वहाँका पानी सदा स्वच्छ रहता है। परन्तु यक्षके घरकी इस बावड़ीका जल इतना स्वच्छ और रमणीय है कि पास ही होनेपर भी हंसोंको मानससरोवरमें जानेकी चिन्ता नहीं रहती और वे उसीमें प्रसन्न रहते हैं॥ १५॥

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे! चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि॥१६॥

तस्या इति॥ तस्या वाप्यास्तीरे पेशलैश्चारुभिः। "चारौ दक्षे च पेशलः" इत्यमरः। इन्द्रनीलै रचितशिखरः। इन्द्रनीलमणिमयशिखर इत्यर्थः। कनककदलीनां वेष्टनेन परिधिना प्रेक्षणीयो दर्शनीयः क्रीडाशैलः। अस्तीति शेषः। हे सखे! उपान्तेषु प्रान्तेषु स्फुरितास्तडितो यस्य तत्तथोक्तम्। इदं विशेषणं कदलीसाम्यार्थमुक्तम्। इन्द्रनीलसाम्यं तु मेघस्य स्वाभाविकमित्यनेन सूच्यते। त्वां प्रेक्ष्य मद्गेहिन्याः प्रिय इति हेतोः तस्य शैलस्य मद्गृहिणी-प्रियत्वाद्धेतोरित्यर्थः। कातरेण भीतेन चेतसा। भयं चात्र सानन्दमेव। "वस्तूनामनुभूतानां तुल्यश्रवणदर्शनात्। श्रवणात्कीर्तनाद्वापि सानन्दा भीर्यथा भवेत्।" इति रसाकरे दर्शनात्। तमेव क्रीडाशैलमेव स्मरामि। एवकारो विषयान्तरव्यवच्छेदार्थः। सदृशवस्त्वनुभवादिष्टार्थस्मृतिर्जायत इत्यर्थः। अत एवात्र स्मरणाख्योऽलंकारः। तदुक्तम्—"सदृशानुभवादन्यस्मृतिः स्मरणमुच्यते" इति। निरुक्तकारस्तु "त्वां तमेव स्मरामि" इति योजयित्वा मेघे शैलत्वारो-

पमाचष्टे। तदसंगतम्। अद्रयाकारारोपस्य पुरोवर्तिन्यनुभवात्मकत्वेन स्मरतिशब्दप्रयोगानुपपत्तेः शैलत्वभावना। स्मृतिरित्यपि नोपपद्यते। भावनायाः स्मृतित्वे प्रमाणाभावादनुभवायोगात्सादृश्योपन्यासस्य वैयर्थ्याच्च विसदृशेऽपि शालग्रामे हरिभावनादर्शनादिति ॥ १६ ॥

पदार्थ—तस्याः तीरे=उसके किनारेपर। पेशलैः=सुन्दर। इन्द्रनीलैः= नीलमोंसे। रचितशिखरः=बनाई हैं चोटियाँ जिसकी, ऐसा। कनककदली० = सुनहरे केलोंकी बाड़से दर्शनीय। क्रीडाशैलः=क्रीड़ापर्वत है। सखे = मित्र ! मद्गेहिन्या प्रिय इति=वह मेरी स्त्रीको अत्यन्त प्रिय है, इसलिये। उपान्तस्फुरिततडितं=किनारोंमें चमकती हुई बिजलीवाले। त्वां प्रेक्ष्य=तुमको देखकर। कातरेण चेतसा=अधीर मनसे। तमेव=उसीको। स्मरामि=स्मरण करता हूँ।

भावार्थ—उस बावड़ीके किनारे एक क्रीड़ापर्वत है जिसके शिखर सुन्दर नीलमोंके बनाये गये हैं और चारों ओर सुनहरे कदलीवृक्षोंकी बाड़से अत्यन्त दर्शनीय है। हे मित्र ! वह मेरी स्त्रीको बहुत प्यारा है, अतः जिस समय तुम्हारे चारों ओर बिजली चमकती है तो मुझे अधीर होकर उसी क्रीडाशैलका स्मरण हो आता है।

टिप्पणी—यह तीसरा अभिज्ञान है। इन्द्रनीलके समान मेघका भी श्यामवर्ण है और चारों ओर सुनहरे केलेके वृक्षोंकी बाड़ मेघके किनारोंपर चमकती बिजली-सी है। अतः यक्ष कहता है तुम्हारे किनारोंपर जब बिजली चमकती है तो मैं अधीर हो उठता हूँ क्योंकि मुझे उस क्रीडाशैलकी याद आ जाती है अर्थात् तुम्हारे श्यामवर्णसे इन्द्रनीलशिखरोंका तथा केलेकी बाड़से बिजलीका सादृश्य देखकर तुम्हारा स्मरण हो आता है ॥ १६ ॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥१७॥

रक्तेति ॥ अत्र क्रीडाशैले कुरबका एव वृतिरावरणं यस्य तस्य। मधौ वसन्ते भवा माधव्यस्तासां मण्डपस्तस्यातिमुक्तलतागृहस्य । "अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवी लता" इत्यमरः। प्रत्यासन्नौ संनिकृष्टौ चल-किसलयश्चञ्चलपल्लवः। अनेन वृक्षस्य पादताडनेषु प्राञ्जलित्वं व्यज्यते। रक्ताशोकः। रक्तविशेषणं तस्य स्मरोद्दीपकत्वादुक्तम् । "प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा। बहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः।" इत्यशोक-कल्पे दर्शनात्। कान्तः कमनीयः केसरो वकुलश्च। "अथ केसरे। वकुलो वंजुलः"। स्तः इति शेषः। एकस्तयोरन्यतरः। प्राथमिकत्वादशोक इत्यर्थः। मया सह तव सख्याः। स्वप्रियाया इत्यर्थः। वामपादाभिलाषी। दोहदच्छ-द्मनेत्यत्रापि संवन्धनीयम्। सा चाहं च। अभिलाषिणावित्यर्थः। अन्यः केसरः। दोहदं वृक्षादीनां प्रसवकारणं संस्कारद्रव्यम्। "तरुगुल्मलतादी-नामकाले कुशलैः कृतम्। पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया।" इति शब्दार्णवे। तस्य छद्मना व्याजेन। "कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे" इत्यमरः। अस्यास्तव सख्या वदनमदिरां गण्डूषमद्यं कांक्षति। मया सहेत्य-त्रापि संवन्धनीयम्। अशोकवकुलयोः स्त्रीपादताडनगण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः। "स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति वकुलः साधुगण्डूषसेकात्पदाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्। मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसना-च्चम्पको वक्त्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकारः" ॥१७॥

पदार्थ— अत्र=इसमें। कुरवकवृतेः=कुरवक (झिण्टी)की वाड़वाले। माधवीमण्डपस्य=माधवीलतागृहके । प्रत्यासन्नौ=समीपवर्ती । चलकिसलयः रक्ताशोकः=हिलते हुए पत्तोंवाला लाल अशोक। कान्तः केसरः च=और सुन्दर वकुल वृक्ष है। एकः=पहला (अशोक) मया सह=मेरे साथ। तव सख्याः=तुम्हारी सखीके। वामपादादिलाषी=बाँयें पैरके प्रहारका इच्छुक है। अन्यः=दूसरा (केसर)। दोहदच्छद्मना=दोहदके वहाने। अस्याः=इसकी। वदनमदिरां=मुखासवको। काङ्क्षति=चाहता है।

भावार्थ— इस क्रीडाशैलमें झिण्टीकी बाड़वाले वासन्ती लतागृहके समीप

वर्ती दो वृक्ष हैं—एक चंचल पत्तोंवाला अशोक और दूसरा सुन्दर केसर (वकुल)। इनमें पहला (अशोक) तो मेरे साथ तुम्हारी सखी अर्थात् मेरी पत्नीके वामपैरके प्रहारका इच्छुक है और दूसरा (वकुल) दोहदके बहाने उसके मुखकी मदिराको चाहता है।

टिप्पणी—यह चौथी पहिचान है। 'दोहनं दोहः, दोहम् आकर्षं ददातीति दोहदः' अर्थात् जो अत्युग्र अभिलाष उत्पन्न करता है उसे दोहद कहते हैं। इस शब्दका प्रयोग प्रायः गर्भवती स्त्रियोंकी अभिलाषके लिये किया जाता है। यहाँ भी अकालमें ही वृक्षोंसे पुष्पादि उत्पन्न करनेके लिये जो संस्कारद्रव्य हैं वे दोहद कहे जाते हैं। किस वृक्षका क्या दोहद होता है इसका परिगणन मल्लिनाथने अपनी टीकाके अन्तमें दे दिया है। कविसमय-प्रसिद्धि यही है कि अशोक पादाघातसे और वकुल मुखगंडूषसे ही विकसित होता है ॥१७॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका कांचनी वासयष्टि-
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥१८॥

तन्मध्य इति ॥ किं चेति चार्थः। तन्मध्ये तयोर्वृक्षयोर्मध्येऽनतिप्रौढानामनतिकठोराणां वंशानां प्रकाश इव प्रकाशो येषां तैस्तरुणवेणुसच्छायैर्मणिभिर्मरकतशिलाभिर्मूले बद्धा। कृतवेदिकेत्यर्थः। स्फटिकं स्फटिकमयं फलकं पीठं यस्याः सा काञ्चनस्य विकारः काञ्चनी सौवर्णी वासयष्टिर्निवासदण्डः। अस्तीति शेषः। शिञ्जा भूषणध्वनिः। "भूषणानां तु शिञ्जितम्" इत्यमरः। भिदादित्वादङ्। शिञ्जिधातुरयं तालव्यादिर्न तु दन्त्यादिः। शिञ्जाप्रधानानि वलयानि तैः सुभगा रम्यास्तैस्तालैः करतलवादनैर्मे मम कान्तया नर्तितो वो युष्माकं सुहृत्सखा नीलकण्ठो मयूरः। "मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्" इत्यमरः। दिवसविगमे सायङ्काले यां यष्टिकामध्यास्ते। यष्ट्यामास्त इत्यर्थः। 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इति कर्मत्वाद् द्वितीया। "तत्रागारम्" इत्यारभ्य पञ्चसु श्लोकेषु

समृद्धवस्तुवर्णनादुदात्तालङ्कारः। तदुक्तम्—"तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते"। न चैषा स्वभावोक्तिर्भाविकं वा तत्र तथास्थितवस्तुवर्णनात्। अत्र तु "कविप्रतिभोत्थापितसम्भाव्यमानैश्वर्यशालिवस्तुवर्णनादारोपितविषयत्वमिति ताभ्यामस्य भेदः" इत्यलङ्कारसर्वस्वकारः ।।१८।।

पदार्थ—तन्मध्ये च=और दोनों वृक्षोंके बीचमें। अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः=हालमें ही उत्पन्न हुए बाँसोंके समान छविवाले। मणिभिः=मणियोंसे। मूले बद्धा=जड़में बनी हुई। स्फटिकफलका=स्फटिकके तख्तेवाली। कांचनी=स्वर्णमयी। वासयष्टिः=निवासकी छड़ी है। याम्=जिसपर। शिञ्जावलयसुभगैः=कंकणोंकी ध्वनिसे मनोहर। तालैः=तालियोंसे। मे कान्तया=मेरी प्रियाद्वारा। नर्तितः=नचाया गया। वः सुहृद्=तुम्हारा मित्र। नीलकण्ठः=मोर। दिवसविगमे=दिनकी समाप्ति पर। अध्यास्ते=बैठता है।

भावार्थ—रक्ताशोक और वकुल वृक्षके बीच पक्षियोंके बैठनेके लिये अड्डा बना हुआ है। जिसका निचला भाग कोमल बाँसों जैसी मणियोंसे बना है, डण्डा सोनेका है और ऊपर स्फटिकका तख्ता लगा है। कंकणोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त तालियोंसे मेरी प्रियाद्वारा नचाया गया तुम्हारा मित्र मोर, सायंकालके समय जिसपर बैठता है।

टिप्पणी—कुछ टीकाकारोंने "शिञ्जद्वलयसुभगैः" पाठ माना है, इसमें शिजिधातु आत्मनेपदी है उससे शतृ प्रत्यय नहीं हो सकता किन्तु 'शिङ्क्ते इति शिञ्जः (पचादित्वाद् अच्) स इवाचरति शिञ्जति' इस प्रकार क्विप्लोप होकर परस्मैपद हो जायगा और वर्तमानमें शतृ भी। भूषणजन्य ध्वनिके लिये ही शिञ्जाका प्रयोग होता है। मेघागम होनेपर मोर प्रसन्न होकर नाचता है, इसीलिये कहा है—नीलकण्ठः सुहृद्वः ।।१८।।

एभिः साधो ! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ।।१९।।

एभिरिति ॥ हे साधो निपुण ! "साधुः समर्थो निपुणो वा" इति काशिकायाम् । हृदयनिहितैः । अविस्मृतैरित्यर्थः । एभिः पूर्वोक्तैर्लक्षणैस्तोरणादिभिरभिज्ञानैर्द्वारोपान्ते । एकवचनमविवक्षितम् । द्वारपार्श्वयोरित्यर्थः । लिखिते वपुषी आकृती ययोस्तौ तथोक्तौ शङ्खपद्मौ नाम निधिविशेषौ । "निधिर्ना शेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः" इत्यमरः । दृष्ट्वा च नूनं सत्यमधुनेदानीम् । "अधुना" इति निपातः । मद्वियोगेन मम प्रवासेन क्षामच्छाय मन्दच्छायमुत्सवोपरमात्क्षीणकान्ति भवनं मद्गृहं लक्षयेथाः निश्चिनुयाः । तथाहि । सूर्यापाये सति कमल पद्मं स्वामात्मीयामभिख्यां शोभाम् । "अभिख्या नामशोभयोः" इत्यमरः । न पुष्यति खलु । सूर्यविरहितं पद्ममिव पतिविरहितं गृहं न शोभत इत्यर्थः ॥१९॥

पदार्थ—साधो=हे सज्जन ! हृदयनिहितैः=हृदयमें रखे हुए । एभिः लक्षणैः=इन चिह्नोंसे । च=और । द्वारोपान्ते=द्वारके समीप । लिखितवपुषौ=लिखा गया है आकार जिनका, ऐसे । शङ्खपद्मौ=शंख और पद्मको । दृष्ट्वा=देखकर । अधुना=इस समय । मद्वियोगेन=मेरे विरहसे । नूनम्=निश्चय ही क्षामच्छायं=मलिन कान्तिवाले । भवनं=घरको । लक्षयेथाः=तुम पहिचान लोगे । सूर्यापाये=सूर्यके चले जानेपर । कमलं=कमल । स्वामभिख्यां=अपनी शोभाको । न पुष्यति=नहीं धारण करता ।

भावार्थ—हे सज्जन ! अच्छी प्रकार याद किये हुए उपर्युक्त चिह्नोंसे तथा द्वारके पास लिखे हुए शंख और पद्मोंको देखकर निश्चय ही तुम मेरे उस घरको पहिचान लोगे, जिसकी शोभा आजकल मेरे वहाँ न होनेसे फीकी हो गई है । क्योंकि जब सूर्य नहीं रहता तो कमल अपनी पूर्ण शोभाको नहीं प्रकट कर सकता इसमें सन्देह नहीं ।

टिप्पणी—इन्द्रधनुप-सा बहिर्द्वार, सुन्दर मरकत-शिलाबद्ध सीढ़ियोंवाली बावड़ी, नीलमका बना क्रीड़ाशैल, माधवी-कुञ्जके पास रक्ताशोक और केसरके वृक्ष, कांचनी वासयष्टि, ये चिह्न यक्षने अपने घरके बताये हैं । इनको याद करके तुम मेरे घरको पहिचान लोगे, ऐसा मेघसे कहकर फिर उसे दृढ़ करता है कि घरके दरवाजे पर शंख और पद्म लिखे होंगे । यह प्राचीन परिपाटी

है कि पवित्र पदार्थोंसे घरको चित्रित करनेसे पाप नाश होता है और घरमें किसी प्रकारके उपद्रव नहीं होते। दे०—विष्णुधर्मोत्तर पुराणके चित्रसूत्र प्रकरणमें—"शङ्खपद्मौ निधी यत्र सुरभिर्मत्तकासिनी। वृषभैराचिता चित्रे तद्गृहं कल्मषं त्यजेत् ॥" आदि ॥१९॥

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥२०॥

निजगृहनिश्चयानन्तरं कृत्यमाह—

गत्वेति ॥ हे मेघ, शीघ्रसम्पात एव हेतुस्तस्य । शीघ्रप्रवेशार्थमित्यर्थः। "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इति षष्ठी। "सम्पातः पतने वेगे प्रवेशे वेदसंविदे" इति शब्दार्णवे। सद्यः सपदि कलभस्य करिपोतस्य तनुरिव तनुर्यस्य तस्य भावस्तामल्पशरीरतां गत्वा प्राप्य । प्रथमकथिते "तस्यास्तीरे" इत्यादिना पूर्वोद्दिष्टे रम्यसानौ। निषीदनयोग्य इत्यर्थः। क्रीडाशैले निषण्ण उपविष्टः सन्। अल्पाल्पप्रकारा भाः प्रकाशो यस्यास्ताम्। "प्रकारे गुणवचनस्य" इति द्विरुक्तिः खद्योतानामाली तस्या विलसितेन स्फुरितेन निभां समानां विद्युदुन्मेषो विद्युत्प्रकाशः स एव दृष्टिस्तां भवनस्यान्तरन्तर्भवनं तत्र पतितां प्रविष्टां कर्तुमर्हसि। यथा कश्चित्किंचिदन्विष्यन्क्वचिदुन्नते स्थित्वा शनैःशनैरतितरां द्राघीयसीं दृष्टिमिष्टदेशे पातयति तद्वदित्यर्थः ॥२०॥

पदार्थ—शीघ्रसंपातहेतोः=शीघ्र घुसनेके लिये। सद्यः=तत्काल। कलभतनुतां गत्वा=हाथीके बच्चे-सा बनकर। प्रथमकथिते=पहले कहे हुए। रम्यसानौ=रमणीय शिखरवाले। क्रीडाशैले=क्रीड़ा पर्वतपर। निषण्णः=बैठा हुआ। खद्योताली०=जुगुनुओंकी टिमटिमाहट सदृश। अल्पाल्पभासं=मन्दमन्द प्रकाशवाली। विद्युदुन्मेषदृष्टिं=बिजलीकी चमकरूप दृष्टि। अन्तर्भवनपतितां=घरके अन्दर पड़ी हुई। कर्तुमर्हसि=करने योग्य हो।

भावार्थ—शीघ्र भीतर घुसनेके लिए तत्काल अपने शरीरको हाथीके बच्चे-सा छोटा करके सुन्दर शिखरोंवाले उस क्रीड़ापर्वतपर, जिसको कि पहिले कह चुका हूँ, बैठे हुए तुम, जुगनुओं की टिमटिमाहटके समान मन्द-मन्द प्रकाशवाली विजलीरूप अपनी दृष्टिको घरके अन्दर डालना।

टिप्पणी—एक तो विरहिणी, उसपर मेघका दर्शन। प्रिया अधीर न हो जाय, इसलिये यक्ष मेघको सावधान करता है कि तुम छोटेसे हाथीके बच्चेसा रूप बनाकर उस क्रीड़ापर्वतपर बैंठ जाना और जुगनूकी टिमटिमाहट-जैसे विजलीके मन्द-मन्द प्रकाशसे भीतर देखना ताकि तुम्हें हाथीका बच्चा और विद्युत्प्रकाश को जुगनूकी टिमटिमाहट समझकर वह निर्भय होकर अच्छी प्रकार तुम्हें देख सके ॥२०॥

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥२१॥

सम्प्रति दृष्टिपातात्फलस्याभिज्ञानं श्लोकद्वयेनाह—

तन्वीति ॥ तन्वी कृशाङ्गी। न तु पीवरी। "श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु" इत्यमरः। "वोतोगुणवचनात्" इति ङीष्। श्यामा युवतिः। "श्यामा यौवन-मध्यस्था" इत्युत्पलमालायाम्। शिखराण्येषां सन्तीति शिखरिणः कोटिमन्तः। "शिखरं शैलवृक्षाग्रकक्षापुलककोटिषु" इति विश्वः। शिखरिणो दशना दन्ता यस्याः सा। एतेनास्या भाग्यवत्त्वं पत्यायुष्करत्वं च सूच्यते। तदुक्तं सामुद्रिके—"स्निग्धाः समानरूपाः सुपङ्क्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः। दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम्। ताम्बूलरसरक्तेऽपि स्फुटभासा समोदयाः! दन्ताः शिखरिणो यस्या दीर्घं जीवति तत्प्रियः।" इति। पक्वं परिणतं बिम्बं बिम्बिकाफलमिवाधरोष्ठो यस्याः सा पक्वबिम्बा-धरोष्ठी। "शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः" इति वामनः। "नासिकोदरोष्ठ—" इत्यादिना ङीष्। मध्ये क्षामा। कृशोदरीत्यर्थः। चकित-

हरिण्याः प्रेक्षणानीव प्रेक्षणानि दृष्टयो यस्याः सा तथोक्ता। एतेनास्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते। तदुक्तं रतिरहस्ये पद्मिनीलक्षणप्रस्तावे—"चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे" इति। निम्ननाभिर्गम्भीरनाभिः। अनेन "नारीणां नाभिगाम्भीर्यान्मदनातिरेकः" इति कामसूत्रार्थः सूच्यते। श्रोणीभारादलसगमना मन्दगामिनी। न तु जघनदोषात्। स्तनाभ्यां स्तोकनम्रा ईषदवनता। न तु वपुर्दोषात्। युवतय एव विषयस्तस्मिन्युवतिविषये। युवतीरधिकृत्येत्यर्थः। धातुर्ब्रह्मण आद्या सृष्टिः प्रथमशिल्पमिव स्थितेत्युत्प्रेक्षा। प्रथमनिर्मिता युवतिरियमेवेत्यर्थः। प्रायेण शिल्पिनां प्रथमनिर्माणे प्रयत्नातिशयवशाच्छिल्पनिर्माणसौष्ठवं दृश्यत इत्याद्यविशेषणम्। तथा चास्मिन्प्रपञ्चे न कुत्राप्येवंविधं रमणीयं रमणीरत्नेष्वस्तीति भावः। तदेवम्भूता या स्त्री तत्रान्तर्भवने स्यात्। तत्र निवसेदित्यर्थः। तामित्युत्तरश्लोकेन संबन्धः ॥२१॥

पदार्थ—तत्र=वहाँ। तन्वी=दुबली। श्यामा=युवती। शिखरिदशना=नुकीलेदाँतोंवाली। पक्वबिम्बाधरोष्ठी=पकेबिम्बफल जैसे ओठवाली। मध्येक्षामा=पतली कमरवाली। चकितहिरणीप्रेक्षणा=डरी हुई मृगके समान चंचल नेत्रोंवाली। निम्ननाभिः=गहरी नाभिवाली। श्रोणीभारात्=नितम्बोंके भारसे। अलसगमना=धीरे-धीरे चलनेवाली। स्तनाभ्यां=स्तनोंसे। स्तोकनम्रा=कुछ झुकीसी। युवतिविषये=युवतियोंके विषयमें। धातुः=ब्रह्माकी। आद्या सृष्टिः इव=पहिली रचना-सी। स्यात्=जो होवे (तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः अगले श्लोकसे अन्वय है।)

भावार्थ—उस घरके अन्दर दुबली-पतली, षोडशी, नुकीले दाँतोंवाली, पके हुए बिम्बफलजैसे ओठोंवाली, पतली कमरवाली, भयभीत हरिणीकी तरह चंचल नेत्रोंवाली, गहरी नाभिवाली, नितम्बोंके भारसे धीरे-धीरे चलती हुई, स्तनोंके भारसे कुछ झुकी-सी तथा युवतियोंमें विधाताकी प्रथमरचना-सी जो स्त्री हो (उसे मेरी प्रिया समझना)

टिप्पणी—'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' में टीकाकारोंने अधरोष्ठका अर्थ निचला होंठ किया है, जो उचित नहीं प्रतीत होता। हमारे विचारसे 'पक्वबिम्बवत् अधरश्च ओष्ठश्च यस्याः' जिसके दोनों (अधर-निचला, ओष्ठ-ऊपरका) ओंठ

पके बिम्बफल जेसे हैं"। यह अर्थ होना चाहिये जैसा कि अमरकोशमें—"ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दसनवाससी" स्पष्ट है। अथवा ओष्ठ शब्दको दोनोंका वाचक मानकर 'पक्वविम्व अधरः=हीनः ओष्ठयोः यस्याः" अर्थात् पक्वबिम्बकी शोभा जिसके अधरोंके आगे तुच्छ है, यह अर्थ भी हो सकता है। मल्लिनाथके "बिम्बं विम्बिकाफलमिवाधरोष्ठो यस्याः" में हमें लिपिकारोंका प्रमाद प्रतीत होता है जिससे अधरोष्ठौ को अधरोष्ठो हो गया है। शेष विशेषणोंको संजीवनीमें स्पष्ट किया गया है ॥२१॥

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥२२॥

तामिति ॥ सहचरे सहचारिणि। अनेन वियोगाऽसहिष्णुत्वं व्यज्यते। मयि दूरीभूते दूरस्थिते सति। सहचरे चक्रवाके दूरीभूते सति चक्रवाकीं चक्रवाकवधूमिव। "जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्" इति ङीष्। परिमितकथां परिमितवाचम्। एकामेकाकिनीं स्थितां तामन्तर्भवनगतां मे द्वितीय जीवितं जानीथाः। जीविततुल्यां मत्प्रेयसीमवगच्छेरित्यर्थः। "तन्वी" इत्यादिपूर्वलक्षणैरिति शेषः। लक्षणानामन्यथाभावभ्रममाशङ्क्याह—गाढेति। गाढोत्कण्ठां प्रबलविरहवेदनाम्। "रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या। संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः।" इत्यभिधानात्। बालां गुरुषु विरहमहत्त्वेषु वर्तमानेषु दिवसेषु गच्छत्सु सत्सु शिशिरेण शिशरकालेन मथितां पद्मिनीमिव। "इववद्वायथाशब्दौ" इति दण्डी। अन्यरूपां पूर्वविवरिताकारां जातां मन्ये। हिमहतपद्मिनीव विरहेणान्यादृशी जातेति तर्कयामीत्यर्थः। एतावता नेयमन्येति भ्रमितव्यमिति भावः ॥२२॥

पदार्थ—सहचरे मयि=मुझ साथीके। दूरीभूते=दूर होनेपर। चक्रवाकीम् इव=चकवीकी तरह। एकां=अकेली। परिमितकथां=कम हो गया है बोलना जिसका, ऐसी। तां=उसको। मे द्वितीयं जीवितं=मेरा दूसरा प्राण। जानीथाः।

=जानना । गाढोत्कण्ठां=प्रबल उत्कण्ठावाली । वालां=भोली-भाली को। गच्छत्सु=वीतते हुए । एषु गुरुषु दिवसेसु=इन भारी दिनोंमें । शिशिरमथितां= पालेसे मारी हुई । पद्मिनीं वा=कमलिनीकी तरह । अन्यरूपां जातां = दूसरे प्रकारकी होगई । मन्ये = समझता हूँ ।

भावार्थ—मुझ सहचरके दूर हो जानेसे चकवीके समान अकेली अतएव मितभाषिणी उस युवतीको तुम मेरा दूसरा प्राण समझो । मैं समझता हूँ कि प्रबल विरहवेदनावाली वह अभिनव यौवना, किसी प्रकार वीतते हुए विरहके इन लम्बे दिनोंमें पालेसे मारी हुई कमलिनीकी तरह मुरझाकर कुछ और ही हो गई होंगी ।

टिप्पणी—वालाका अर्थ अभिनवयौवना है, जैसा कि नागरसर्वस्वमें कहा है—"वालेति गीयते नारी यावत् षोडशवत्सरम्" और वलकोशमें भी—"वाला षोडशवार्षिकी" । "शिशिरमथितां" का मल्लिनाथने "शिशिरकालेन मथिता" अर्थ किया है किन्तु "शिशिरः शीतले, हिमे, ऋतुभेदे" इस अनेकार्थसंग्रहके अनुसार हिम अर्थ यहाँ ठीक लगता है । 'पद्मिनीं वा' में वा शब्द इवका वाचक है ॥२२॥

> नूनं यस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
> निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरौष्ठम् ।
> हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
> दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥२३॥

नूनमिति ॥ प्रबलरुदितेनोच्छूने उच्छ्वसिते नेत्रे यस्य तत् । उच्छूनेति श्वयतेः कर्तरि क्तः । "ओदितश्च" इति निष्ठानत्वम् । "वचिस्वपि—" इत्यादिना संप्रसारणम् । "संप्रसारणाच्च" इति पूर्वरूपत्वम् । "हलः" इति दीर्घः । "च्छ्वोः शूडनुनासिके च" इत्यूठादेशे कृते रूपसिद्धिरिति । वर्तमानसामीप्य-प्रक्रिया प्रामादिकीत्युत्प्रेक्षा । तथा सति धातोरिकारस्य गत्यभावादूठादेशे छ्वोरन्त्यत्वेन विशेषणाच्चेति । एतेन विषादो व्यज्यते । निःश्वासानाम-शिशिरतयान्तस्तापोष्णत्वेन भिन्नवर्णो विच्छायोऽधरोष्ठो यस्य तत् । हस्ते न्यस्तं हस्तन्यस्तम् । एतेन चिन्ता व्यज्यते । लम्बालकत्वात्संस्काराभावात्

म्बमानकुन्तलत्वाद् सकलःव्यक्तःयसंपूर्णाभिव्यक्तिस्तस्याः प्रियाया मुखं त्वदनु-सरणेन त्वदुपरोधेन । मेघानुसरणेनेति यावत् क्लिष्टकान्तेः क्षीणकान्तेरिन्दो-र्दैन्यं शोच्यतां बिभर्ति । नूनमिति वितर्के । "नूनं तर्केऽर्थनिश्चये" इत्यमरः । पूर्ववत्तथापि न भ्रमितव्यमिति भावः ॥२३॥

पदार्थ—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं=अत्यन्त रोनेसे सूजी हुई आंखोंवाला । निःश्वासानां=श्वासोंके । अशिशिरतया=गरम-गरम होनेसे । भिन्नवर्णाधरौष्ठम्=मुरझागये हैं ओठ (दोनों) जिसके, ऐसा । हस्तन्यस्तं=हाथपर टिकाया हुआ । लम्बालकत्वात्=केशोंके लटक जानेसे । असकलव्यक्ति=जो पूरा नहीं दीखता, ऐसा । तस्याः प्रियायाः मुखं = उस मेरी प्रियाका मुख । नूनं = निश्चय ही । त्वदनु०=तुम्हारे पीछे-पीछे चलनेसे क्षीण होगई है कान्ति जिसकी, ऐसे । इन्दोः =चन्द्रमाकी । दैन्यं = शोचनीयता को । बिभर्ति = धारण करता है ।

भावार्थ - मेरे वियोगमें अत्यन्त रोनेसे जिसकी आँखें सूज गई हैं, गरम-गरम निःश्वासोंके कारण ओठ फीके पड़ गये हैं, हाथके सहारे टिकाया हुआ, खुले बालोंके (मुँहपर) लटक जानेसे कुछ ढका हुआसा उस मेरी प्रियाका मुख, तुम्हारे पीछे-पीछे चलनेसे क्षीण कान्तिवाले चन्द्रमाकी तरह निश्चय ही हतप्रभ-सा हो गया होगा ।

टिप्पणी—साहित्यशास्त्रके आदि प्रणेता भरतने भी विरहिणी-धर्म-वर्णनमें ठीक यही कहा है—"मलिनाम्बरसंवीता मलिना लुलितालका । चन्द्रमूर्तिरिवाकीर्णा श्यामलाभ्रलवेन सा ।" और—"दैन्यं विरहदौर्गत्यं मन-स्तापादिना भवेत् । निर्दिशेत्तदचेष्टाद्यैर्गात्रसंस्कारवर्जनैः ॥" इस प्रकार दीन दशामें भी चन्द्रमाकी उपमासे मुखकी अत्यन्त स्पृहणीयता सूचित होती है । उपमा और उत्प्रेक्षाकी उत्तम संसृष्टि है ॥२३॥

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२४॥

सर्वविरहिणीसाधारणानि लक्षणानि संभाव्योत्प्रेक्ष्याणीत्याह "आलोके" इत्यादिभिस्त्रिभिः—

आलोक इति ॥ हे मेघ, सा मत्प्रिया। बलिषु नित्येषु प्रोषितागममार्थेषु च देवताराधनेषु व्याकुला व्यापृता वा। विरहेण तनु कृशं भावगम्यम्। तत्कार्श्यस्यादृष्टचरत्वात्संप्रति संभावनयोत्प्रेक्ष्यमित्यर्थः। मत्सादृश्यं मदाकारसाम्यम्। मत्प्रतिकृतिभिरित्यर्थः। यद्यपि सादृश्यं प्रसिद्धवस्त्वन्तरगताकारसाम्यं तथापि प्रतिकृतित्वेन विवक्षितमितरथालेख्यत्वासंभवात्। अक्षयः "आलेख्येऽपि च सादृश्यम्" इत्यभिधानात्। लिखन्ती क्वचित्फलकादौ लिखिष्यन्ती वा चित्रदर्शनस्य विरहिणीविनोदोपायत्वादिति भावः। एतच्च काम-शास्त्रसंवादेन सम्यग्विवेचितमस्माभिः रघुवंशे संजीविन्याम् "सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनैः प्रियायाः" इत्यत्र। मधुरवचनां मञ्जुभाषिणीम्। अतएव पञ्जरस्थाम्। हिंस्रेभ्यः कृतसंरक्षणामित्यर्थः। सारिकां स्त्रीपक्षिविशेषाम्। हे रसिके! भर्तुः स्वामिनः स्मरसि कच्चित्। "कच्चित्कामप्रवेदने" इत्यमरः। भर्तारं स्मरसि किमित्यर्थः। "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी। स्मरणे कारणमाह—हि यस्मात्कारणात्त्वं तस्य भर्तुः। प्रीणातीति प्रिया। 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति कप्रत्ययः। अतः प्रेमास्पदत्वात्स्मर्तुमर्हसीति भावः। इत्येवं पृच्छन्ती वा। वाशब्दो विकल्पे। "उपमायां विकल्पे वा" इत्यमरः। ते तवालोके दृष्टिपथे पुरा निपतति। सद्यो निपतिष्यतीत्यर्थः। "स्यात्प्रबन्धे पुरातीते निकटागामिके पुरा" इत्यमरः। "यावत्पुरानिपातयोर्लट्" इति लट्॥२४॥

पदार्थ—सा=वह। बलिव्याकुला वा=देवताओंकी पूजामें लगी हुई। वा= अथवा। विरहतनु=वियोगसे दुबली हुई। भावगम्यं=कल्पनाजन्य। मत्सादृश्यं= मेरे चित्रको। लिखन्ती=बनाती हुई। वा=अथवा। रसिके=हे रसिके (सारिका)। भर्तुः स्मरसि कच्चित्=तुम्हें स्वामीकी याद आती है क्या? हि= क्योंकि। त्वं तस्य प्रिया=तुम उनकी प्रिया हो। इति=ऐसा। मधुरवचनां= मीठे वचनवाली। पञ्जरस्थां सारिकां=पिंजरेमें स्थित सारिकाको। पृच्छन्ती= पूछती हुई। पुरा=सबसे प्रथम। ते आलोके निपतति=तुम्हारे प्रकाशमें दीख पड़ेगी।

भावार्थ—हे मेघ ! जब तुम प्रकाशमें पहिले-पहिले मेरी प्रियाको देखोगे तब या तो वह देवताओंकी पूजामें व्यस्त दीखेगी, या विरहसे कातर हुई कल्पनामें मेरे चित्र बनाती हुई दीखेगी, अथवा पिंजरेमें बन्द मीठे बोल-वाली मैनासे हे सारिका ! तुम्हें स्वामीकी याद आ रही है ? क्योंकि वे तुम्हें बहुत मानते थे ? ऐसा पूछती हुई दीख पड़ेगी।

टिप्पणी—कुछ टीकाकारोंने 'पुरा' को पुरः मानकर 'ते पुरः निपतति'—तुम्हारे सामने मूर्छित होकर गिर पड़ेगी, ऐसा अर्थ किया है और 'रसिके' के स्थानमें 'निभृते' पाठ करके भी तरह-तरहके अर्थ किये हैं किन्तु उपर्युक्त पाठ ही उचित प्रतीत होता है। प्राचीन कालमें घरमें पक्षियोंको पालनेकी प्रथा बहुत अधिक थी। प्रायः नायक-वर्ग तोतोंको और नायिका-वर्ग मैना (सारिका)-को पालते थे। तोता-मैना किस्सा इसीका प्रतीक है। ये इनकी नर्मकलामें सहायक होते थे और वियोगमे मनोविनोदके साधन भी ॥ २४ ॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥२५॥

उत्सङ्ग इति ॥ हे सौम्य साधो, मलिनवसने। "प्रोषिते मलिना कृशा" इति शास्त्रादित्यर्थः। उत्सङ्ग ऊरौ वीणां निक्षिप्य। मम गोत्रं नामाङ्कचिह्नं यस्मिंस्तन्मद्गोत्राङ्कं यथा। "गोत्रं नाम्नि कुलेऽपि च" इत्यमरः। विरचितानि पदानि यस्य तत्तथोक्तं गेयं गानार्हं प्रबन्धादि। "गीतम्" इति पाठे स एवार्थः। उद्गातुमुच्चैर्गातुं कामो यस्याः सा। "तुं काममनसोरपि" इति मकारलोपः। देवयोनित्वाद् गान्धारग्रामेण गातुकामेत्यर्थः। तदुक्तम्-"षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः। न तु गान्धारनामानं स लभ्यो देवयोनिभिः।" इति। तथा नयनसलिलैः प्रियतमस्मृतिजनितैरश्रुभिरार्द्रां तन्त्रीं कथञ्चित्कृच्छ्रेण सारयित्वा। आर्द्रत्वापहरणाय करेण प्रमृज्यान्यथा क्वणनासम्भवादिति भावः। भूयोभूयः पुनः पुनः स्वयमात्मना

कृतामपि । विस्मरणानर्हामपीत्यर्थः । मूर्च्छनां स्वरारोहावरोहक्रमम्। "स्वराणां स्थापनाः सान्ता मूर्च्छनाः सप्त सप्त हि" इति सङ्गीतरत्नाकरे। विस्मरन्ती वा । "आलोके ते निपतति" इति पूर्वेणान्वयः । विस्मरणं चात्र दयितगुणस्मृतिजनितमूर्च्छावशादेव । तथा च रसरत्नाकरे-"वियोगायोगयोरिष्टगुणानां कीर्तनात्स्मृतेः । साक्षात्कारोऽथवा मूर्छा दशधा जायते तथा । इति । मत्सादृश्यमित्यादिना मनःसङ्गानुवृत्तिः सूचिता ।। २५ ।।

पदार्थ— सौम्य=हे सज्जन । मलिनवसने=मैले वस्त्रोंवाली । उत्सङ्गे=गोदमें। वीणां निक्षिप्य=वीणाको रखकर । मद्गोत्राङ्कं=मेरे नामसे चिह्नित । विरचितपदं=रचे गये पदोंवाले । गेयं=गानको । उद्गातुकामा=गानेकी इच्छा करती हुई। नयनसलिलैः=आँसुओंसे । आर्द्रां=भीगी हुई । तन्त्रीः=तारोंको । कथञ्चित्=किसी प्रकार। सारयित्वा=ठीक करके । भूयो भूयः=फिर-फिर । स्वयं कृताम् अपि=अपने किये हुए भी । मूर्च्छनां=आरोह-अवरोहके क्रमको । विस्मरन्ती=भूलती हुई ।

भावार्थ- हे सौम्य मेघ ! विरह कालमें मैले वस्त्र धारणकी हुई वह अपनी गोदमें बीणाको रखकर मेरे नामसे चिह्नित गानेके पदोंको गाना चाहती हुई, आँसुओंसे भीगे तारोंको किसी प्रकार ठीक करके भी बार-बार अपने साधे हुए स्वरोंके उतार-चढ़ाव को भूलती हुई (तुम्हें दीख पड़ेगी—पूर्व श्लोकसे सम्बन्ध है)।

टिप्पणी- यहाँ गोत्रशब्द नामका वाचक है कुलका नहीं, अतः मद्गोत्राङ्क का सीधा अर्थ है मेरा नाम जिनमें आता हो अर्थात् मेरे बनाये हुए । मल्लिनाथने 'तन्त्रीमार्द्रां' ऐसा एकवचनान्त पाठ माना है किंतु एकवचनान्त तन्त्री शब्द वीणाका ही वाचक होता है उसके तारोंका नहीं । मूर्च्छना स्वरोंके उतार-चढ़ावको कहते हैं अर्थात् रागकी अभिव्यक्ति मूर्च्छना है—"रागाणां या त्वभिव्यक्तिः मूर्च्छना साभिधीयते" । इसके १२ भेद होते हैं ।। २५ ।।

शेषान् मासान् विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ।
संभोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहे ह्यङ्गनानां विनोदाः ।।२६।।

शेषानिति ।। अथवा विरहस्य दिवसस्तस्मात्स्थापितस्य तत आगम्य निश्चितस्यावधेरन्तस्य शेषान् गतावशिष्टान् मासान् देहलीदत्तपुष्पैः। देहलीद्वारस्याधारदारु। "गृहावग्रहणी देहली" इत्यमरः। तत्र दत्तानि राशीकृतत्वेन निहितानि यानि पुष्पाणि तैर्गणनया एको द्वावित्यादिसंख्यानेन भुवि भूतले विन्यस्यन्ती वा पुष्पविन्यासैर्मासान् गणयन्ती वेत्यर्थः। यद्वा हृदये निहितो मनसि संकल्पित आरम्भ उपक्रमो यस्य तम्। अथवा हृदये निहिता आरम्भा- चुम्बनादयो व्यापारा यस्मिंस्तं मत्संभोगरतिमास्वादयन्ती वा। "आलोके ते निपतति" इति पूर्वेण संबन्धः। ननु कथमयं निश्चय इत्याशङ्कामर्थान्तरन्यासेन परिहरति। प्रायेण बाहुल्येनाङ्गनानां रमणविरहेष्वेते पूर्वोक्ता विनोदाः कालयापनोपायाः। एतेन संकल्पावस्थोक्ता। तदुक्तम्—"संकल्पो नाथविषये मनोरथ उदाहृतः" इति। त्रिभिः कुलकम् ।।२६।।

पदार्थ—विरहदिवसस्थापितस्य=विरहके दिनसे रखे हुए। अवधेः=अवधिके। शेषान् मासान्=शेष महीनोंको। देहलीदत्तपुष्पैः=देहलीपर रखे हुए फूलोंसे। गणनया=गिन-गिनकर। भुवि विन्यस्यन्ती=भूमिपर रखती हुई। हृदयनिहिता- रम्भं=मनमें कल्पित। संभोगं=सहवासका। आस्वादयन्ती=रस लेती हुई (ते आलोके निपतति)। हि=क्योंकि। रमणविरहे=प्रियतमके वियोगमें। अङ्गनानां =स्त्रियोंके। प्रायेण=अधिकतर। एते विनोदाः=ये ही मनोविनोद होते हैं।

भावार्थ—अथवा मेरे विरहके दिनसे ही नित्य देहलीपर वह जो फूल रखी जाती थी उन्हें ही भूमिपर रखकर विरहके शेष महीनोंको गिनती हुई अथवा हृदयमें कल्पना किये हुए मेरे सहवासका रस लेती हुई, वह तुम्हें दिखेगी। क्योंकि प्रियतमका विरह होनेपर प्रायः स्त्रियाँ इन्हीं विनोदोंसे अपना मन बहलाया करती हैं।

टिप्पणी—आकर-ग्रन्थोंमें विरहिणीके लिये ये नियम बताये गये हैं–'देव- पूजनं कुर्यात् कुर्याद्वा निभृते बलिम्। लिखेत्कान्तप्रतिकृतिं पाठयेच्छुकसारि- काम्। वादयेच्च तथा वीणां गायेद्गीतं तदङ्कितम्। गणयेत्सावधिदिनं तिष्ठेत्सं- ख्यासङ्गमैः। एवं विधैर्विनोदैस्तु रमणेन विनाऽबला। विनयेच्च व्यथां तीव्रां विमावलम्बनात्" इन सभी विकल्पोंको महाकविने उपर्युक्त तीन श्लोकोंमें

रखदिया है। मल्लिनाथने 'रमणविरहेषु' पाठ माना है। हमारे विचारसे भरत-सेनका "रमणविरहे ह्यङ्गनानां" पाठ अच्छा है। विरह शब्दका प्रायः एक-वचनमेंही प्रयोग होता है और तीन श्लोकोंका एकसाथ अन्वय होनेसे अन्तिम चरणसे जो अर्थान्तरन्यास होता है उसमें 'हि' पद विशेष रसाधायक है ॥२६॥

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।
मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः ॥२७॥

सव्यापारामिति॥ हे सखे! अहनि दिवसे सव्यापारां पूर्वोक्तबलि-चित्रलेखनादिव्यापारवतीं ते सखीं स्वप्रियां मद्वियोगो मद्विरहस्तथा तेन प्रकारेण। "प्रकारवचने थाल्" इति थाल्प्रत्ययः। न पीडयेत्। यथा रात्रि-ष्विति शेषः। किं तु रात्रौ निर्विनोदां निर्व्यापारां ते सखीं गुरुतरा शुग्यस्यास्तां गुरुतरशुचमतिदुर्भरदुःखां शङ्के तर्कयामि। "शङ्का वितर्कभययोः" इति शब्दार्णवे। अतो निशीथेऽर्धरात्रे उन्निद्रामुत्सृष्टनिद्राम्। अवनिरेव शयनं शय्या यस्यास्ताम्। नियमार्थं स्थण्डिलशायिनीम्। साध्वीं पतिव्रताम्। "साध्वी पतिव्रता" इत्यमरः। अतो नान्यथा शङ्कितव्यमिति भावः। तां त्वत्सखीं मत्संदेशैर्मद्वार्ताभिरलं पर्याप्तं सुखयितुमानन्दयितुं सौधवाताय-नस्थः सन् पश्य। "सखा धात्री च पितरौ मित्रदूतशुकादयः। सुखयन्तीष्ट-कथनसुखोपायैर्वियोगिनीम्।" इति रत्नाकरे। दूतश्चायं मेघ इति भावः। अनेन जागरावस्थोक्ता ॥२७॥

पदार्थ—अहनि=दिनमें। सव्यापारां=काममें लगी हुई। ते सखीं=तुम्हारी सखीको। विप्रयोगः=मेरा बिरह। तथा न पीडयेत्=उतना नहीं सतायेगा। रात्रौ=रातमें। निर्विनोदां=कार्यरहित होनेपर। गुरुतरशुचं = भारी शोकवाली होगी। शङ्के=ऐसा मैं सोचता हूँ। निशीथे=अर्धरात्रिमें। उन्निद्रां=उनींदी। अवनिशयनां=भूमिपर सोई हुई। साध्वीं=पतिव्रताको। अलं सुखयितुं=पर्याप्त सुख पहुँचानेके लिये। सौधवातायनस्थः=महलकी खिड़कीपर बैठकर। पश्य=देखना।

भावार्थ—दिनमें तो इन कामोंमें लगी हुई तुम्हारी सखी (मेरी पत्नी) को मेरा विरह उतना नहीं सताता होगा किन्तु कुछ काम न होनेसे उसकी रात बड़े कष्टसे बीतती होगी—ऐसा मैं समझता हूँ। इसलिये आधीरातके समय उनींदी-सी, भूमिपर सोई उस पतिव्रताको मेरे सन्देशोंसे पर्याप्त आनन्द पहुँचानेके लिये तुम महलकी खिड़कीपर बैठकर देखना।

टिप्पणी - मत्सन्देशैः सुखयितुं त्वं अलम्—अर्थात् मेरे सन्देशोंसे उसे आनन्दित करनेमें तुम समर्थ होगे। ऐसा भी किसीने अर्थ किया है ॥१७॥

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्द्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥२८॥

पुनस्तामेव विशिनष्टि "आधिक्षामाम्" इत्यादिभिश्चतुर्भिः—

आधिक्षामामिति ॥ आधिना मनोव्यथया क्षामां कृशाम्। "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः। क्षायः कर्तरि क्तः। "क्षायो मः" इति निष्ठातकारस्य मकारः। विरहे शयनं तस्मिन् विरहशयने। पल्लवादिरचित इत्यर्थः। संनिषण्णमेकपार्श्वं यस्यास्ताम् अत एव प्राच्याः पूर्वस्या दिशो मूले। उदयगिरिप्रान्त इत्यर्थः। प्राचीग्रहणं क्षीणावस्थाद्योतनार्थम्। मूलग्रहणं दृश्यतार्थम्। कलामात्रं कलैव शेषो यस्यास्तां हिमांशोस्तनुं मूर्तिमिव स्थिताम्। तथा या रात्रिर्मया सार्द्धमिच्छया कृतानि रतानि तैः। शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः। क्षण इव नीता यापिता तां तज्जातीयामेवरात्रिं विरहेण महतीं महत्त्वेन प्रतीयमानामुष्णैरश्रुभिर्यापयन्तीम्। यातेर्ण्यन्ताच्छतृप्रत्ययः। "अर्तिह्री—" इत्यादिना पुगागमः। स एव कालः सुखिनामल्पः प्रतीयते। दुःखिनां तु विपरीत इति भावः। एतेन कार्श्यावस्थोक्ता ॥ २८ ॥

पदार्थ—आधिक्षामां=मनोव्यथासे दुबली हुई। विरहशयने=भूमिमें लगे बिस्तरपर। सन्निषण्णैकपार्श्वां=एक करवटसे लेटी हुई। प्राचीमूले=पूर्वदिशाके

मूलमें। कलामात्रशेषां=सोलहवां भाव मात्र बची हुई। हिमांशोः=चन्द्रमाकी। तनुमिव=मूर्तिके समान। मया सार्द्धं=मेरे साथ। या रात्रिः=जो रात। इच्छारतैः= इच्छानुसार संभोगोंसे। क्षण इव नीता=क्षणभर की तरह बिताई थी। विरह-महतीं=वियोगसे दीर्घ। तामेव=उसी रातको। उष्णैःअश्रुभिः=गरम आँसुओंसे। यापयन्तीं=बिताती हुई (तां साध्वीं पश्य—पूर्वश्लोकसे अन्वय है)।

भावार्थ—मनोव्यथासे क्षीण, भूमिपर बिछी शय्यापर एक ही करवटसे पड़ी हुई, पूर्वदिशाके कोनेमें एककलामात्र जिसका शेष रह गया है ऐसी चन्द्रमाकी मूर्तिसी, जो रातें मेरे साथ इच्छानुसार विभिन्न रतिक्रीड़ाओंसे मिनटों की भाँति बितायी थीं विरहके कारण उन्हीं लम्बी रातोंको रो-रोकर बिताती हुई, उस पतिव्रताको देखना।

टिप्पणी - जिस प्रकार पूर्वोक्त तीन श्लोकोंमें विरहिणीके मनोविनोद-साधनोंका वर्णन हुआ है उसीप्रकार इन पाँच श्लोकोंमें कविने विरहिणीकी अव-स्थाओंका दिग्दर्शन कराया है। जिनमें अन्तिम मरणावस्थाको छोड़कर शेष ९ अवस्थायें स्पष्ट उपलक्षित हैं। भरतमुनिके अनुसार अवस्थाएँ दश हैं— अभिलाष, गुणकीर्तन, अनुचिन्तित, परिदेवित, उद्वेग, अनुस्मृति, जड़ता, उन्माद, व्याधि और मरण। इस पद्यमें प्रथम अवस्था—अभिलाष कही गई है—"अन्योन्यस्याभिलाषेण जायते तनुताऽपि वा" ॥२८॥

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।
चक्षुःखेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥२९॥

पादानिति॥ जालमार्गप्रविष्टान् गवाक्षविवरगतानमृतशिशिरानिन्दोः पादान् रश्मीन् पूर्वप्रीत्या पूर्वस्नेहेन पूर्ववदानन्दकरा भविष्यन्तीति बुद्ध्येति भावः। अभिमुखं यथा तथा गत तथैव संनिवृत्तं यथागतं तथैव प्रतिनि-वृत्तम्। तदा तेषामतीव दुःसहत्वादिति भावः। चक्षुर्दृष्टिं खेदात्सलिलगुरु-भिरश्रुदुर्भरैः पक्ष्मभिश्छादयन्तीम्। अत एव साभ्रे दुर्दिनेऽह्नि दिवसे न

प्रबुद्धां मेघावरणादविकसितां न सुप्तामहरित्यमुकुलिताम् । उभयत्रापि नञर्थस्य नशब्दस्य सुप्सुपेति समासः । स्थलकमलिनीमिव स्थिताम् । एतेन विपयद्वेपाख्या षष्ठी दशा सूचिता ॥२९॥

पदार्थ — अमृतशिशिरान्=अमृत जैसे शीतल । जालमार्गप्रविष्टान्=जालों (रोशनदानों)से भीतर आई हुई । इन्दोः पादान् अभिमुखं=चन्द्रमाकी किरणोंकी ओर । पूर्वप्रीत्या = पहिले स्नेहके कारण । गतम् = गई । तथैव = उसीप्रकार । संनिवृत्तां=लौटी हुई । चक्षुः=आँखोंको । खेदात्=दुःखके कारण । सलिलगुरुभिः= आँसुओंसे भारी । पक्ष्मभिः=पलकोंसे । छादयन्तीं = बन्द करती हुई । साभ्रे = बादलोंसे घिरे । अह्नि = दिनमें । न प्रबुद्धां = न खिली हुई । न सुप्तां = न विनाखिली । स्थलकमलिनीम् इव = स्थलकमलिनीकी भाँति (तां साध्वीं पश्य—पूर्वश्लोकसे अन्वय है) ।

भावार्थ - रोशनदानोंसे भीतर आती हुई चन्द्रमाकी किरणोंको पहिले सुखके दिनोंकी तरह अमृत-सी शीतल समझकर उनकी ओर मुख करती हुई और फिर विरहके कारण उनसे संतप्त होकर आँखोंको पलकोंसे ढकती हुई । बदलीवाले दिन न विकसित, न अविकसित अर्थात् अधखिली स्थलकमलिनी-सी (उस पतिव्रता मेरी प्रियाको देखना) ।

टिप्पणी "न प्रबुद्धां न सुप्ताम्" यह वाक्यांश दोनोंके लिये है । जहाँ कमलिनीके पक्षमें इसका अर्थ 'न विकसित न अविकसित' होता है वहीं यक्षपत्नीके पक्षमें 'न जागी हुई न सोई हुई' भी अर्थ है । स्थलकमलिनीको सूर्यकमल कहते हैं । इसका पुष्प सूर्योदयके समयसे ही खिलना आरम्भ होता है ज्यों-ज्यों सूर्य आकाशमें बढ़ता जाता है त्यों-त्यों यह भी खिलता और उसी ओर घूमता जाता है । ठीक दोपहरको यह पूरा खिलकर फिर दिन ढलनेके साथ मुकुलित होना प्रारम्भ हो जाता है और सूर्यास्त पर बन्द हो जाता है । बादलवाले दिन सूर्योदय तो होता है किन्तु बादलोंसे ढके रहनेसे सूर्यकी गतिका ज्ञान इसे नहीं होता और यह अधखिला-सा ही रह जाता है । ऐसे प्रयोगोंमें कालिदास सिद्धहस्त हैं । देखिये कुमारसंभव—"शैलाधिराज-तनया न ययौ न तस्थौ" आदि ॥२९॥

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।
मत्संभोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥३०॥

निःश्वासेति ॥ शुद्धस्नानात्तैलादिरहितस्नानात्परुषं कठिनस्पर्शं नूनमागण्डलम्बम् । सुप्सुपेति समासः । अलकं चूर्णकुन्तलान् । जातावेकवचनम् । अधरकिसलयं क्लेशयति क्लिश्नातीति वा तेन तथोक्तेन । उष्णेनेत्यर्थः । क्लिश्यतेर्ण्यन्तात्क्लिश्नातेरण्यन्ताद्वा ताच्छील्ये णिनिः । निःश्वासेन विक्षिपन्तीं चालयन्तीं तथा स्वप्नजोऽपि स्वप्नावस्थाजन्योऽपि । साक्षात्संभोगासम्भवादिति भावः । मत्सम्भोगः । कथं केनापि प्रकारेणोपनयेत् । आगच्छेदित्याशयेनेति शेषः । इति नैवोक्तार्थत्वप्रयोगः "प्रयोगे चापौनरुक्त्यम्" इत्यालङ्कारिकाः । प्रार्थनायां लिङ् । नयनसलिलोत्पीडनाश्रुप्रवृत्त्या रुद्धावकाशामाक्रान्तस्थानाम् । दुर्लभामित्यर्थः । निद्रामाकाङ्क्षन्तीम् । स्नेहातुरत्वादिति भावः । अत्राश्रुविसर्जनेन लज्जात्यागो व्यज्यते ॥३०॥

पदार्थ—शुद्धस्नानात्=विना उबटनके स्नानसे । परुषं=रूखे । आगण्डलम्बम्=गालोंतक लटकते । अलकं=बालोंको । अधर०=पल्लव जैसे ओठोंको झुलसा देनेवाली । निःश्वासेन=श्वाससे । नूनं=निश्चय ही । विक्षिपन्ती=इधर-उधर हटाती हुई । स्वप्नजः अपि=स्वप्नमें होनेवाला भी । मत्संभोगः=मेरा सहवास । कथमुपनमेत्=कैसे ही प्राप्त हो जाय । इति=यह सोचकर । नयनसलिलो०=आँसुओंके प्रवाहसे रुकगया है मार्ग जिसका, ऐसी । निद्रां=निद्राको । आकाङ्क्षन्तीम्=चाहती हुई (तां साध्वीं पश्य-पूर्वश्लोकसे अन्वय है)।

भावार्थ—विना तेल आदि लगाये स्नान करनेसे रूखे और गालोंपर लटकते हुए बालोंको, कोमल अधरोंको झुलसादेनेवाली गरम-गरम निःश्वासोंसे इधर-उधर हटाती हुई तथा 'स्वप्नमें भी किसी प्रकार मेरा सहवास उसे प्राप्त हो जाय' यह सोचकर आँसुओंके प्रबल प्रवाहसे जिसका मार्ग अवरुद्ध हो गया है, ऐसी निद्राकी इच्छा करती हुई उस साध्वीको तुम देखना ।

टिप्पणी—भरतसेनने 'शुद्धस्नानात्' का अर्थ 'ऋतुस्नानसे' किया है। वस्तुतः यही अर्थ उपयुक्त प्रतीत होता है। क्योंकि ऋतुस्नानके बाद स्त्रीका शरीर रूखा हो जाता है इसीलिये चौथे दिन उसके शरीरमें तेल लगाना अनिवार्य कहा गया है। किन्तु विरहिणीके लिये वह भी निषिद्ध है। साथ ही ऋतुस्नानके बाद स्त्रीको संभोगकी तीव्र लालसा रहती है (इसीलिये ऋतुकालमें स्त्री-सहवास न करनेसे पुरुष प्रायश्चित्ती कहा गया है) अतः विरहमें वह स्वप्न-संभोगके लिये निद्राकी इच्छा करती है ॥३०॥

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥३१॥

आद्य इति ॥ आद्ये विरहदिवसे दाम मालां हित्वा त्यक्त्वा या शिखा बद्धा ग्रथिता शापस्यान्ते विगलितशुचा वीतशोकेन मयोद्वेष्टनीयां मोचनीयां स्पर्शक्लिष्टां स्पर्शे सति मूलकेशेषु सव्यथामित्यर्थः। कठिना च सा विषमा निम्नोन्नता च ताम। खञ्जकुब्जादिवदनन्तरस्य प्राधान्यविवक्षया "विशेषणं विशेष्येण बहुलम्" इति समासः। एकवेणीमेकीभूतवेणीम्। "पूर्वकाल—" इत्यादिना तत्पुरुषः। तां शिखाम्। अयमिता अकर्तितोपान्ता नखा यस्य तेन करेण गण्डाभोगात्कपोलविस्तारादसकृन्मुहुर्मुहुः सारयन्तीमपसारयन्तीम् "तां पश्य" इति पूर्वेण सम्बन्धः। असकृत्सारणाच्चित्तविभ्रमदशा सूचिता ॥३१॥

पदार्थ—आद्ये विरहदिवसे=विरहके पहिले दिन। दाम हित्वा=पुष्पमालाको छोड़कर। या शिखा=जो चोटी। बद्धा=गूँथी थी। शापस्य अन्ते=शापके समाप्त होनेपर। विगलितशुचा=नष्ट होगया है शोक जिसका, ऐसे। मया=मुझसे। उद्वेष्टनीयां=खोलीजानेवाली। स्पर्शक्लिष्टां=छूनेमें कष्टदायक कठिनविषमां=कठोर और विषम। ताम् एकवेणीं=उस एक चोटीको। अयमितनखेन करेण=बिना कटे नाखूनोंवाले हाथसे। गण्डाभोगात्=कपोलस्थलसे। असकृत्=बारबार। सारयन्तीं=हटाती हुई (तां साध्वी पश्य-पूर्वश्लोकसे अन्वय है)।

भावार्थ—बिछुड़नेके पहले दिन फूलमालाको हटाकर जो चोटी गूँथी थी, जिसको कि शापके समाप्त होनेपर प्रसन्न हुआ मैं ही खोलूँगा, जिसे छूनेमें भी उसे पीड़ा होती है और जो उलझी हुई है, उस इकहरी चोटीको विना कटे नाखूनोंवाले हाथसे अपने विस्तृत गालोंपरसे वारवार हटाती हुई उस पतिव्रताको देखना ।

टिप्पणी—प्राचीनकालमें यह प्रथा थी कि प्रवास जाते समय पति पत्नीका एक जूड़ा बाँध देता था और उस पूरे विरह कालमें वह उसी एक जूड़ेको धारण करती थी । जब पति वापस आता था तव वही अपने हाथसे उसे खोलता था। इसलिये उस अवधिमें तेल कंघी आदि कुछ न लगनेसे उसका रूखा होना, उलझना और उसमें जटा-सी हो जाना स्वाभाविक है—"यथा प्रोषितनाथानां व्यसनाभिद्रुताशया । वेशः स्यान्मलिनस्तासामेकवेणीधरं शिरः" ॥३१॥

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम् ।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥३२॥

सेति ॥ अबला दुर्बला संन्यस्ताभरणं कृशत्वात्त्यक्ताभरणमसकृदनेकशो दुःखदुःखेन दुःखप्रकारेण "प्रकारे गुणवचनस्य" इति द्विर्भावः । शय्योत्सङ्गे निहितं पेशलं मृदुलं गात्रं धारयन्ती वहन्ती । अनेनात्यन्ताशक्त्या मूर्छावस्था सूच्यते । सा त्वत्सखी त्वामपि नवजलमयं नवाम्बुरूपमस्रं बाष्पमवश्यं सर्वथा मोचयिष्यति । "द्विकर्मसु पचादीनामुपसङ्ख्यानम्" इति मुचेः पचादित्वाद्द्विकर्मकत्वम् । तथाहि । प्रायः प्रायेणार्द्रान्तरात्मा मृदुहृदयः मेघस्तु द्रवान्तःशरीरः । सर्वः करुणा करुणामयी वृत्तिरन्तःकरणवृत्तिर्यस्य स करुणावृत्तिर्भवति । हि यस्मात् । अस्मिन्नवसरे सर्वथा त्वया शीघ्रं गन्तव्यमान्तरदशापरिहारायेति सन्दर्भाभिप्रायः । ननु किमिदमादिमां चक्षुःप्रीतिमुपेक्ष्यावस्थान्तराण्येव तत्र भवान्कविरादृतवान् । उच्यते—"संभोगो विप्रलम्भश्च

द्विधा शृङ्गार उच्यते। संयुक्तयोस्तु संभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयोः। पूर्वानुराग-मानाख्यप्रवासकरुणात्मना। विप्रलम्भश्चतुर्धात्र प्रवासस्तत्र च त्रिधा। कार्यतः संभ्रमाच्छापादस्मिन्काव्ये तु शापजः। प्रागसङ्गतयोर्यूनोः सति पूर्वानुरञ्जने। चक्षुःप्रीत्यादयोऽवस्था दश स्युस्तत्क्रमो यथा। दृङ्मनःसङ्गसङ्कल्पजागरः कृशता रतिः। ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्ता इत्यनङ्गदशा दश। पूर्वसङ्गतयोरेव प्रवास इति कारणात्। न तत्र पूर्ववच्चक्षुःप्रीतिरुत्पत्तिमर्हति। सत्सङ्गस्य तु सिद्धस्याप्यविच्छेदोऽत्र वर्ण्यते। अन्यथा पूर्ववद्वाच्या इति तावद्व्यवस्थिते। वैयर्थ्यादादिमां हित्वा वैरस्यादन्तिमां तथा। हृत्सङ्गादिरिहाचष्ट कविरष्टाविति स्थितिः। मत्सादृश्यं लिखन्तीति पद्येऽस्मिन्प्रतिप्रादिता। चक्षुःप्रीतिरिति प्रोक्तं निरुत्तरकृताननम्। चक्षुःप्रीतिर्भवेच्चित्रेष्वदृष्टचरदर्शनात्। यथा मालविका-रूपमग्निमित्रस्य पश्यतः। योषितानां च भर्तॄणां क्व दृष्टादृष्टपूर्वता। अथ तत्रापि सन्देहे स्वकलत्राणि पृच्छतु। किं भर्तृप्रत्यभिज्ञा स्यात्किं वैदेशिक-भावना। प्रवासादागते त्वस्मिन्नित्यलं कलहैर्वृथा।" इति ॥३२॥

पदार्थ— संन्यस्ताभरणम् = आभूषणोंसे रहित होकर। असकृत्=वारवार। दुःखदुःखेन = अत्यन्त दुःखसे जैसे। शय्योत्सङ्गे = सेजपर। निहितं = डाले हुए। पेशलं = कोमल। गात्रं = शरीरको। धारयन्ती = धारण करती हुई। अबला = दुर्बल। सा = वह। त्वामपि = तुमको भी। नवजलमयं = नवीन जलरूप। अस्रं=आँसू। अवश्यं मोचयिष्यति = अवश्य ही गिरवाएगी। प्रायः=अधिकतर। सर्वः=सभी। आर्द्रान्तरात्मा=कोमल हृदयवाले। करुणावृत्तिः=दयालु स्वभावके। भवति = होते हैं।

भावार्थ— आभूषणोंसे हीन होकर बार-बार दुःखसे जैसे भूमिशय्या पर रखे हुए अपने कोमल शरीरको किसी प्रकार धारण करती हुई दुर्बल उस मेरी प्रियाको देखकर तुम्हारे भी नवीन जलरूप आँसू अवश्य बहने लगेंगे। क्योंकि प्रायः सभी कोमल हृदयके व्यक्ति दयालु स्वभावके होते हैं अर्थात् तुम्हें भी उसे देखकर दया आ जायेगी और तुम उसकी दशापर रोने लगोगे।

टिप्पणी— इस श्लोकसे उद्वेग, अनुस्मृति और व्याधि, ये तीन अवस्थाएँ दिखाई हैं "चिन्तानिःश्वासखेदाद्यैरुद्वेगो नाम जायते" आँसू गिराना या

गिरवाना उद्वेगावस्था है। "विद्वेषादन्यकार्याणामनुस्मृतिरुदाहृता" आभूषण रहित होना अनुस्मृति और "दुःखदुःखेन गात्रं' से व्याध्यवस्था है "क्षुभ्यति हृदयं प्रदहत्यङ्गं शिरसश्च वेदना तीव्रा। न च धृतिमुपलभते व्याधावेवं वियोगिनी नारी" ॥३२॥

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।
वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षन्ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ॥३३॥

नन्वीदृशीं दशामापन्नेति कथं त्वया निश्चितमत आह—

जान इति॥ हे मेघ! तव सख्या मनो मयि संभृतस्नेहं सञ्चितानुरागं जाने अस्मात्स्नेहज्ञानकारणात्प्रथमविरहे। प्रथमग्रहणं दुःखातिशयद्योतनार्थम्। तां त्वत्सखीमित्थंभूतां पूर्वोक्तावस्थामापन्नां तर्कयामि। ननु सुभगमानिनामेष स्वभावो यदात्मनि स्त्रीणामनुरागप्रकटनं तत्राह—वाचालमिति। सुभगामात्मानं मन्यत इति सुभगंमन्यः "आत्ममाने खश्च" इति खश्प्रत्ययः। "अरुर्द्विषद्—" इत्यादिना मुमागमः। तस्य भावः सुभगम्मन्यभावः। सुभगमानित्वं मां वाचालं बहुभाषिणं न करोति खलु। सौन्दर्याभिमानितां न प्रकटयामीत्यर्थः। "स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्" इत्यमरः। "आलजाटचौ बहुभाषिणि" इत्यालच्प्रत्ययः। किन्तु हे भ्रातः! मयोक्तं यत् "आधिक्षामाम्" इत्यादि तन्निखिलं सर्वमचिराच्छीघ्रमेव ते तव प्रत्यक्षम्। भविष्यतीति शेषः ॥३३॥

पदार्थ—तव सख्याः=तुम्हारी सखीका। मनः=मन। मयि=मुझमें। संभृतस्नेहं=स्नेहसे भरा। जाने=समझता हूँ। अस्मात्=इसीसे। अहं=मैं। प्रथमविरहे=पहले वियोगमें। तां=उसको। इत्थंभूतां=ऐसी हुई। तर्कयामि=सोचता हूँ। सुभगम्मन्यभावः=सौभाग्यशाली होनेका अभिमान। मां=मुझे। वाचालं=अधिकबोलनेवाला। न करोति=नहीं कर रहा है। भ्रातः=हे भाई! मया यत्

उक्तं=मैंने जो कहा है। निखिलं=वह सारा। अचिरात्=शीघ्र ही। ते प्रत्यक्षं=तुम्हारे सामने आयगा।

भावार्थ—तुम्हारी सखीका मन मेरे प्रति अनुरागसे पूर्ण है। यह मैं जानता हूँ। इसीलिए इस पहिले-पहिले वियोगसे वह ऐसी (जैसी में वर्णन कर चुका हूँ) होगी यह मैं सोचता हूँ। हे मेघ! अपनेको भाग्यशाली समझता हुआ मैं यह बढ़चढ़कर नहीं बोल रहा हूँ। मैंने जो कुछ कहा वह सब शीघ्र ही तुम प्रत्यक्ष देखोगे।

टिप्पणी—"सुभगंमन्युभावः" ऐसा भी कुछ टीकाकारोंने पाठ माना है, इसका अर्थ है 'ऐसा भाग्यशाली मैं विरहजन्य शोकके कारण इतना बोल गया ऐसा न समझना' ॥३३॥

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥३४॥

रुद्धेति॥ अलकै रुद्धा अपाङ्गयोः प्रसरा यस्य तत्तथोक्तम्। अञ्जनेन स्नेहः स्नैग्ध्यं तेन शून्यम। स्निग्धाञ्जनरहितमित्यर्थः। अपि किं च मधुनो मद्यस्य प्रत्यादेशान्निराकरणात्। परित्यागादित्यर्थः। "प्रत्यादेशो निराकृतिः" इत्यमरः। विस्मृतो भ्रूविलासो भ्रूभङ्गो येन तत् नयनस्य रुद्धापाङ्गप्रसरत्वादिकं विरहसमुत्पन्नमिति भावः। त्वय्यासन्ने सति। स्वकुशलवार्ताशंसिनीति शेषः। उपर्यूर्ध्वभागे स्पन्दते स्फुरतीत्युपरिस्पन्दि। तथा च निमित्तनिदाने—"स्पन्दान्मूर्ध्नि च्छत्रलाभं ललाटे पट्टमंशुकम्। इष्टप्राप्ति दृशोरूर्ध्वमपाङ्गे हानिमादिशेत्।" इति। मृगाक्ष्यास्त्वत्सख्या नयनम्। वाममिति शेषः। "वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः। दाने देवादिपूजायां स्पन्देऽलङ्करणेऽपि च।" इति स्त्रीणां वामभागप्राशस्त्यात्। मीनक्षोभान्मीनचलनाच्चलस्य कुवलयस्य श्रिया शोभया तुलां सादृश्यमेष्यतीति शङ्के तर्कयामि। सदृशपर्यायस्य तुला शब्दस्य प्रतिषेधेऽत्र च सादृश्य-

वाचित्वाद् तद्योगे "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्" इति कृद्योगे तृतीया ॥३४॥

पदार्थ -- अलकैः=केशोसे। रुद्धापाङ्गप्रसरं=रोक दिया है कनखियोंका प्रसार जिसका, ऐसा। अञ्जनस्नेहशून्यं=काजलकी चिकनाहटसे रहित। अपि-च=और। मधुनः=मदिराके। प्रत्यादेशात्=त्यागसे। विस्मृतभ्रूविलासं=भौंह मटकाना जो भूल गया है, ऐसा। त्वयि आसन्ने=तुम्हारे समीपमें आनेपर। उपरिस्पन्दि=ऊपरके भागमें फड़कता हुआ। मृगाक्ष्याः=मृगनयनीका। नयनम्=नेत्र। मीनक्षोभात्=मछलियोंके हिलने-डुलनेसे। चलकुवलयश्रीतुलां=चंचल नीलकमलकी शोभाकी समानताको। एष्यति=प्राप्तहोगा। इति शङ्के=ऐसा सोचता हूँ।

भावार्थ---जब तुम उसके पास पहुँचोगे तब उस मृगनयनीकी उपरके पलकमें फड़कती हुई वह बायीं आँख, जिसका कि कनखियोंतक आना बालोंसे रुक जाता है, जो काजल न लगानेसे रूखी है और मदिराकी मादकता न होनेसे भौंह-मटकानेका अभ्यास जिसे भूल-सा गया है, उस समय मैं समझता हूँ मछलियोंके इधर-उधर चलनेसे हिलाए गये नीले कमल-सी लगने लगेगी।

टिप्पणी— श्लोकमें स्पष्टतः नेत्रके साथ बायाँ नहीं कहा गया है किन्तु अगले श्लोकमें 'वामश्चास्याः' से यहाँ भी उसका सम्बन्ध कर लेते हैं क्योंकि स्त्रियोंका वाम अङ्ग फड़कना ही प्रियसंगमका सूचक है। "श्रीतुलामेष्यति" इस पदमें मल्लिनाथने 'श्रिया शोभया तुलां सादृश्यं' ऐसा विग्रह करके "तुल्यार्थैतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्" इति कृद्योगे तृतीया" लिखा है। वस्तुतः यहाँ षष्ठी ही होगी तृतीया नहीं क्योंकि तुलाशब्द सादृश्यका ही वाचक है सदृशका नहीं। "तुला माने पलशते सादृश्ये" हैमः। प्रकाशकों और उनके सस्ते सम्पादकोंने संजीवनीके इस अंशपर मनमाने पाठ रखे हैं जो अनुचित हैं, क्योंकि मल्लिनाथने अपना यही अभिप्राय माघ सर्ग १ श्लोक ४ (स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना) की टीकामें भी व्यक्त किया है ॥३४॥

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥३५॥

वाम इति ॥ मदीयैः कररुहपदैर्नखपदैः । "पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । मुच्यमानः परिहीयमाणः । नखाङ्करहित इत्यर्थः । ऊर्वोर्नखपदास्पदत्वं तु रतिरहस्ये—"कण्ठकुक्षिकुचपार्श्वभुजोरःश्रोणिसक्थिषु नखास्पदमाहुः" इति । चिरपरिचितं चिराभ्यस्तं मुक्ताजालं मौक्तिकसरमयं कटिभूषणं दैवगत्या दैववशेन त्याजितः । संप्रति नखपदोष्माभावेन शीतोपचारस्य तस्य वैयर्थ्यादिति भावः । त्यजतेर्ण्यन्तात्कर्मकर्तरि क्तः । "द्विकर्मनु पचादीनां चोपसंख्यानमिष्यते" इति पचादित्वाद्द्विकर्मकत्वम् । संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां हस्तेन मर्दनानाम् । "संवाहनं मर्दनं स्यात्" इत्यमरः । समुचितो योग्यः । सरसो रसार्द्रः परिपक्वो न शुष्कश्च स एव विवक्षितः । तत्रैव पाण्डिमसंभवात् । स चासौ कदलीस्तम्भश्च स एव गौरः पाण्डुरः । "गौरः करीरे सिद्धार्थे शुक्ले पीतेऽरुणेऽपि च" इति मालतीमालायाम् । अस्याः प्रियाया वाम ऊरुश्चलत्वं स्पन्दनं यास्यति प्राप्स्यते । "ऊरोः स्पन्दाद्रतिं विद्यादूर्वोः प्राप्तिं सुवाससः" इति निमित्तनिदाने ॥३५॥

पदार्थ – मदीयैः कररुहपदैः = मेरे नखोंके चिह्नोंसे । मुच्यमानः = छोड़ा जाता हुआ । दैवगत्या = भाग्यवश । चिरपरिचितं = दीर्घकालसे परिचित । मुक्ताजालं = मोतियोंकी लड़ोंको । त्याजितः = छुड़ाया हुआ । संभोगान्ते=रतिक्रीड़ाके बाद । मम = मेरे । हस्तसंवाहनानां = हाथोंसे दबानेके । समुचितः = योग्य । सरसकदलीस्तम्भगौरः=हरे-हरे केलेके खम्भेसी गोरी । अस्याः=इसकी । वामः ऊरुः = बायीं जाँघ । चलत्वं यास्यति = फड़कने लगेगी ।

भावार्थ—मेरे नाखूनोंके चिह्न इस समय जिसमें नहीं दीख रहे हैं, भाग्यवशात् दीर्घकालसे पहिनी हुई मोतियोंकी लड़वाली करधनी भी जिसमें नहीं है तथा संभोगके बाद जिसे मैं अपने हाथोंसे दबाया करता था ऐसी, उस प्यारीकी हरे-हरे केलेके खम्भेसी गोरी बायीं जांघ भी फड़कने लगेगी ।

टिप्पणी—भरतसेनने—"सरसकदलीस्तम्बगौरः" पाठ माना है जो स्तम्भकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। इसी प्रकार "कररुहपदैर्मुच्यमानः" को मल्लिनाथने "नखांकरहित इत्यर्थः" कहा है किन्तु भरतसेन कहते हैं वियोगके समयकी यक्षद्वारा की गई नखरेखायें धीरे-धीरे जिसमें मिट-सी रही हैं ॥३५॥

तस्मिन् काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।
माभूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्
सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥३६॥

तस्मिन्निति ॥ हे जलद ! तस्मिन् काले त्वदुपसर्पणकाले सा मत्प्रिया लब्धं निद्रासुखं यया तादृशी स्याद्यदि स्याच्चेत्। एनां निद्राणामन्वास्य पश्चादासित्वेत्यर्थः। उपसर्गवशात्सकर्मकत्वम्। स्तनितविमुखो गर्जितपराङ्मुखो निःशब्दः सन्। अन्यथा निद्राभङ्गः स्यादिति भावः। याममात्रं प्रहरमात्रम्। "द्वौ यामप्रहरौ समौ" इत्यमरः। सहस्व प्रतीक्षस्व। प्रार्थनायां लोट्। शक्तयोरेकवारसुरतस्य यामावधिकत्वात्स्वप्नेऽपि तथा भवितव्यमित्यभिप्रायः। तथा च रतिसर्वस्वे—"एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः। चण्डशक्तिमतोर्यूनोरद्भुतक्रमवर्तिनोः।" इति। यामसहनस्य प्रयोजनमाह—माभूदिति। अस्याः प्रियायाः प्रणयिनि प्रेयसि मयि कथंचित्कृच्छ्रेण स्वप्नलब्धे सति गाढोपगूढं गाढालिङ्गनम्। नपुंसके भावे क्तः। सद्यस्तत्क्षणं कण्ठाच्च्युतः स्रस्तो भुजलतयोर्ग्रन्थिर्बन्धो यस्य तन्माभून्मास्तु। कथञ्चिल्लब्धस्यालिङ्गनस्य सद्यो विघातो मा भूदित्यर्थः। न चात्र निद्रोक्तिः "तामुन्निद्राम्" इति पूर्वोक्तेन निद्राच्छेदेन विरुध्यते पुनः सप्तम्याद्यवस्थासु पाक्षिकानिद्रासम्भवात्। तथा च रसरत्नाकरे–"आसक्ती रोदनं निद्रा निर्लज्जानर्थवाग्भ्रमः। सप्तमादिषु जायन्ते दशाभेदेषु वासुके॥" इति ॥३६॥

पदार्थ—जलद=हे मेघ ! तस्मिन् काले=उस समय। यदि सा=यदि वह। लब्धनिद्रासुखा=प्राप्त हुआ है निद्राका आनन्द जिसको, ऐसी। स्यात्=हो तो

स्तनितविमुखः = गरजना छोड़कर । एनामन्वास्य = इसके पीछे बैठकर । याममात्रं = एक पहर तक । सहस्व = प्रतीक्षा करो । कथंचित्=किसी प्रकार । मयि प्रणयिनि = मुझ प्रियतमके । स्वप्नलब्धे=स्वप्नमें प्राप्त होनेपर । अस्याः= इसका । गाढ़ोपगूढं = गाढ आलिङ्गन । सद्यःकण्ठ०=एकाएक गिर गयी है लता जैसी भुजाओंकी गाँठ जिससे, ऐसा । माभूत् = न होवे ।

भावार्थ -- हे मेघ ! उस समय यदि वह मेरी प्रिया नींदमें मग्न हो तो तुम बिना गरजे उसके पीछे बैठकर एक पहर तक प्रतीक्षा करना । (सहसा उसे जगा न देना क्योंकि) बड़ी कठिनतासे मुझ प्रणयीको स्वप्नमें पा लेनेपर किया हुआ उसका गाढ़ आलिगन एकाएक (जग जानेसे) गलेमें लता जैसी भुजाओंके बन्धनसे रहित न हो जाय अर्थात् मेरे गलेमें पड़ी उसकी भुजाएँ छूट न जायें ।

टिप्पणी—मल्लिनाथके अतिरिक्त प्रायः अन्य टीकाकारोंने "अन्वास्यैनां" के स्थानमें "तत्रासीन" पाठ किया है जो अपेक्षाकृत अच्छा है । इसी प्रकार 'सहस्व' इस लोट्के स्थानमें 'सहेथाः' यह विधिलिङ्का प्रयोग भी साधुतर जान पड़ता है क्योंकि इसमें आज्ञाकी अपेक्षा आमन्त्रणका भाव आ जाता है ॥३६॥

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥३७॥

तामिति ॥ तां प्रियां स्वस्य जलकणिकाभिर्जलबिन्दुभिः शीतलेनानिलेनोत्थाप्य प्रबोध्य । एतेन तस्याः प्रभुत्वाद्व्यजनानिलसमाधिर्व्यज्यते । यथाह भोजराजः—"मृदुभिर्मर्दनैः पादे शीतलैर्व्यजनैः स्तनौ । श्रुतौ च मधुरैर्गीतैर्निद्रातो बोधयेत्प्रभुम्" इति । अभिनवैर्नूतनैर्मालतीनां जालकैः समं जातीमुकुलैः सह ॥ "सुमना मालती जातिः" इति, "साकं सत्रा समं सह" इति, "क्षारको जालकं क्लीवे कलिका कोरकः पुमान्" इति चामरः । प्रत्याश्वस्तां सुस्थिताम् । अन्यच्च पुनरुच्छ्वासिताम् । श्वसेःकर्तरि क्तः । "ओदितश्च" इति चकारादिट्प्रतिषेधः । एतेनास्याः कुसुमसौकुमार्यं गम्यते । त्वत्सनाथे

त्वत्सहिते। "सनाथं प्रभुमित्याहुः सहिते चित्ततापिनि" इति शब्दार्णवे। गवाक्षे स्तिमितनयनां कोऽसाविति विस्मयान्निश्चलनेत्रां मानिनीं मनस्विनीम्। जनानौचित्यासहिष्णुमित्यर्थः। विद्युद्गर्भोऽन्तःस्थो यस्य स विद्युद्गर्भः। अन्तर्लीनविद्युत्क इत्यर्थः। 'गर्भोऽपवारकेऽन्तःस्थे गर्भोऽग्नौ कुक्षिणोऽर्भके" इति शब्दार्णवे। दृष्टिप्रतिघातेन वक्तुर्मुखावलोकनप्रतिबन्धकत्वान्न विद्युता द्योतितव्यमिति भावः। धीरो धैर्यविशिष्टश्च सन्। अन्यथा शीलत्वादिनैतदनाश्वासनप्रसङ्गादिति भावः। स्तनितवचनैः स्तनितान्येव वचनानि तैर्वक्तुं प्रक्रमेथा उपक्रमस्व। विध्यर्थे लिङ्। "प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्" इत्यात्मनेपदम् ॥३७॥

पदार्थ—स्वजलकणिकाशीतलेन = अपने जलकी भूरोंसे ठंढे-ठंढे। अनिलेन=वायुसे। ताम् उत्थाप्य=उसे जगाकर। अभिनवैः=ताजे। मालतीनां जालकैः समं=मालतीके गुच्छोंके साथ-साथ। प्रत्याश्वस्तां=आश्वस्त हुई (मालती पक्षमें विकसित)। त्वत्सनाथे=तुमसे अधिष्ठित। गवाक्षे=खिड़कीमें। स्तिमितनयनां= निश्चलनेत्रोंवाली। मानिनीं=मानिनीसे। विद्युद्गर्भः=विजली जिसके अन्दर छिपी है, ऐसे। धीरः=गम्भीर। स्तनितवचनैः = गर्जन रूप वचनोंसे। वक्तुं प्रक्रमेथाः = बोलना प्रारम्भ करना।

भावार्थ—जलकी मन्द फुहारोंसे युक्त शीतल वायुद्वारा जगाकर नये-नये मालतीके गुच्छोंके साथ-साथ स्फूर्तियुक्त-सी और तुम जिस खिड़की पर बैठे हो उस ओर टकटकी लगाई हुई उस मानशालिनीसे, विजलीको भीतर छिपाये हुए कुछ गम्भीर होकर गर्जनरूप वचनोंसे बोलना प्रारम्भ करना।

टिप्पणी—जलकी मन्द फुहारोंसे युक्त शीतलवायुसे जैसे मालतीके फूल खिलने लगते हैं ऐसे ही वह कोमलांगी भी उस वायुसे स्फूर्तिमती हो जायगी, यह तात्पर्य है। कुछ टीकाकारोंने विद्युद्गर्भः का अर्थ स्त्रीसहायः किया है। उनका तात्पर्य है कि पर-स्त्रीके साथ एकाकी वार्तालाप शास्त्रविरुद्ध है, अतः मेघ अपनी पत्नी विद्युत्को साथ लेकर यक्षपत्नीसे वार्तालाप करे, ऐसा यक्ष निर्देश करता है। हमें तो मल्लिनाथका अर्थ ही उचित प्रतीत होता है क्योंकि मेघ यदि विद्युत्को भीतर न छिपायेगा तो यक्षपत्नीकी आँखोंमें चकाचौंध

होनेसे वह मेघको ठीकसे न तो देख पायेगी और न उसकी बात ही सुन पायेगी ॥३७॥

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥३८॥

संप्रति दूतस्य श्रोतृजनाभिमुखीकरणचातुरीमुपदिशति—

भर्तुरिति ॥ विधवा गतभर्तृका न भवतीत्यविधवा सभर्तृका । हे अविधवे ! अनेन भर्तृजीवनसूचनादनिष्टाशङ्कां वारयति । मां भर्तुस्तव पत्युः प्रियं मित्रं प्रियसुहृदम् । तत्रापि हृदयनिहितैर्मनसि स्थापितैस्तत्सन्देशैस्तस्यभर्तुःसन्देशैस्त्वत्समीपमागतम् । भर्तुःसन्देशकथनार्थमागतमित्यर्थः । अम्बुवाहं मेघं विद्धि जानीहि । न केवलमहं वार्ताहरः किंतु घटकोऽपीत्याशयेनाह । योऽम्बुवाहो मेघो मन्द्रस्निग्धैः स्निग्धगम्भीरैर्ध्वनिभिर्गर्जितैः करणैः । अबलानां स्त्रीणां वेणयस्तासां मोक्षे मोचने उत्सुकानि पथि श्राम्यतां श्रान्तिमापन्नानां प्रोषितानां प्रवासिनाम् । पान्थानामित्यर्थः । वृन्दानि सङ्घांस्त्वरयति । पान्थोपकारिणो मे किमु वक्तव्यं सुहृदुपकारित्वमिति भावः ॥३८॥

पदार्थ—अविधवे=हे जीवत्पतिके । मां=मुझे । भर्तुः प्रियं मित्रं=अपने पतिका प्रियमित्र । हृदयनिहितैः=हृदयमें रखे हुए । तत्सन्देशैः=उसके सन्देशोंके साथ । त्वत्समीपम् आगतं=तुम्हारे पास आया हुआ । अम्बुवाहं=मेघ । विद्धि=जानो । यः=जो । मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः=गम्भीर और मधुर गर्जनाओंसे । अबलावेणि०=पत्नियोंकी चोटियोंको खोलनेके लिये उत्कण्ठित । पथि श्राम्यतां=मार्गमें विश्राम करते हुए । प्रोषितानां=प्रवासियोंके । वृन्दानि=समूहोंको । त्वरयति=शीघ्रता करवाता है ।

भावार्थ—तुम उससे कहना—हे जीवितपतिवाली ! मुझ बादलको अपने प्रियतमका प्रियमित्र और हृदयमें रखे हुए उसके सन्देशोंको लेकर तुम्हारे पास

आया हुआ समझो। मैं वही मेघ हूं, जो गम्भीर और मधुर गर्जनाओंसे, अपनी प्रियाओंकी इकहरी चोटियोंको खोलनेके लिये उत्कंठित और मार्गमें विश्राम करते हुए पथिकोंके समूहोंको, घर जानेके लिये उतावला कर देता है।

टिप्पणी—'अविधवे !' यह शब्द साभिप्राय है। इस प्रथमविशेषणसे ही मेघ उसे सूचित कर देता है कि तुम्हारा पति जीवित है। कुछ टीकाकारोंने 'अवि: मेष: धवो यस्या:' ऐसे विग्रहकी प्रतीति होनेसे इसमें ग्राम्यता दोष माना है जो उचित नहीं, क्योंकि भगिनी, भगवती आदि शब्दोंका प्रयोग लोकमें बहुलतासे होता है। उनमें कोई दोष-कल्पना नहीं होती। इसी प्रकार विधवा शब्द भी गतभर्तृका अर्थमें अत्यन्त प्रचलित है। अविधवा कहनेसे जीवत्पतिकाका ही बोध होगा अर्थान्तरका नहीं। किसीने यह भी शंका उठाई है कि दूसरे विशेषण दिये जा सकते थे, अमंगलसूचक विधवा शब्द क्यों कहा ? यह भी ठीक नहीं, क्योंकि यह साभिप्राय है, पहिले कह चुके हैं। फिर अविधवा शब्दका प्रयोग भास आदि महाकवियोंने भी किया है। संभवत: उस समय यह उतना अमंगल सूचक न माना जाता रहा हो ॥३८॥

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैवम् ।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः ॥३९॥

भर्तृसख्यादिज्ञापनस्य फलमाह—

इतीति ॥ इत्येवमाख्याते सति पवनतनयं हनूमन्तं मैथिलीव सीतेव सा मत्प्रिया। उन्मुख्युत्कण्ठयौत्सुक्येनोच्छ्वसितहृदया विकसितचित्ता सती त्वां वीक्ष्य सम्भाव्य सत्कृत्य च। अस्माद्भर्तृमैत्रीज्ञापनात्परं सर्वं श्रोतव्यम्। अवहिताप्रमत्ता सती श्रोष्यत्येव। अत्र सीताहनूमदुपाख्यानादस्या: पातिव्रत्यं मेघस्य दूतगुणसम्पत्तिश्च व्यज्यते। तद्गुणास्तु रसाकरे— "ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानवर्जितः। धीमानुदारो निःशङ्को वक्ता दूतः स्त्रियो भवेत्।" इति। ननु वार्तामात्रश्रवणादस्याः को लाभ इत्याश-

ङ्क्यार्थान्तरमुपन्यस्यति—हे सौम्य साधो, सीमन्तिनीनां वधूनाम्। "नारी सीमन्तिनी वधूः" इत्यमरः। सुहृदा सुहृन्मुखेनोपनतः प्राप्तः सन्। सुहृत्पदं विप्रलम्भशङ्कानिवारणार्थम्। कान्तस्योदन्तो वार्ता कान्तोदन्तः। "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्" इत्यमरः। सङ्गमात्कान्तसम्पर्कात्किञ्चिदून ईषदूनस्तद्वदेवानन्दकारीत्यर्थः ॥३६॥

पदार्थ – इति आख्याते=ऐसा कहनेपर। उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया=उत्सुकतासे उछल रहा है हृदय जिसका, ऐसी। उन्मुखी=ऊपरको मुख की हुई। सा=वह। मैथिली पवनतनयम् इव=सीता हनूमानको जैसे। त्वां वीक्ष्य=तुमको देखकर! एवं संभाव्य च=और ऐसा समझकर। अस्मात्परं=इससे आगे। अवहिता=सावधान होकर। श्रोष्यति=सुनेगी। सौम्य=हे सज्जन! सीमन्तिनीनां =स्त्रियोंके लिये। सुहृदुपनतः=मित्रद्वारा लाया हुआ। कान्तोदन्तः=प्रियतमका वृत्तान्त। संगमात् = मिलनेसे। किञ्चिद् ऊनः = कुछ ही कम होता है।

भावार्थ – तुम्हारे इतना कहनेपर उत्कण्ठासे उछलते हृदयवाली वह मेरी प्रिया ऊपरको मुख करके इस प्रकार तुम्हारी ओर देखेगी और तुम्हारा आदर करेगी जैसे रामका सन्देश लेकर गये हनूमान्‌को सीताने देखा था। तब इससे आगेकी वातोंको ध्यानसे सुनेगी। क्योंकि सौभाग्यवती स्त्रियोंके लिये मित्रोंद्वारा लायेहुए प्रियतमके समाचार और साक्षात् प्रियसमागममें थोड़ा ही अन्तर होता है।

टिप्पणी–मेघदूत प्रथमश्लोककी टीकामें मल्लिनाथके "सीतां प्रति रामस्य हनूमत्सन्देशं मनसि विधाय मेघसन्देशं कविः कृतवानित्याहुः" ये वचन इस श्लोकसे पूर्ण चरितार्थ होते हैं। स्थान-स्थान पर आये हुए रघुपतिसूचक पदोंसे कालिदासपर आदिकवि वाल्मीकिका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होते हुए भी यह माननेमें किसीको विप्रतिपत्ति नहीं कि निर्माणकी दृष्टिसे मेघदूतकी सारी वस्तुएँ कविकी अपनी हैं अतः इसे मौलिक रचना कहा जा सकता है और दूतकाव्योंकी परम्पराके आदि कवि कालिदास ही कहे जा सकते हैं ॥३६॥

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।

अव्यापन्नः कुशलमबले ! पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥४०॥

सम्प्रति सन्दिशति—

तामिति ॥ हे आयुष्मन् । प्रशंसायां मतुप् । परोपकारश्लाघ्यजीवितेत्यर्थः । मम वचनं प्रार्थनावचनं तस्माच्चात्मनः स्वस्योपकर्तुं च । परोपकारेणात्मानं कृतार्थयितुमित्यर्थः । उपकारक्रियां प्रति कर्मत्वेऽपि तस्यापकरोतीत्यादिवत्सम्बन्धमात्रविवक्षायामात्मन इति षष्ठी न विरुध्यते । यथाह भारविः-"सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्" इति तथा श्रीहर्षश्च—"साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम् । न कुतूहलि कस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम् ।" इति । तथा च "क्वचित्क्वचिद्द्वितीयादर्शनात्सर्वस्य तथा" इति नाथवचनमनाथवचनमेव । तां प्रियामेवं ब्रूयात् । भवानिति शेषः । किमित्याह-हे अबले, तव सहचरो भर्ता रामगिरेश्चित्रकूटस्याश्रमेषु तिष्ठतीति रामगिर्याश्रमस्थः सन्नव्यापन्नः । न मृत इत्यर्थः । अमरणे हेतुमाह—वियुक्तो वियोगं प्राप्तो दुःखी संस्त्वां कुशलं पृच्छति । दुह्यादित्वात्पृच्छतेर्द्विकर्मकत्वम् । तथाहि । सुलभविपदामयत्नसिद्धविपत्तीनां प्राणिनामेतदेव कुशलमेव पूर्वाभाष्यमेतदेव प्रथममवश्यं प्रष्टव्यम् । "कृत्याश्च" इत्यावश्यकार्थे ण्यत्प्रत्ययः ॥४०॥

पदार्थ आयुष्मन्=हे चिरजीविमेघ ! मम वचनात् च=मेरे कहनेसे भी । आत्मनः उपकर्तुं च = और अपनी ओरसे उपकारकी दृष्टिसे भी । एवं ब्रूयाः = ऐसा कहना । अबले=हे दुर्बल देहवाली ! रामगिर्याश्रमस्थः=रामगिरिके आश्रममें रहता हुआ । वियुक्तः = विरही । तव सहचरः =तुम्हारा सहचर (यक्ष) । अव्यापन्नः=न मरा हुआ (कुशल युक्त) त्वां कुशलं पृच्छति=तुम्हारी कुशल पूछता है । सुलभविपदां=सुलभ हैं विपत्तियाँ जिनको, ऐसे । प्राणिनां=प्राणियोंके लिये । एतदेव = यही । पूर्वाभाष्यं = पहिला कथन होता है ।

भावार्थ - हे दीर्घायु वाले मेघ ! मेरी ओरसे और अपने द्वारा हमारे उपकारकी दृष्टिसे भी, तुम उससे यह कहना कि हे दुबली ! रामगिरिके आश्रममें

स्थित तुम्हारा विरही पति जीवित है और तुम्हारी कुशल पूछता है। क्योंकि आसानीसे विपत्तियोंमें पड़जानेवाले प्राणियोंके लिये सर्वप्रथम पूछनेकी यही बात होती है।

टिप्पणी — 'आयुष्मन्' यह विशेषण अपनेसे छोटेके लिए प्रयुक्त होता है। मेघको यक्षने अपना छोटा भाई माना है जैसा कि स्थान-स्थानपर भ्रातः! द्रक्ष्यसि भ्रातृजायां, आदिसे स्पष्ट हैं। किसी भी वार्ता या संदेशके पहिले कुशल-प्रश्न पूछना भारतीय शिष्टाचार है। पत्रादिमें भी अभिवादनादिके अनन्तर सबसे पहिले कुशलप्रश्न ही लिखा जाता है, इसका अच्छा हेतु यक्षने निर्दिष्ट किया है कि प्राणियोंके लिये विपत्तियाँ आसान हैं वे कभी भी विपत्तिसे घिर सकते हैं अतः उनसे सर्वप्रथम पूछनेकी बात (पूर्वाभाष्य) कुशलप्रश्न ही है ॥४०॥

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्‌वासं समधिकतरोच्छ्‌वासिना दूरवर्ती
सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥४१॥

अङ्गेनेति ॥ किं च दूरवर्ती दूरस्थः। न चागन्तुं शक्यत इत्याह वैरिणा विरोधिना विधिना दैवेन रुद्धमार्गः प्रतिबद्धवर्त्मा स ते सहचरः तनुना कृशेन गाढतप्तेनात्यन्तसन्तप्तेन सास्रेण साश्रुणा। उत्कण्ठा वेदनास्य जातो-त्कण्ठितस्तेनोत्कण्ठितेन। "तदस्य सञ्जातम्—" इत्यादिनेतच्प्रत्ययः। उत्कण्ठतेर्वा कर्तरि क्तः। समधिकतरमधिकमुच्छ्‌वसितीति समधिकतरो-च्छ्‌वासी तेन दीर्घनिःश्वासिनेत्यर्थः। ताच्छील्ये णिनिः। अङ्गेन स्व-शरीरेण प्रतनु कृशं तप्तं वियोगदुःखेन सन्तप्तमश्रुद्रुतमश्रुक्लिन्नम्। "अश्रु नेत्राम्बु रोदनं चास्रमस्रु च" इत्यमरः। अविरतोत्कण्ठमविच्छिन्नवेदन-मुष्णोच्छ्‌वासि तीव्रनिःश्वासम्। 'तिग्मं तीव्रं खरं तीक्ष्णं चण्डमुष्णं समं स्मृतम्'' इति हलायुधः। अङ्गं त्वदीयं शरीरं तैः स्वसंवेद्यैः सङ्कल्पैर्मनोरथै-र्विशति। एकीभवतीत्यर्थः। अत्र समरागित्वद्योतनाय नायकेन नायिकायाः समानावस्थत्वमुक्तम् ॥४१॥

पदार्थ—वैरिणा विधिना=वैरी दैवसे (विपरीत भाग्यसे)। रुद्धमार्गः=रोकेगए हैं मार्ग जिसके, ऐसा। दूरवर्ती=दूर पड़ा हुआ (तव सहचरः)। तनुना=कृश। गाढतप्तेन=अत्यन्त संतप्त। सास्रेण=आँसुओंसे युक्त। उत्कण्ठितेन=उत्कण्ठायुक्त। समधिकतरोच्छ्वासिना=अतिदीर्घ निश्वास छोड़ते हुए। अङ्गेन=अपने देहसे। प्रतनु=अधिक दुवले। तप्त=संतापयुक्त। अस्रद्रुतम्=आँसुओंसे भीगे। अविरतोत्कण्ठं=निरन्तर उत्कण्ठासे भरे। उष्णोच्छ्वासं=गरम आहों वाले। अङ्गं=तुम्हारे शरीरमें। तैः सङ्कल्पैः=उन कल्पनाओंके साथ। विशति=प्रवेश करता है।

भावार्थ—विपरीत दैवने जिसके सारे मार्ग रोक दिये हैं ऐसा, दूर पड़ा हुआ तुम्हारा सहचर तुमसे भले ही न मिल सके, किन्तु अपने शरीरकी दुर्बलता, गाढ़ संताप, निरन्तर आँसुओंसे युक्त होना, उत्कण्ठित रहना और दीर्घ निश्वास छोड़नेसे मनमें यह कल्पना कर लेता है कि मेरे विरहमें तुम भी दुबली, संतप्त, आँखोंसे आँसू बहाती, निरन्तर मिलनेकी उत्कण्ठावाली, और अत्यन्त लम्बी-लम्बी आहें भर रही होगी।

टिप्पणी—"तैः सङ्कल्पैः विशति=उन कल्पनाओं (मनोरथों) से प्रवेश करता है" इसका सीधा तात्पर्य यही है कि अपने अङ्गोंकी दशाके अनुसार तुम्हारे अङ्गोंकी भी कल्पना कर लेता है। कुछ टीकाकारोंने यह भी लिखा है कि सहवास कालमें जिन मनोरथोंका अनुभव किया था वे ही अब विरहावस्थामें यक्षके हृदयमें उथल-पुथल मचा रहे हैं, उनके साथ। अर्थात् इनके मतमें तद् सर्वनाम पूर्वानुभवके अर्थमें है ॥४१॥

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥२४॥

सम्प्रति स्वावस्थानिवेदनाय प्रस्तौति—

शब्दाख्येयमिति। हे अबले, यस्ते प्रियः सखीनां पुरस्तादपि आनन-

स्पर्शे त्वन्मुखसम्पर्के लोभाद्गाध्यात्। अधरपानलोभादित्यर्थः। शब्दाख्येयं शब्देन रवेणाख्येयमुच्चैर्वाच्यमपि तत्तत्। वचनमपीति शेषः। कर्णे कथयितुं लोलो लालसोऽभूत्किल। "लोलुपो लोलुभो लोलो लालसो लम्पटोऽपि च" इति यादवः। श्रवणविषयं कर्णपथमतिक्रान्तः तथा लोचनाभ्यामदृष्टः। अतिदूरत्वाद्द्रष्टुं श्रोतुं च न शक्य इति भावः। ते प्रियः त्वामुत्कण्ठायां विरचितानि पदानि सुप्तिङन्तशब्दा वाक्यानि वा यस्य तत्तथोक्तम्। "पदं शब्दे च वाक्ये च" इति विश्वः। इदं वक्ष्यमाणं "श्यामास्वङ्गम्" मन्मुखेनाह। मन्मुखेन स एव ब्रूत इत्यर्थः ॥४२॥

पदार्थ—यः=जो। सखीनां पुरस्तात्=सखियोंके सामने। यत् शब्दाख्येयम् अपि=जो बोलकर कहने योग्य बात है। उसको भी। आननस्पर्शलोभात्=मुंहके स्पर्शके लोभसे। ते कर्णे=तुम्हारे कानमें। कथयितुं=कहनेके लिये। लोलः अभूत्=उत्सुक रहता था। श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः=कानोंकी पहुँचसे दूर। लोचनाभ्याम् अदृश्यः=आँखोंसे ओझल। स=वह उत्कण्ठाविरचितपदं=उत्कण्ठासे बनाये गये पदोंवाले। इदं = इस सन्देशको। मन्मुखेन = मेरे मुखसे। त्वाम् आह = तुमसे कहता है।

भावार्थ - जो यक्ष, सखियोंके सामने कहनेयोग्य बातको भी तुम्हारे मुखके स्पर्शके लोभसे तुम्हारे कानोंमें कहनेके लिये लालायित रहता था, आज कानोंकी पहुँचसे दूर और आँखोंसे ओझल हुआ, वही तुम्हारा प्रियतम उत्सुकतासे बनाये पदोंवाले इस सन्देशको मेरेद्वारा तुमसे कहता है।

टिप्पणी—श्री कालेने "ते यः" के स्थानमें 'तद्यः' पाठ माना है इससे तत्का अध्याहार नहीं करना पड़ता। इसके आगेके श्लोकोंमें यक्षका भेजा हुआ वह सन्देश है जिसके कारण इस ग्रन्थका नाम मेघदूत पड़ा और अवतकर्की सारी रचना इसकी पृष्टभूमि है ॥४२॥

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥४३॥

सादृश्यप्रतिकृतिस्वप्नदर्शनतदङ्गस्पृष्टस्पर्शाख्यानि चत्वारि विरहिणां विनोदस्थानानि। तथा चोक्तं गुणपताकायाम्—"वियोगावस्थासु प्रियजनसदृक्षानुभवनं ततश्चित्रं कर्म स्वपनसमये दर्शनमपि। तदङ्गस्पृष्टानामुपनतवतां दर्शनमपि प्रतीकारोऽनङ्गव्यथितमनसां कोऽपि गदितः।" इति। तत्र सदृशवस्तु दर्शयन्नाह—

श्यामास्विति ॥ श्यामासु प्रियङ्गुलतासु। "श्यामा तु महिलाह्वया लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली" इत्यमरः। अङ्गं शरीरमुत्पश्यामि। सौकुमार्यादिसाम्यादङ्गमिति तर्कयामीत्यर्थः। तथा चकितहरिणीनां प्रेक्षणे ते दृष्टिपातम्। शशिनि चन्द्रे वक्त्रच्छायां मुखकान्तिम्। तथा शिखिनां बर्हिणां बर्हभारेषु बर्हसमूहे केशान्। प्रतनुषु स्वल्पासु नदीनां वीचिषु। अत्र वीचीनां विशेषणोपादाने नानुक्तगुणग्रहो दोषः। भ्रूसाम्यनिर्वाहाय महत्त्वदोषनिराकरणार्थत्वात्तस्येति। तदुक्तं रसरत्नाकरे—"ध्वन्युत्पादे गुणोत्कर्षे भोगोक्तौ दोषवारणे। विशेषणादिपोषस्य नास्त्यनुक्तगुणग्रहः। इति। भ्रूविलासान्। "भ्रूपताकाः" इति पाठे भ्रुवः पताका इवेत्युपमितसमासः। उत्पश्यामीति सर्वत्र सम्बध्यते। तथापि नास्ति मनोनिर्वृतिरित्याशयेनाह—हन्तेति। हन्त विषादे। "हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः" इत्यमरः। हे चण्डि कोपने। "चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः" इत्यमरः। गौरादित्वात् ङीप्। उपमानकथनमात्रेण न कोपितव्यमिति भावः। क्वचिदपि कस्मिन्नप्येकस्मिन्वस्तुनि ते तव सादृश्यं नास्ति। अतो न निर्वृणोमीत्यर्थः। अनेनास्याः सौन्दर्यमनुपममिति व्यज्यते ॥४३॥

पदार्थ—श्यामासु = प्रियंगुलताओंमें। ते अङ्गं=तुम्हारे शरीरको। चकितहरिणीप्रेक्षणे = डरीहुई हरिणीके नेत्रोंमें। दृष्टिपातं = कटाक्षोंको। शशिनि = चन्द्रमामें। वक्त्रच्छायां=मुखकी शोभाको। शिखिनां बर्हभारेषु=मोरोंके पंखसमूहोंमें। केशान् = केशोंको। प्रतनुषु = पतली-पतली। नदीवीचिषु = नदियोंकी तरङ्गोंमें। भ्रूविलासान्=भ्रूभंगोंको। उत्पश्यामि=कल्पना करता हूं। हन्त = खेद है कि। क्वचिद् एकस्मिन् अपि = किसी एकमें ही। चण्डि = हे सौभाग्यशालिनि! ते सादृश्यं न अस्ति = तुम्हारी समानता नहीं है।

भावार्थ—मैं प्रियंगुलताओंमें तुम्हारे शरीरकी, भयभीतहरिणीके देखनेमें तुम्हारे कटाक्षोंकी, चन्द्रमामें तुम्हारे मुखकी शोभाकी, मोरपंखोंके गुच्छेमें तुम्हारे केशोंकी और पतलीसी नदियोंकी लहरोंमें तुम्हारे भ्रूभंगोंकी कल्पना संभावना करता हूँ । किन्तु खेद है कि हे चण्डि किसी एक ही वस्तुमें तुम्हारे अनुपम सौंदर्यकी समानता नहीं है ।

टिप्पणी - चण्डी शब्दका सामान्यतः क्रुद्धा अर्थमें ही प्रयोग होता है किन्तु चण्डि मानिनि आदि सम्बोधन स्त्रियोंके सौभाग्यप्रकाशक हैं जैसा कि कोशकार बलका कहना है—"चण्डी स्यात् कोपना योषित् तथा सौभाग्यशालिनी" । कालिदासने अन्यत्र भी इस शब्दका प्रयोग इसी अर्थमें किया है देखिये रघुवंश "करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या" । इस बहाने यक्ष पत्नीके अनुपम सौंदर्यको व्यक्त कर रहा है ।।४३।।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ।।४४।।

सम्प्रति प्रतिकृतिदर्शनमाह—

त्वामिति ।। हे प्रिये, प्रणयेन प्रेमातिशयेन कुपितां कुपितावस्थायुक्तां त्वाम् । त्वत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । धातवो गैरिकादयः । "धातुर्वातादि शब्दादिगैरिकादिष्वजादिषु" इति यादवः । त एव रागा रञ्जकद्रव्याणि । "चित्रादिरञ्जकद्रव्ये लाक्षादौ प्रणयेच्छयोः । सारङ्गादौ च रागः स्यादारुण्ये रञ्जने मान्" इति शब्दार्णवे । तैर्धातुरागैः । शिलायां शिलापट्ट आलिख्य निर्माय आत्मानं माम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । ते तव । चित्रगताया इत्यर्थः । चरणपतितं कर्तुं तथा लेखितुं यावदिच्छामि तावदिच्छासमकालं मुहुरुपचितैः प्रवृद्धैरस्रैरश्रुभिः कर्तृभिः । "अस्रमश्रुणि शोणिते" इति विश्वः । दृष्टिरालुप्यते । आव्रियत इत्यर्थः । ततो दृष्टिबन्धनाल्लेखनं प्रतिबध्यत इति भावः । किं बहुना क्रूरो घातुकः । "नृशंसो घातुकः क्रूरः ।" इत्यमरः ।

कृतान्तो दैवम् । "कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु" इत्यमरः । तस्मिन्नपि चित्रेऽपि । नावावयोः "युस्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ" इति नावादेशः । सङ्गम सहवासं न सहते । सङ्गमलेखनमप्यावयोरसहमानं दैवमावयोः सङ्गं न सहत इति किमुवक्तव्यमित्यपिशब्दार्थः ।।४४।।

पदार्थ—प्रणयकुपितां त्वां=प्रेमसे रूठी हुई तुमको । धातुरागैः=धातुओंके रङ्गोंसे । शिलायाम् आलिख्य=पत्थरपर लिखकर । आत्मानं=अपनेको । यावत् =जब । ते चरणपतितं=तुम्हारे चरणोंपर गिराहुआ । कर्तुम् इच्छामि=बनाना चाहता हूँ । तावत्=तभी । मुहुः उपचितैः=बारबार उमड़े हुए । अस्रैः=आँसुओंसे । मे दृष्टिः=मेरी दृष्टि । आलुप्यते=ढक जाती है । क्रूरः कृतान्तः=निर्दयी दैव । तस्मिन्नपि = उस चित्रमें भी । नौ सङ्गमं = हमदोनोंके मिलनेको । न सहते= नहीं सहता ।

भावार्थ—हे प्रिये ! जब मैं गेरू आदि धातुओंसे पत्थरपर तुम्हारी उस अवस्थाका चित्र बनाता हूँ, जिसमें कि तुम प्रेममें रूठी रहती हो, और अपनेको तुम्हारे चरणोंपर गिरा बनाना चाहता हूँ तो सहसा मेरी दृष्टि बार-बार उमड़े हुए आँसुओंसे ढक जाती है । ज्ञात होता है कि निर्दयी दैव उस चित्रमें भी हम दोनोंके मिलनको नहीं सह सकता ।

टिप्पणी—इस श्लोकसे कालिदासके समयकी विकसित चित्रकलाका सहजही अनुमान लगाया जा सकता है । यक्ष केवल एक गेरू आदिसे उसका रेखाचित्र ही नहीं खींचता था । "धातुरागैः" यह बहुवचन बताता है कि वह प्रणयकुपिताके विभिन्न अङ्गोंका विभिन्न धातुओंसे यथोचित चित्रण करता था। जैसा कि कहा है—"दृशि लोहितः कपोले विपाटलस्त्वधरे ऽरुणरागश्च। स्वेदोत्कम्पौ स्त्रीणां कोपवशादधिकरूपौ स्तः ।" प्रियाका तो पूरा चित्रण यक्ष कर लेता है किन्तु जब उसके चरणोंपर गिरे हुए अपना चित्र बनाना चाहता है तो बार-बार आँसू उमड़ पड़ते हैं । क्योंकि दैवहतकको चित्रमें भी उन दोनोंका मिलन सह्य नहीं । यह है कविकी रचनाका वैलक्षण्य ।।४४।।

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-

र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥४५॥

अधुना स्वप्नदर्शनमाह—

मामिति ॥ सुप्तस्य विज्ञानं स्वप्नः । "स्वप्नः सुप्तस्य विज्ञानम्" इति विश्वः । सन्दर्शनं संवित् । दर्शनं समये शास्त्रदृष्टौ स्वप्नेऽक्षिण संविदि" इति शब्दार्णवे । स्वप्नसन्दर्शनानि स्वप्नज्ञानानि । चूतवृक्षादिवत्सामान्यविशेषभावेन सहप्रयोगः । तेषु मया कथमपि महता प्रयत्नेन लब्धायाः गृहीतायाः दृष्टाया इति यावत् । ते तव निर्दयाश्लेषो गाढालिङ्गनं स एव हेतुस्तस्य निर्दयाश्लेषार्थमित्यर्थः । "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इति षष्ठी । आकाशे निर्विषये प्रणिहितभुजं प्रसारितबाहुं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्ता मौक्तिकानीव स्थूला अश्रुलेशा बाष्पबिन्दवस्तरुकिसलयेषु । अनेन चेलाञ्चलेनाश्रुवारणसमाधिर्व्यन्यते । बहुशो न पतन्तीति न । किंतु पतन्त्येवेत्यर्थः । निश्चये नञ्द्वयप्रयोगः । तथा चाधिकारसूत्रम्—"स्मृतिनिश्चयसिद्धार्थेषु नञ्द्वयप्रयोगः सिद्धः" इति । "महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि । देशभ्रंशो महद्दुःखं मरणं च भवेद्ध्रुवम् ।" इति क्षितौ देवताश्रुपातनिषेधदर्शनाद्यक्षस्य मरणाभावसूचनार्थं तरुकिसलयेषु पतन्तीत्युक्तम् ॥४५॥

पदार्थ—स्वप्नसंदर्शनेषु = स्वप्नके साक्षात्कारोंमें । मया=मुझसे । कथमपि लब्धायाः = किसीप्रकार प्राप्त की गई । ते = तुम्हारे । निर्दयाश्लेषहेतोः = गाढ़ आलिङ्गनके लिये । आकाशप्रणिहितभुजं=आकाशमें फैलायी हैं भुजाएँ जिसने, ऐसे । मां=मुझको । पश्यन्तीनां=देखती हुई । स्थलीदेवतानां=स्थानदेवताओंके । मुक्तास्थूलाः=मोतियों जैसे मोटे-मोटे । अश्रुलेशा=आँसुओंके कण । तरुकिसलयेषु=वृक्षोंके पल्लवोंपर । बहुशः=अनेकबार । नखलु पतन्ति (इति) न = नहीं गिरते ऐसा नहीं ।

भावार्थ—स्वप्नमें जब किसी प्रकार तुम्हें देखलेता हूँ तो बहुत बार तुम्हारे गाढ़ आलिङ्गनके लिये शून्य आकाशमें फैली भुजाओंवाले मुझको देखती

हुई वनदेवताओंकी मोतियों जैसी बड़ी-बड़ी आँसुओंकी बूँदें वृक्षोंकी कोंपलोंपर निश्चय ही गिर पड़ती हैं।

टिप्पणी—रातको पत्रोंपर पड़नेवाली ओसकी बूँदोंसे यक्षकी दयनीय विरहावस्था पर तरस खाकर रोती हुई वनदेवताओंके आँसुओंकी क्या ही सजीव उत्प्रेक्षा है। किन्तु इसमें भी कविकी लेखनी मर्यादाका ध्यान् रखती है। ये आँसू देवताओंके हैं भूमिपर गिरेंगे तो अनिष्ट हो जायगा, अतः वे वृक्षोंकी कोंपलोंपर ही दिखाई देते हैं ॥४५॥

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥४६॥

इदानीं तदङ्गस्पृष्टवस्तुदर्शनमाह—

भित्त्वेति ॥ देवदारुद्रुमाणां किसलयपुटान् पल्लवपुटान् सद्यो भित्त्वा तत्क्षीरस्रुतिसुरभयस्तेषां देवदारुद्रुमाणां क्षीरस्रुतिभिः क्षीरनिष्पन्दैः सुरभयः सुगन्धयः। तुषाराद्रिजातत्वे लिङ्गमिदम्। ये वाता दक्षिणेन दक्षिणमार्गेण। तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानात्तृतीया, समेन यातीतिवत्। तत्रापि करणत्वस्य प्रतीयमानत्वात्। "कर्तृकरणयोरेव तृतीया" इति भाष्यकारः। प्रवृत्ताश्चलिताः। हे गुणवति! सौशील्यसौकुमार्यादिगुणसम्पन्ने, ते तुषाराद्रिवाताः पूर्वं प्रागेभिर्वातैस्तवाङ्गं स्पृष्टं भवेद्यदि। किलेति संभावितमेतदिति वुद्ध्येत्यर्थः। "वार्ता सम्भाव्ययोः किल" इत्यमरः। मयाऽऽलिङ्ग्यन्ते आश्लिष्यन्ते। अत्र वायूनां स्पृश्यत्वेऽप्यमूर्तत्वेनालिङ्गनायोगादालिङ्ग्यन्त इत्यभिधानम्। यक्षस्योन्मत्तत्वात्प्रलपितमित्यदोष इति वदन्निरुक्तकारः स्वयमेवोन्मत्तप्रलापीत्युपेक्षणीयः ॥४६॥

पदार्थ—देवदारुद्रुमाणां = देवदारुके वृक्षोंके। किसलयपुटान् = जुड़ी हुई कोंपलोंको। सद्यः भित्त्वा=शीघ्र ही खोलकर। तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः=उससे निकलतेहुए दूध जैसे लसीले पदार्थसे सुगन्धित। ये तुषाराद्रिवाताः = जो हिमालयके

वायु। दक्षिणेन प्रवृत्ताः=दक्षिणकी ओर बहते हैं। गुणवति=हे प्रशस्त गुणों-वाली ! एभिः=इन्होंने। यदि=सायद। तव अङ्गं=तुम्हारी देह। पूर्वस्पृष्टं भवेद्=पहले छू रखी होगी। इति=यह सोचकर। ते=वे वायु। मया आलि-ङ्ग्यन्ते=मुझसे आलिङ्गित किये जाते हैं।

भावार्थ—हे गुणोंसे भरी प्रिये ! देवदारुवृक्षोंकी जुड़ी हुई कोंपलोंको तत्काल खोलकर उससे निकले हुए चोव (दूधजैसा लसीला पदार्थ)से सुगन्धित जो हिमालयकी हवाएँ दक्षिणकी ओर बहती हैं, मैं उन्हें यह सोचकर आलिङ्गन करता हूँ कि संभवतः ये पहिले तुम्हारे अङ्गोंको छूकर यहाँ आ रही होंगी।

टिप्पणी—साहित्यमें प्रायः दक्षिणदिशासे (मलयाचलसे) बहती वायुका ही वर्णन मिलता है किन्तु सिद्धसरस्वतीक महाकविकी लेखनीका चमत्कार है कि उनका यक्ष उत्तरसे दक्षिणको बहती हिमालयकी हवाओंका सेवन करता है। क्योंकि वह समझता है ये हवाएँ उसकी प्रियतमाके देहका स्पर्श करके आरही होंगी। इससे विरहकी दूसरी अवस्था "तत्स्पृष्टस्पर्शनं" व्यक्त होती है। ये हवाएँ भी शीतल, मन्द और सुगन्धित हैं, क्योंकि हिमाचलसे चली हैं अतः स्वभावतः शीतल, कोमल पल्लवोंको खोलती हुई आई हैं अतः मन्द और उनसे निकले निर्यासकी तीव्रगन्धसे भरी हैं अतः सुगन्धित हैं ।।४६।।

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ।।४७।।

संक्षिप्येतेति ।। दीर्घा यामाः प्रहरा यस्यां सा दीर्घयामा। विरहवेदनया तथा प्रतीयमानेत्यर्थः। त्रियामा रात्रिः। "आद्यन्तयोरर्धयामयोर्दिनव्यवहारा-त्त्रियामा" इति क्षीरस्वामी। क्षण इव कथं केन प्रकारेण संक्षिप्येत लघू-क्रियेत। अहरपि सर्वावस्थासु। सर्वकालेष्वित्यर्थः। मन्द-मन्दो मन्दप्रकारः। "प्रकारे गुणवचनस्य" इति द्विरुक्तिः। "कर्मधारयवदुत्तरेषु" इति कर्मधारयव-द्भावात्सुपो लुक्। मन्दमन्दातपमत्यल्पसंतापं कथं स्यात्। न स्यादेव। हे

चटुलनयने चञ्चलाक्षि, इत्थमनेन प्रकारेण दुर्लभप्रार्थनमप्राप्यमनोरथं मे मम चेतो गाढोष्माभिरतितीव्राभिस्त्वद्वियोगव्यथाभिरशरणमनाथं कृतम ॥४७॥

पदार्थ—दीर्घयामा=लम्वे प्रहरोंवाली। त्रियामा=रात्रि। क्षण इव=पलके समान। कथं संक्षिप्येत=कैसे छोटी की जाय। अहः अपि=दिन भी। सर्वावस्थासु=सव अवस्थाओंमें (पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण ये दिनकी ३ अवस्थाएं हैं), कथं=किसप्रकार। मन्दमन्दातपं स्यात्=कम सन्तापवाला हो सके। चटुलनयने =चंचल नेत्रोंवाली। इत्थं=इसप्रकार। दुर्लभप्रार्थनं=कठिन है अभिलाषा जिसकी, ऐसा। मे चेतः=मेरा चित्त। गाढोष्माभिः=गम्भीर गरम आहोंवाली। त्वद्वियोगव्यथाभिः=तुम्हारे विरहकी व्यथाओंसे। अशरणं कृतम्=असहाय करदिया गया है।

भावार्थ—हे चंचलनेत्रोंवाली! यह लम्वे-लम्वे पहरोंवाली रात मिनटों की तरह छोटी (जल्दी समाप्त होनेवाली) कैसे की जाय और यह दिन भी पूर्वाह्णादि तीनों अवस्थाओंमें कम संतापवाला कैसे हो सके, इस प्रकार की प्रार्थनाओंवाले मेरे मनको गंभीर गरम आहोंसे भरी तुम्हारे विरह की वेदनाओंने असहाय-सा कर दिया है।

टिप्पणी—विरहकी घड़ियाँ लंबी होती हैं, उन्हें विताना कठिन होता है। इसीलिये यक्षने दीर्घयामा विशेषण दिया है। चटुलनयने! संबोधनसे यह भी ध्वनि निकलती है कि सायद मेरा प्रियतम आ रहा हो, इस आशासे तुम बारबार मेरी राह देखती होगी ॥४७॥

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥४८॥

न च मदीयदुर्दशाश्रवणाद्भेतव्यमित्याह—

नन्विति ॥ नन्वित्यामन्त्रणे। "प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु" इत्यमरः। ननु प्रिये बहु विगणयन् शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामीत्या-

र्त्तयन्नात्मानमात्मनैव स्वेनैव। "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इति तृतीया। अवलम्बे धारयामि। यथाकथञ्चिज्जीवामीत्यर्थः। तत्तस्मात्कारणात्। हे कल्याणि सुभगे,। त्वत्सौभाग्येनैव जीवामीति भावः। "वाह्वादिभ्यश्च" इति ङीप्। त्वमपि नितरामत्यन्तं कातरत्वं भीरुत्वं मा गमः मा गच्छ। "न माङ्योगे" इत्याडागमाभावः। तादृक्सुखिनोरावयोरीदृशे दुःखे कथं न बिभेमी- त्याशङ्क्याह—कस्येति। कस्य जनस्यात्यन्तं नियतं सुखमुपनतं प्राप्तमेकान्ततो नियमेन दुःखं वोपनतम्। किंतु दशावस्था चक्रस्य रथाङ्गस्य नेमिस्तदन्तः। "चक्रं रथाङ्गं तस्यान्ते नेमिः स्त्री स्यात्प्रधिः पुमान्" इत्यमरः। तस्याः क्रमेण परिपाट्या। "क्रमः शक्तौ परीपाट्याम्" इति विश्वः। नीचैरध उपरि च गच्छति प्रवर्तते। एवं जन्तोः सुखदुःखे पर्यावर्त्तेत इत्यर्थः ॥४८॥

पदार्थ—ननु = वास्तवमें। बहु विगणयन् = बहुत कुछ सोचता हुआ। आत्मानं=अपनेको। आत्मना एव=अपनेसे ही। अवलम्बे=धैर्य देरहा हूँ। तत्= इसलिये। कल्याणि = हे सौभाग्यवाली। त्वमपि=तुम भी। नितरां = अत्यन्त। कातरत्वं=कातरताको। मा गमः = मत प्राप्त होना। अत्यन्तं सुखं = बार-बार सुख। वा=अथवा। एकान्ततः=नियमित रूपसे। दुःखं=दुःख। कस्य उपनतं = किसे प्राप्त हुआ है। दशा=अवस्था। चक्रनेमिक्रमेण=पहियेके किनारोंकी तरह। नीचैः=नीचे। उपरि च=और ऊपर। गच्छति=जाती है।

भावार्थ—सचमुच ही इस प्रकार बहुत कुछ सोचता हुआ मैं अपने को स्वयं ही थामे हुए हूँ। हे कल्याणि! इसी प्रकार तुम भी अधिक कातर न होना। क्योंकि सदा सुख ही सुख या सदा दुःख ही दुःख किसे रहा। ये सुख और दुःखकी अवस्थाएँ तो पहियेके किनारोंकी भाँति नीचे-ऊपर होती रहती हैं।

टिप्पणी—एक समय था जब हम दोनों आनन्दके दिन बिता रहे थे अब आपके कारण विरह-वेदनासे संतप्त हुए दुःखकी घड़ियाँ गिन रहे हैं। अब इसके बाद पुनः सुखकी बारी आयेगी क्योंकि सुख और दुःख इस प्रकार घूमते रहते हैं जैसे पहियेकी धूरीका जो भाग ऊपर होता है वह शीघ्र ही नीचे जाकर पुनः ऊपर चला आता है। तुल०—"चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च—" मनुस्मृति। "चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः"—भास ॥४८॥

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥४६॥

न च निरवधिकमेतद्दुःखमित्याह—

शापान्त इति ॥ पाणौ शार्ङ्गं यस्य स तस्मिञ्छार्ङ्गपाणौ विष्णौ। "सप्तमीविशेषणे –" इत्यादिना बहुव्रीहिः। "प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ भवतः" इति वक्तव्यात्पाणिशब्दस्योत्तरनिपातः। भुजगः शेष एव शयनं तस्मादुत्थिते सति मे शापान्तः शापावसानम्। भविष्यतीति शेषः। शेषानवशिष्टांश्चतुरो मासान्। मेघदर्शनप्रभृतिहरिबोधनदिनान्तमित्यर्थः। दशदिवसाधिक्यं त्वत्र न विवक्षितमित्युक्तमेव। लोचने मीलयित्वा निमील्य गमय। धैर्येणातिवाहयेत्यर्थः। पश्चादनन्तरं त्वं चाहं चावाम्। "त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्" इत्येकशेषः। "त्यदादीनां मिथो द्वन्द्वे यत्परं तच्छिष्यते" इत्यस्मदः शेषः। विरहे गुणितमेवमेवं करिष्यामीति मनस्यावर्त्तितम्। तं तम्। वीप्सायां द्विरुक्तिः। आत्मनोरावयोरभिलाषो मनोरथम्। परिणताः शरच्चन्द्रिका यासां तासु क्षपासु रात्रिषु। निर्वेक्ष्यावो भोक्ष्यावहे। विशतेर्लृट्। "निर्वेशो भृतिभोगयोः" इत्यमरः। अत्र कैश्चित् "नभोनभस्ययोरेव वार्षिकत्वात्कथमाषाढादिचतुष्टयस्य वार्षिकत्वमुक्तमिति चोदयित्वर्तुत्रयपक्षाश्रयणादविरोधः" इति पर्यहारि। तत्सर्वमसंगतम्। अत्र गतशेषाश्चत्वारो मासा इत्युक्तं कविना न तु ते वार्षिका इति। तस्मादनुक्तोपालम्भ एव। यच्च नाथेनोक्तम् "कथमाषाढादिचतुष्टयात्परं शरत्कालः" इति तत्राप्याकार्तिकसमाप्तेः शरत्कालानुवृत्तेः परिणतशरच्चन्द्रिकास्वित्युक्तम्। न तु तदैव शरत्प्रादुर्भाव उक्त इत्यविरोध एव ॥४६॥

पदार्थ—शार्ङ्गपाणौ=भगवान् विष्णुके। भुजगशयनात् उत्थिते=शेषशय्यासे उठनेपर। मे शापान्तः=मेरे शापका अन्त होगा। शेषान् चतुरः मासान्=इन

ष चार महीनोंको । लोचने मीलयित्वा=आँख मूंदकर । गमय=विताओ । पश्चात्=इसके बाद । आवां=हम दोनों । परिणतशरच्चन्द्रिकासु=शरद्कालकी पूर्ण चाँदनीवाली । क्षपासु=रात्रियोंमें । विरहगुणितं=विरहकालमें सोचे हुए । तं तं=उस उस । आत्माभिलाषं=अपने मनोरथोंको । निर्वेक्ष्यावः=उपभोग करेंगे ।

भावार्थ–भगवान् विष्णुके शेषशय्यासे उठने पर (हरिबोधिनी एकादशीके दिन) मेरे इस शापका अन्त हो जायगा । अतः इन बचे हुए चार महीनोंको तुम आँख मूंदकर (धैर्यसे) बिता डालो । इसके बाद तो दोनों (तुम और मैं) मिल जायेंगे और विरहकालमें सोंचे हुए अपने सारे मनोरथोंका शरत्कालीन पूर्ण चाँदनीवाली रात्रियोंमें हमदोनों आनन्दसे उपभोग करेंगे ।

टिप्पणी—"चतुरः मासान्"के लिये देखिये "आषाढस्य प्रथमदिवसे" श्लोककी टिप्पणी । "परिणतशरच्चन्द्रिकासु"में शरत्को लेकर भी कुछ टीकाकारोंने व्यर्थका झमेला खड़ा किया है । कोई ३ ही ऋतु मानता है कोई ६ । हमारे विचारसे इसमें किसी प्रकारकी शंकाके लिये स्थान ही नहीं है । ऋतुएँ सौरमास अर्थात् संक्रान्तिके अनुसार मानी जाती हैं और आश्विन-कार्तिक ये दो मास शरद् ऋतु है । कार्तिक शुक्ला एकादशी हरिबोधिनी कहलाती है उस दिन शापका अन्त हो जायगा । उसके बाद पौर्णिमातक ५ दिन तो निश्चित ही हैं इसके पश्चात् भी जबतक संक्रान्ति न हो जाय अर्थात् मार्गशीर्ष न लग जाय तबतक शरद् ही ऋतु मानी जायगी इस प्रकार उन दोनोंको आनन्दका उपभोग करनेके लिये पूर्ण चाँदनीवाले शरद्कालीन पर्याप्त दिवस उपलब्ध हो जायेंगे । फिर वर्षा ऋतुका श्लोकमें निर्देश ही नहीं है जिसपर शंका की जाय ॥४९॥

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा ।
सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव ! रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥५०॥

संप्रति तस्या मेघवञ्चकत्वशङ्कानिरासायातिगूढमभिधेयमुपदिशति—

भूय इति ॥ हे अबले, भूयः पुनरप्याह । त्वद्भर्ता मन्मुखेनेति शेषः। मेघवचनमेतत् । किमित्यत आह—पुरा पूर्वम् । पुराशब्दश्चिरातीते। "स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा" इत्यमरः। शयने मे कण्ठलग्नापि त्वम् । गले बद्धस्य कथमपि । केन वा निमित्तेनत्यर्थः । सस्वनं सशब्दम्। उच्चैरित्यर्थः। रुदती सती विप्रबुद्धा । आसीरिति शेषः । असकृद् बहुशः पृच्छतः । रोदनहेतुमिति शेषः । मे मम । हे कितव ! त्वं कामपि रमयन्मया स्वप्ने दृष्ट इति त्वया सान्तर्हासं समन्दहासं यथा तथा कथितं चेति। त्वद्भर्ता भूयश्चाहेति योजना ॥५०॥

पदार्थ—भूयः च आह = और फिर कहा । पुरा = पहले कभी । शयने = शय्यापर । मे कण्ठलग्ना=मेरे गलेसे लिपटी हुई । त्वं=तुम । निद्रां गत्वा अपि =नींद आ जानेपर भी । सस्वरं=ऊँचे स्वरसे । किमपि रुदती=कुछ रोती हुई सी । विप्रबुद्धा=जाग गई । मे असकृत् पृच्छतः=मेरे बार-बार पूछनेपर । त्वया सान्तर्हासं कथितम्=तुमने मुसकराते हुए कहा था । कितव=धूर्त । मया त्वं= मैंने तुमको । स्वप्ने=स्वप्नमें । कामपि रमयन् = किसीसे संभोग करते । दृष्टः इति=देखा है, ऐसा ।

भावार्थ—और तुम्हारे प्रियतमने फिर कहा है कि—पहले कभी जब तुम मेरे गलेसे लिपटी हुई शय्यापर सोई थी, तब नींद आनेपर भी जोरसे रोती हुई सी जाग उठी थी। जब मैंने बार-बार रोनेका कारण पूछा तो तुमने मुसकराते हुए कहा था कि धूर्त ! मैंने तुम्हें स्वप्नमें किसी अन्य रमणीसे संभोग करते देखा है ।

टिप्पणी—अबतक जो सन्देश मेघने कहा उसे वह धूर्ततावश स्वयं भी यक्षपत्नीको फुसलानेके लिये कह सकता था । "मेरे प्रियतमने ही इस मेघको भेजा है" ऐसा विश्वास यक्षपत्नीको कैसे हो ? इसलिये इस श्लोकके द्वारा यक्षने अपना अभिज्ञान प्रकट किया है। यह ऐसी गुप्त बात है जिसे यक्ष और उसकी पत्नीके सिवा तीसरा व्यक्ति तबतक जान ही नहीं सकता जबतक कि दोनोंमेंसे कोई उससे कहे नहीं । इस पुरानी बातकी स्मृतिसे यक्षपत्नीको

विश्वास हो जायगा कि वास्तवमें इस मेघको मेरे पतिने ही भेजा है अन्यथा इसे हमारा यह रहस्य कैसे मालूम होता ॥५०॥

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥५१॥

एतस्मादिति ॥ एतस्मात्पूर्वोक्तात् । अभिज्ञायतेऽनेनेत्यभिज्ञानं लक्षणं तस्य दानात्प्रापणान्मां कुशलिनं क्षेमवन्तं विदित्वा ज्ञात्वा । हे चकितनयने, कुले जनसमूहे भवात्कौलीनाल्लोकप्रवादात् । एतावता कालेन परासुर्नो चेदागच्छतीति जनप्रवादादित्यर्थः । "स्यात्कौलीनं लोकवादे युद्धे पश्वहिपक्षिणाम्" इत्यमरः । मयि विषयेऽविश्वासिनी मरणशङ्किनी मा भूर्न भव । भवतेर्लुङ् । "न माङ्योगे" इत्यडागमप्रतिषेधः । न च दीर्घकालविप्रकर्षात्पूर्वस्नेहनिवृत्तिराशङ्कयेत्याह—स्नेहानिति । किमपि किंचिन्निमित्तम् । न विद्यत इति शेषः । स्नेहात्प्रीतिविरहे सत्यन्योन्यविप्रकर्षे सति ध्वंसिनो विनश्वरानाहुः । तत्तथा न भवतीत्यभिप्रायः । किंतु ये स्नेहा । अभोगाद्विरहे भोगाभाव इति प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि न नञ्समास इष्यते । इष्टे वस्तुनि विषये । उपचितो रसः स्वादो येषु ते उपचितरसाः सन्तः प्रवृद्धतृष्णा इत्यर्थः । "रसो गन्धरसे स्वादे तिक्तादौ विषरागयोः" इति विश्वः । प्रेमराशीभवन्ति । वियोगासहिष्णुत्वमापद्यन्त इत्यर्थः । स्नेहप्रेम्णोरवस्थाभेदाद्भेदः । तदुक्तम्—"आलोकनाभिलाषौ रागस्नेहौ ततः प्रेमा । रतिशृङ्गारौ योगे वियोगता विप्रलम्भश्च ।" इति । तदेव स्फुटीकृतं रसाकरे—"प्रेमा दिदृक्षा रम्येषु तच्चिन्ता त्वभिलाषकः । रागस्तत्सङ्गबुद्धिः स्यात्स्नेहस्तत्प्रवणक्रिया । तद्वियोगासहं प्रेमरतिस्तत्सहवर्तनम् । शृङ्गारस्तत्समः क्रीडा संयोगः सप्तधा क्रमात् ।" इति ॥ ५१ ॥

पदार्थ—असितनयने=हे काले नेत्रोंवाली ! एतस्मात् अभिज्ञानदानात् = इस अभिज्ञान (पहिचानका चिह्न)के देनेसे । मां कुशलिनं विदित्वा = मुझे

कुशली जानकर। कौलीनात्=लोकापवादसे। मयि=मुझपर। अविश्वासिनी माभूः=विश्वास न करनेवाली न होना। विरहे=विरहमें। स्नेहान्=स्नेहोंको। किमपि ध्वंसिनः=किसी प्रकार नष्ट होनेवाले। आहुः=लोग कहते हैं। ते तु=वे तो। अभोगात्=भोग न होनेसे। इष्टे वस्तुनि=अभिलषित वस्तुमें। उपचितरसाः= बढ़ गया है रस जिनका, ऐसे। प्रेमराशीभवन्ति=प्रेमके ढेर जैसे हो जाते हैं।

भावार्थ—हे काले-काले नेत्रोंवाली! इस उपर्युक्त अभिज्ञान (पहिचानके चिह्न)से मुझे सकुशल जानकर तुम लोगोंके कहनेसे मुझपर विश्वास न खो बैठना। अर्थात् मेरे प्रेममें किसी प्रकारका सन्देह न करना। लोग कहते हैं कि विरहमें प्रेम नष्ट हो जाता है किन्तु यह उचित नहीं, क्योंकि विरहकालमें प्रेमका उपभोग नहीं होता इसलिये अभिलषित पदार्थके विषयमें रसोंके बढ़ जानेसे प्रेमकी राशि संचित हो जाती है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है कि जब इच्छित वस्तु सामने नहीं रहती तो उसे प्राप्त करनेके लिये व्यग्रता बढ़ जाती है और उसके प्रति होनेवाले रसोद्रेकोंका ढेर-सा लग जाता है। महाकवि कालिदासने इस पद्यमें प्रेमकी जो परिभाषा की है वही भारतीय संस्कृतिमें आदर्श प्रेम कहा जाता है। इनका सिद्धान्त है कि विरहसे सच्चे प्रेममें निखार आता है। जिस प्रकार सोनेको अग्निमें डालनेसे उसका मैल जल जाता है और उसमें अधिक चमक आ जाती है उसी प्रकार सच्चा प्रेम भी विरहकी अग्निमें तपाये जानेपर निखर उठता है। क्योंकि उसका वासनारूप मैल भस्म हो जाता है। इसीलिए कालिदासने अपने काव्योंमें वासनाकी भूखी उर्वशीको लतारूपमें परिवर्तित किया है। रूपगर्विता पार्वतीको तपस्याके लिये भेजा है। गुरुजनोंसे बिनापूछे स्वच्छन्द प्रेमचारिणी शकुन्तलाको पतिद्वारा तिरस्कृत करवाया है। कालिदासका प्रेम उच्छृङ्खल और केवल भोगपरक प्रेम नहीं है। ऐसे प्रेमको उन्होंने कुमारसंभवमें शिवजीके रोषसे, शकुन्तलामें दुर्वासाके शापसे और मेघदूतमें कुबेरके शापसे भस्मसात् करवादिया है। इनकी दृष्टिमें प्रेम आधिभौतिक नहीं आध्यात्मिक वस्तु है॥ ५१॥

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।

साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥५२॥

इत्थं स्वकुशलं सन्दिश्य तत्कुशलसन्देशानयनमिदानीं याचते—

आश्वास्येति ॥ प्रथमविरहेणोदग्रशोकां तीव्रदुःखां ते सखीमेवं पूर्वोक्तरीत्याश्वास्योपजीव्य त्रिनयनस्य त्र्यम्बकस्य वृषेण वृषभेणोत्खाता अवदारिताः । शिखराणि यस्य तस्मात् । "कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्" इत्यमरः । शैलात्कैलासादाशु निवृत्तः सन् प्रत्यावृत्तः सन् साभिज्ञानं सलक्षणं यथा तथा प्रहितं प्रेषितं कुशलं येषु तैस्तस्यास्त्वत्सख्या वाचोभिर्ममापि प्रातः कुन्दप्रसवमिव शिथिलं दुर्बलं जीवित धारयेथाः स्थापय । प्रार्थनायां लिङ् ॥५२॥

पदार्थ—प्रथमविरहोदग्रशोकां=पहले पहल विरह होनेसे अत्यन्त शोकवाली। ते सखीं=तुम्हारी सखीको । एवं = इस प्रकार । आश्वास्य = आश्वासन देकर। त्रिनयन०=शिवजीके वृषभद्वारा जिसके शिखरोंमें सींगसे खोद-खोदकर गढ़े किये जाते हैं, ऐसे । शैलात्=पर्वतसे । आशु निवृत्तः=शीघ्र लौटा हुआ । साभिज्ञान०= अभिज्ञान सहित भेजे हुए कुशलसमाचारोंवाले । तद्वचोभिः=प्रियाके सन्देशोंसे । प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं=प्रातःकाल खिले हुए कुन्दपुष्पके समान ढीले पड़े से । मम जीवितम् अपि = मेरे जीवनको भी । धारयेथाः = धारण कराना ।

भावार्थ—पहले पहल विछोह होनेसे अत्यन्त शोकवाली तुम्हारी सखीको इस प्रकार आश्वस्त करके, शिवजीके वृषभ (नन्दी) द्वारा जिसके शिखरोंमें खोद-खोद कर गढ़े किये जाते हैं ऐसे, कैलासपर्वतसे शीघ्रही वापस लौटते हुए तुम, अभिज्ञान (पहिचानका चिह्न या रहस्य) सहित उसके कुशल समाचारवाले वचनोंसे मेरे इस जीवन को भी सहारा देना जो प्रातःकालीन खिले कुन्दके फूलके समान झड़नेको हो रहा है ।

टिप्पणी—कुछेक हिन्दी टीकाकारोंने कुन्दको चमेलीका फूल लिखा है यह ठीक नहीं । कुन्द एक विशेष पुष्प है, जिसे संस्कृतमें माघ्य भी कहते हैं क्योंकि

यह प्रायः माघमें खिलता है। इसकी कँटीली और बहुत बड़ी झाड़ियाँ होती हैं। पुष्प सफेद होते हैं। इसे सूर्योदयसे पूर्व ही तोड़ लेते हैं बादमें इतना शिथिल हो जाता है कि फूल तोड़ने पर वृन्त ही हाथ आता है पंखड़ियाँ जमीनपर गिर जाती हैं, कालिदास उपमाओंके आचार्य हैं। वास्तवमें यक्षके जीवनकी कुन्द-पुष्पसे उपमा ऐसी सटीक है जो अपना सानी नहीं रखती ।।५२।।

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि ।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।।५३।।

सम्प्रति मेघस्य प्रार्थनाङ्गीकारं प्रश्नपूर्वकं कल्पयति—

कच्चिदिति ।। हे सौम्य साधो ! इदं मे बन्धुकृत्यं बन्धुकार्यम् । देवदत्तस्य गुरुकुलमितिवत्प्रयोगः । व्यवसितं कच्चित्करिष्यामीति निश्चितं किम् । "कच्चित्कामप्रवेदने" इत्यमरः । अभिप्रायज्ञापनं कामप्रवेदनम् । न च ते तूष्णींभावादनङ्गीकारं शङ्के यतस्ते स एवोचित इत्याह—"प्रत्यादेशात्करिष्यामि" इति प्रतिवचनात् । "उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः" इति शब्दार्णवः । भवतस्तव धीरतां गम्भीरत्वं न कल्पयामि न समर्थये खलु । तर्हि कथमङ्गीकारज्ञानं तत्राह—याचितः सन्निःशब्दोऽपि निर्गर्जितोऽपि अप्रतिजानानोऽपीत्यर्थः । चातकेभ्यो जलं प्रदिशसि ददासि । युक्तं चैतदित्याह—हि यस्मात्सतां सत्पुरुषाणां प्रणयिषु याचकेषु विषय ईप्सितार्थक्रियैव।पेक्षितार्थसंपादनमेव प्रयुक्तं प्रतिवचनम । क्रिया केवलमुत्तरमित्यर्थः । "गर्जति शरदि न वर्षति वर्षासु निस्वनो मेघः । नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ।" इति भावः ।।५३।।

पदार्थ—सौम्य = हे सज्जन ! इदं=यह । मे बन्धुकृत्यं=मेरा स्त्रीसम्बन्धी-कार्य । त्वया=तुमने । व्यवसितं कच्चित्=करनेको सोचलिया है क्या ? भवतः धीरतां=तुम्हारी गम्भीरता (मौनमुद्रा) को । प्रत्यादेशात्=निषेधसे (मेरी

वातको ठुकरानेसे)। न खलु कल्पयामि=मैं कल्पना नहीं करता। याचितः= माँगने पर। चातकेभ्यः=चातकोंको। निःशब्दोऽपि=विना शब्दकिये भी। जलं प्रदिशसि=जल देते हो। हि=क्योंकि, सतां = सज्जनोंका। प्रणयिषु = याचकोंके विषयमें। ईप्सितार्थक्रिया एव = इच्छित कार्यका सम्पादन ही। प्रयुक्तं (भवति) = उत्तर देना होता है।

भावार्थ – हे सज्जन मेघ! क्या तुमने मेरे इस स्त्रीसम्बन्धी कार्यको करनेका विचार करलिया है? तुम्हारे मौन रहनेसे मैं अपने कार्यके प्रत्याख्यान-की कल्पना नहीं करता। तुम चातकोंके माँगनेपर विना गरजे भी जल बरसाते हो, क्योंकि प्रेमियोंके प्रति उनके अभिलषित प्रयोजनका सम्पादन ही उत्तर देना होता है।

टिप्पणी – 'बन्धुकृत्यं' में मल्लिनाथने 'देवदत्तस्य गुरुकुलं' यह उदाहरण देकर असमर्थ समास माना है क्योंकि उनके विचार से 'बन्धोः' यह पद समास-रहित पद 'मे' से सबद्ध है किन्तु हमारे विचारसे यह ठीक नहीं। मे स्वतन्त्र पृथक् पद है, 'बन्धोः कृत्यं' यह षष्ठी समास अलग है और बन्धु से अभिप्राय पत्नीसे है अर्थात् मेरा पत्नी-सम्बन्धी कार्य। जैसाकि पूर्वमेघमें "तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहम्" यहाँ दूरबन्धुः का अर्थ मल्लिनाथने ही दिया है—"दूरे बन्धुर्यस्य स दूरबन्धुर्वियुक्तभार्योऽहं"। इसी प्रकार "प्रत्यादेशात्" इस पदमें भी टीकाकारोंने खूब खींचातानी की है, किसीने 'प्रत्यादेशन्न' पाठ माना है तो किसीने न और खलु दोनोंको प्रतिषेधवाची मानकर उसके दृढ़-होनेकी कल्पना की है। मल्लिनाथने प्रत्यादेशका प्रतिवचन अर्थ माना है किन्तु यह भी हमें उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। जबकि प्रत्यादेशका "प्रत्याख्यानं निरसनं प्रत्यादेशो निराकृतिः" इस अमरकोशके अनुसार प्रत्याख्यान अर्थ स्पष्ट है। हमारे विचारसे तो पदका सीधा अर्थ है "भवतः धीरतां प्रत्यादेशात् नखलु कल्पयामि—अर्थात् मेरे वचनका (प्रत्यादेश=) प्रत्याख्यान करनेके कारण (हेतौ पंचमी) तुम चुप हो, ऐसा मैं नहीं सोचता" ॥५३॥

एतत् कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।

इष्टान् देशान् विचर जलद ! प्रावृषा सम्भृतश्रीः
मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥५४॥

संप्रति स्वापराधसमाधानपूर्वकं स्वकार्यस्यावश्यं करणं प्रार्थयमानो मेघं विसृजति—

एतदिति ॥ हे जलद, सौहार्दात्सुहृद्भावात् । "हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च" इत्युभयपदवृद्धिः । विधुरो वियुक्त इति हेतोर्वा । "विधुरं तु प्रविश्लेषे" इत्यमरः । मयि विषयेऽनुक्रोशबुद्ध्या करुणाबुद्ध्या वा अनुचिता तवाननुरूपा या प्रार्थना प्रियां प्रति 'सन्देशं मे हर" इत्येवंरूपा तत्र वर्त्तिनो निर्बन्धात्परस्य मे ममैतत्संदेशहरणरूपं प्रियं कृत्वा संपाद्य प्रावृषा वर्षाभिः । "स्त्रियां प्रावृट् स्त्रियां भूम्नि वर्षाः" इत्यमरः । संभृतश्रीरुपचितशोभः सन् । इष्टान् स्वाभिलषितान्देशान्विचर । यथेष्टदेशेषु विहरेत्यर्थः । "देशकालाध्वगन्तव्याः कर्मसंज्ञा ह्यकर्मणाम्" इति वचनात्कर्मत्वम् । एवं मद्वत्क्षणमपि स्वल्पकालमपि ते तव विद्युता । कलत्रेणेति शेषः । विप्रयोगो विरहो मा भून्माभ्तु । "माङि" इत्याशिषि लुङ् । "अन्ते काव्यस्य नित्यत्वात्कुर्यादाशिषमुत्तमाम् । सर्वत्र व्याप्यते विद्वान्नायकेच्छानुरूपिणीम् ।" इति सारस्वतालङ्कारे दर्शनात्काव्यान्ते नायकेच्छानुरूपोऽयमाशीर्वादः प्रयुक्त इत्यनुसंधेयम् ॥५३॥

इति श्रीमहोपाध्यायमल्लिनाथसूरिविरचितया संजीवनीसमाख्यया व्याख्यया समेते महाकविश्रीकालिदासविरचिते मेघदूते काव्ये उत्तरमेघः समाप्तः ।

पदार्थ—जलद=हे मेघ ! अनुचितप्रार्थनावर्तिनः = अयोग्य प्रार्थना करनेवाले । मे=मेरे । एतत् प्रियं = इस प्रिय कार्यको । सौहार्दात् = मित्रताके कारण से । विधुर इति वा=अथवा="विरही है" यह समझकर । मयि अनुक्रोशबुद्ध्या वा=अथवा मुझपर दयाके विचारसे । कृत्वा=करके । प्रावृषा=वर्षासे । सम्भृतश्रीः = बढ़ गई है शोभा जिसकी, ऐसा । इष्टान् देशान् = अभिलषित स्थानोंमें । विचर=भ्रमण करो । ते च=और तुम्हारा । क्षणमपि=पलभर भी । विद्युता= बिजलीके साथ । एवं विप्रयोगः = ऐसा वियोग । माभूत् = न हो ।

भावार्थ—हे मेघ ! मित्रताके कारण अथवा "यह वेचारा विरहसे दुःखी है" ऐसी मुझपर दया करनेके विचारसे तुम्हारे अननुरूप कार्यकी प्रार्थना करनेवाले मेरे, इस प्रियकार्यको करके वर्षाऋतुमें वढ़ीहुई शोभावाले तुम, यथेच्छ देशोंमें घूमो और तुम्हारा एक पल भी कभी बिजलीसे ऐसा वियोग न होवे।

टिप्पणी—"विधुरे मयि···इति एतत् प्रियं" ऐसा भी कुछ टीकाकारोंने सप्तम्यन्त मानकर अन्वय किया है। बिजलीको मेघकी पत्नी रूपमें कवि-सम्प्रदायमें माना गया है। विधुर शब्दका लोकमें प्रयोग 'विघटिता धूः यस्य" इस विग्रहके अनुसार विरही (विशेपतः रंडुवा) अर्थमें ही होता है किन्तु कालिदासने प्रायः विकल अर्थमें ही इसका प्रयोग किया है देखिये पूर्वमेध "कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां।" यहाँ विरहव्याकुलां यही अर्थ अभीष्ट है। "विधुरं तु प्रविश्लेषे विकले···" अनेकार्थसंग्रह ॥५४॥

कालिदासकी रचनाका यह अन्तिम श्लोकहै और प्रायः प्रसिद्ध टीकाकारोंने यहीं तक टीका की है। किन्तु कुछ लोगोंने ३.४.५. प्रक्षिप्त श्लोकोंको और भी लिखछोड़ा है। हम भी उन्हें प्रक्षिप्त मानकर केवल भावार्थ के साथ देरहे हैं—

—०—

[अन्तिम श्लोक]

इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप।
मत्वागारं कनकरुचिरं लक्षणैः पूर्वमुक्तै-
स्तस्योत्सङ्गं क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श ॥१॥

भावार्थ—यक्षके इतना कहने पर इन्द्रका सहचर मेघ पहाड़ों, नदियों और नगरोंमें ठहरता हुआ कुछ ही दिनोंमें अलकापुरीमें पहुँच गया। यक्षद्वारा कहे लक्षणोंके अनुसार सुवर्णकी तरह चमकते हुए उसके घरको पहिचानकर उसने उस घरके भीतर सोई हुई दीन यक्षपत्नीको देखा ॥१॥

तस्मादद्रेर्निगदितुमथो शीघ्रमेत्यालकायां
यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टचिह्नैर्विदित्वा ।
यत्सन्दिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्नात्
तद् गेहिन्याः सकलमवदत् कामरूपी पयोदः ॥२॥

भावार्थ— इसके बाद स्वेच्छारूपधारी मेघने सन्देश कहनेके लिये रामगिरि पर्वतसे शीघ्र आकर दिखाईदेते लक्षणोंसे फीकी आभावाले यक्षभवनको पहिचान-कर, यक्षने प्रयत्न पूर्वक जो संदेश दिया था वह सब उसकी पत्नीसे कहदिया॥२॥

तं सन्देशं जलधरवरो दिव्यवाचाचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमना सापि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥३॥

भावार्थ—सबके शुभचिन्तक उस मेघराजने यक्षपत्नीकी जीवन रक्षाके लिये दैवीवाणीमें सारा सन्देश उसे कह सुनाया और वह भी अपने पतिके कुशल समाचारको सुनकर प्रसन्नचित्त हो गई । क्योंकि यदि कोई महापुरुषोंसे प्रार्थना करे तो वह क्यों न अभीष्ट फल देनेवाली होगी ? ॥३॥

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टान् अविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥४॥

भावार्थ— मेघकी कही हुई वार्ताको सुनकर कुवेरका हृदय भी दयासे भर आया और उसका क्रोध शान्त हो गया । उसने यक्षके शापको समाप्त करके दोनों पतिपत्नीके शोकको नष्ट करदिया और प्रसन्नचित्त वे दोनों कुवेरकी आज्ञासे निरन्तर सुख दिनमें ही ऐसे अभीष्ट भोगोंका भोग करने लगे ॥४॥

इत्थंभूतं सुरचितपदं मेघदूताभिधानं
कामक्रीड़ाविरहितजने विप्रयोगे विनोदः।
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः कवीनां
नत्वाऽऽर्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार ॥५॥

भावार्थ—कालिदासने भगवतीके चरणोंकी वन्दना करके सुन्दर ललित-पदोंवाले इस प्रकारके मेघदूतनामक इस काव्यको रचा है। इसमें प्रेमलीलाओंसे रहित हुए विरही जनोंका मनोविनोद, मेघका अत्यन्त कौशल और कवियोंकी कल्पनाओंका सद्भाव (चमत्कार) भी है ॥५॥

साहित्याचार्य-पाण्डेय-श्रीजनार्दनशास्त्रिणा।
"सरोजिनी" समाख्येयं हिन्दीव्याख्या समाप्यते ॥१॥

श्रीकालिदासकवितास्वुनिधावगाधे
व्यालोडिते बुधवरैरथि मे प्रयासः।
मज्जत्करीन्द्रविपुलेऽप्यनुपेक्षणीयः
किं नात्र चापलपराः शफराः स्फुरन्ति ॥२॥

※ श्लोकानुक्रमणी ※

—:(❀):—